सौन्दर्य्योपासक ।

(मालती)

एक गद्य काव्य ।

बाबू व्रजनन्दन सहाय (व्रजबल्लभ)

वकील और मंत्री नागरी प्रचारिणी सभा, आरा, प्रणीत ।

कहीं नौविल किसी ने मस्नवी लिखी क़यामत की ।
क्या दिलचस्प निकली दास्तां मेरी मुसीबत की ॥ "

म. कु. बाबू रामरणविजयसिंह द्वारा प्रकाशित ।

पटना—" खड्गविलास " प्रेस, बांकीपुर.

बाबू चण्डी प्रसाद सिंह द्वारा मुद्रित.

१८११.

प्रथम बार १२२५] [मूल्य ।॥)

सम्मति।

डेढ़ वर्ष पहले मेरे मित्र बाबू ब्रजनन्दन सहाय ने यह पुस्तक मुझे पढ़ने को दी थी। इधर उधर देख कर मैं ने उस समय कह दिया था कि छपने के बाद देखूंगा।

मैं बिना आवरण की छपी हुई पुस्तक आज आद्यन्त पढ़ गया और बड़ा प्रसन्न हुआ। इस के विषय में जो कुछ लिख रहा हूं वह मेरे पुस्तकावलोकन का हर्षोच्छ्वास है।

स्वर्गीय श्रीयुत पण्डित अम्बिकादत्त व्यास प्रणीत "गद्यकाव्य-मीमांसा" के अनुसार यह गद्यकाव्य "कथनोपन्यास" है क्योंकि इस में कवि ने सब बातें नायक के मुंह से कहवायी हैं, स्वयम् उन्हों ने कुछ नहीं कहा है। इस में शृङ्गाररस प्रधान है। सोने में सुगन्ध यह है कि ईश्वरीय भक्ति की आलोचना अथवा मीमांसा प्रश्नोत्तर रूप से भली भांति की गयी है। उपन्यास पढ़नेवाले इसे पढ़ कर मनोविनोद के अतिरिक्त जगदीश्वर से मिलने का उपाय भी सीखेंगे।

यह गद्यकाव्य भावमूलक है अतएव इस में कथा भाग बहुत ही थोड़ा है पर इतना थोड़ा नहीं कि कथा के प्रेमी ऊब जायं। भाव महाराज की कल्पना देवी महाराणी चिरसङ्गिनी है। यह जोड़ी इस में बड़ी सुन्दरता से पाठकों के सामने आती है, इस से किसी को उन के दर्शन से अरुचि नहीं उत्पन्न होती, ऊबने की तो सम्भावनाही नहीं है।

कवि पुस्तक में दो प्रकार की घटनाओं की कल्पना विशेष करते हैं। एक आदर्श, दूसरी निन्दनीय। आदर्श घटना से चरित्र सुधारा जाता है और निन्दनीय घटना से बुरे व्यवहारों पर अरुचि उत्पन्न की जाती है। ग्रन्थकार ने इस पुस्तक को लिख कर कई उद्देश्यों को सिद्ध करना चाहा है। उन में यह सामाजिक रीति बहुत सूक्ष्म दृष्टि से पर्यालोच्य है कि असूर्यम्पश्या किशोरी तथा युवतियां अपने बहनोई के सामने होती हैं और बात चीत करती हैं, वह भी एकान्त में। न तो यह पर्दाप्रणाली हुई और न यह स्त्रीस्वतंत्रता ही हुई। न जानें यह क्या है। विचारवान् पाठक इस का परिणाम इसी पुस्तक से समझ सकते हैं। हिन्दू लौकिक प्रथा के आगे धर्म का अनादर कर के बहुत दुःख उठाते हैं। गृह्यसूत्र तथा विवाहपद्धति के अनुसार वर कन्या का परस्पर निरीक्षण विवाह का एक अङ्ग है। यह विधि प्रायः नहीं होती। इस का परिणाम यह होता है कि वर अपनी अत्यन्त सुन्दरी स्त्री को अनादृत कर के अपनी ससुराल की साधारण स्त्रियों में किसी को सुन्दरी समझ कर उस से नेह का नाता जोड़ने लगता है। ग्रन्थकार ने ठीक अवसर पर नायक के मुख से कहवाया है कि यदि मैं अपनी स्त्री को विवाह में देखे हुए रहता तो क्यों दूसरी से प्रेम कर अपने को विपत्ति में फंसाता।

पुस्तक में एक घटना यह भी है कि क्वारी नायिका का चुम्बन उस के बहनोई ने किया। उस का लक्ष्य ऐसे २ कामों से अरुचि उत्पन्न कराना ही है न कि उन का समर्थन और अनुकरण। किन्तु यथार्थ

बात तो यह है कि जिस समय नायक ने नायिका का चुम्बन किया उस समय उस के मन में यह ज़रा भी ध्यान नहीं था कि वह परायी वस्तु है वा होगी। जब उस को यह धारणा हो गयी कि यह मेरी नहीं होगी तब उस ने उस को देखना तक बन्द कर दिया। ऐसी अवस्था में नायक कितना अपराधी हो सकता है यह पाठक स्वयम् सोचलें।

इस की भाषा प्रायः शुद्ध है। वह कहीं ओजस्विनी और कहीं प्रसादगुणशालिनी है, मानों दोनों प्रकार की भाषाओं के पढ़ने वालों के ध्यान से वैसी भाषा लिखी गयी है। भाषा प्रायः शुद्ध है इस का अर्थ यह है कि व्याकरण के सैद्धान्तिक नियमों का इस में पूरा पालन हुआ है। वैकल्पिक नियमों में ग्रन्थकार ने अपनी रुचि को प्रधान माना है इसी से किसी को इस के व्याकरण में भ्रम हो सकता है। पुराने वैयाकरणों के मत में 'वह' एकवचन और बहुवचन दोनों है। वे 'जब' की आकाङ्क्षा 'तो' से पूर्ण करते हैं और उमङ्ग शब्द को पुल्लिङ्ग मानते हैं। नवीन वैयाकरण 'वह' को एकवचन मानते हैं 'जब' के साथ 'तब' ही का प्रयोग करते हैं और उमङ्ग को स्त्रीलिङ्ग लिखते हैं।

ग्रन्थकार ऐसे स्थलों में पुराने वैयाकरणिक नियमों के प्रेमी हैं। हम नवीन नियमों के पक्षपाती हैं। यही विचार 'सुधि' और 'सुध' के सम्बन्ध में है। नये लेखक सुध लिखते हैं। वे इकार जोड़ना निरर्थक समझते हैं। ऐसी २ ही बातें वैकल्पिक कही जाती हैं। मेरा अनुरोध है कि दूसरे संस्करण में अवश्य नयी प्रथा व्यवहृत हो।

मेरा विचार है कि भावपूरित सुन्दर प्रान्तिक शब्दों को देश-व्यापक बनाना ग्रन्थकार का काम है। इस पुस्तक में 'लरिकाई' और 'गाढ़' (उत्कट विपत्ति) आदि ऐसे शब्द प्रयुक्त हुए हैं।

पुस्तक में अत्युत्कृष्ट गुण यह है कि यह अपने पाठकों में निबन्धरूप (Essay) में वर्णना शैली की प्रौढ़ता तथा रुचि उत्पन्न करती है।

ग्रन्थ के साथ प्रेस की अनवधानता से वृहत् संशोधन पत्र लगाना पड़ा है। पाठक यदि इस से मिला कर पुस्तक पढ़ेंगे तो दुःखी नहीं होंगे। इतिशम्

शिक्षा ऑफिस—आरा
१०—४—११

सकलनारायण पाण्डेय।
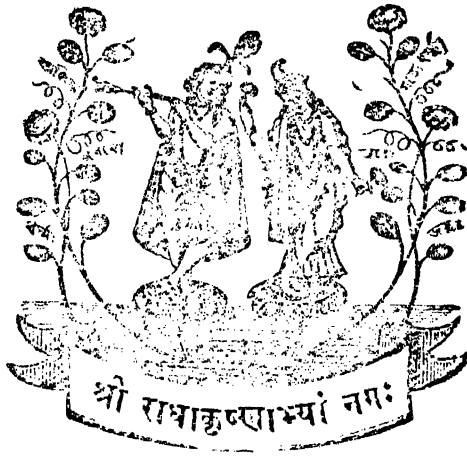
समर्पण ।

"Renounce all strength but strength Divine;
And peace shall be for ever thine."

Cowper.

"जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्तिः ।
जानाम्यधर्मं न च मे निवृत्तिः ॥
केनापि देवेन हृदिस्थितेन ।
यथा नियुक्तोऽस्मि तथा करोमि ॥"

पाण्डवगीता ।

प्यारे लाला !

आज यह नवीन उपहार ले कर तुम्हारे सम्मुख उपस्थित हुआ हूं । सौन्दर्यनिधि ! यह "सौन्दर्योपासक" तुम्हारे ही योग्य है,

क्योंकि सौन्दर्य्य के उपासक और उपास्य दोनों तुम्ही हो। सौन्दर्य्य का आदि कारण तथा अवलम्ब तुम्ही हो। भला कहो तो तुम से बढ़ कर सुन्दर कौन है? तुम्हारी सुन्दरता पर कौन मुग्ध नहीं है? पहले तो इसी सौन्दर्य्य के नाते यह तुम्हें रुचिकर होना चाहिये। तिस पर तो इस में कई ऐसी बातें एवम् ऐसे पात्र हैं जिन का तुम्हारे साथ सम्बन्ध है। तुम से क्या छिपा है? अन्तर्यामी तो हई हो। तुम से बढ़ कर सत्य तथा मिथ्या का कौन निर्णय करेगा? किन्तु बात तो यह ठहरी कि अल्पज्ञ होने के कारण मुझे सब सत्य ही प्रतीत होता है। अतएव जो मन में आया, जो दूसरे से सुना, जो अच्छा जान पड़ा,—सब कह दिया। सुना है कि जो तुम्हारे साथ झूठ भी नाता जोड़ता है, तुम उसे भी अङ्गीकार कर लेते हो। हम लोग तो केवल वाह्यरूप तथा भाव के जाननेवाले ठहरे, अपने अनुमान से मान लेनेवाले ठहरे कि अमुक वस्तु तुम्हें भाती है और अमुक नहीं। अपनी रुचि के अनुसार तुम्हारी भी रुचि जानते हैं। जो अपने को भाता है, जान लेते हैं कि तुम्हें भी भावेगा। नहीं तो, भला कहो तो तुम्हारी रुचि का भेद कौन जान सकता है। जैसे सब गुण तुम्हारे अनन्त एवम् अपार हैं वैसी ही रुचि भी अनन्त एवम् अपार है। कौन कह सकता है कि अमुक पदार्थ को क्यों ग्रहण करते हो और अमुक को क्यों परित्याग? भला दुर्योधन के घर के मेवा, विदुर के साग तथा सुदामा के तंडुल की कथा किस से छिपी है? किन्तु उस परित्याग तथा अङ्गीकार का भेद किस ने पाया? यों तो लोग जिसे अङ्गीकार होते देखते हैं, कहते हैं कि उस में शुद्ध भाव था। किन्तु सिद्धान्त तो यह है कि—

"भाव, कुभाव, अनख आलस हूं" तुम से कोई सम्बन्ध रखने ही से "दशों दिशाओं में मङ्गल ही मङ्गल है।" अतएव मेरी भी इच्छा है कि इस पुस्तक का कुछ न कुछ सम्बन्ध तुम्हारे साथ

हो जाय। और कोई न तो समर्पण का हो सही। किन्तु बिना स्वीकार का समर्पण कैसा? कितने को तो अपना ही चुके हो, इसे भी न अपना लो। तुम्हारी स्वीकृति से मेरा परिश्रम सुफल होगा और मैं अपने को धन्य मानूंगा। किन्तु "मेरा परिश्रम" भी कहना तो अमङ्गल ही है। क्योंकि उर अन्तर में बैठ कर सब को तो तुम्ही प्रेरणा करते हो और जिस से जो चाहते हो वही कहलाते और कराते हो। सब कार्य्यों के आदि कारण तो तुम्ही हो। हम लोग तुम्हारे हाथ में केवल शस्त्र मात्र ठहरे, जिधर चाहते हो उधर फेरते हो, जैसे चाहते हो काम में लाते हो। अतएव यह कार्य्य भी तो तुम्हारा ही है, इस के कर्त्ता भी तो तुम्ही हो। बस जो चाहो वही करो। क्योंकि तुम जिस बात में सन्तुष्ट हो मैं उसी में सुखी हूं। किन्तु कृपा कर मुझे अपना प्रेम दो। मैं तुम्हारे प्रेम का भिखारी हूं। मैं तुम्हारा प्रेम चाहता हूं, सच्चा प्रेम, शुद्ध प्रेम, पवित्र प्रेम, अनिर्वचनीय प्रेम, अलौकिक प्रेम, आत्म को विस्मृत करनेवाला प्रेम, पागल करनेवाला प्रेम, आनन्द देनेवाला प्रेम, वह प्रेम कि जिसे पा कर फिर किसी दूसरी वस्तु के पाने की इच्छा नहीं रह जाती। प्रेम देव! बस, मुझे वही प्रेम दो जिसे तुम अपने जनों को सहज में देते हो। भण्डार तो भरपूर है, देने से तो कुछ घटेगा नहीं। तुम तो पारस ठहरे, पात्रापात्र का विचार तुम क्यों करोगे? तुम से तो जिस ने मांगा, उसी ने पाया। बस मुझे भी दो। तुम्हारा बनने की मेरी बड़ी लालसा है। और नहीं तो नाम के भी नाते तो अपना लो। नाम के अनुसार कुछ गुण भी तो दे दो। क्योंकि प्रेमनिधि तुम हो। अब कहो—

"दिन ऐसे ही बितैहौ कि चितैहौ नयन कोरे से।"

बखतियारपुर, आरा १२-मार्च-१९१०।	तुम्हारे प्रेम का प्यासा, व्रजवल्लभ।

God is love ; and Love is God.

जो कल्पना, जो लालसा, जो क्षोभ मोद विचार हैं।
मानव हृदय के बीच जगते प्रेम के उद्गार हैं॥
है प्रेम जग का आदिकर्त्ता, सृष्टि का यह सार है।
है विश्व का पोषक समर्थक, ईश का आकार है॥१॥

सब महत कामों का जगत में प्रेम ही उद्देश है।
सब योग जप तप ध्यान का यह प्रेम ही अवशेष है॥
आध्यात्मिक आनन्द उन्नति का यही भण्डार है।
सब धर्म कर्म पवित्र का बस प्रेम ही आधार है॥२॥

हैं प्रेम के आधीन नभ में जगमगातीं तारिका।
हैं बोलती बन में "लगन" वश कोकिला पिक सारिका॥
है प्रेम सञ्चालक समीरण का विदित संसार में।
नभ में शशी रवि भ्रमण करते शुद्ध प्रेम प्रचार में॥३॥

कर भेद गिरिवर-गात को अविचल अलौकिक टेक से।
धाती नदी हैं सिन्धु सम्मुख प्रेम के उद्रेक से॥
शरदिन्दु नीलाकाश में जब खिलखिलाता चाव से।
सानन्द जलनिधि है उमड़ता प्रेम ही के भाव से॥४॥

घन अङ्क में बिजुली समाती प्रेम के उच्छ्वास से।
शोभा बढ़ाता गुल्म द्रुम को प्रेम के आभास से॥
घन देख केकी नाचते हैं विवश होकर प्रेम से।
हिमकर चकोर निहारते हैं प्रेम ही के नेम से॥५॥

वर कामनी के बसन के हित कीट देते प्रान हैं।
करती पुरुष के हेतु रमणी रूप योवन दान हैं॥
हैं भृङ्ग के सुख के लिये खिलते तड़ागों में कमल।
हैं मीन के सुख के लिये सहते कठिन हिम ताप जल॥६॥

मृग के लिये है वेणु रोती छेद छाती में किये।
दीपक जलाता देह अपनी शलभ के सुख के लिये॥
अपने लिये न कदापि बरबस प्रेम करना चाहिये।
परहित विमल जल से सदा हिय ताल भरना चाहिये॥७॥

है प्रेम जग का देवता सिद्धान्त सहज पुनीत है।
मिथ्या जगत का सब प्रपञ्च न प्रेम दैविक गीत है॥
नाना स्वरूपों से विचरता प्रेम है संसार में।
छवि देख लो इस की मनोहर लोक में परिवार में॥८॥

अब भक्ति शिष्यों को पिता का वातसल्य पवित्र है।
त्यों स्नेह माता का सुपावन स्वजन नेह विचित्र है॥
सात्विक सती का सत्य धर्म कठोर प्रेम उपासना।
त्यों भक्ति भक्तों की भली, सन्यासियों की साधना॥९॥

साहित्य की सेवा प्रशंसित देश की हित कामना।
त्यों धर्म का पालन जगत में बैरियों का सामना॥
ये प्रेम के सब भिन्न रूप अनूप परम पुनीत हैं।
सब नेम व्रत साधन क्रियाएं प्रेम ही के मीत हैं॥१०॥

जो भक्ति, संयम, ध्यान, पूजा, कीर्तन जग में कढ़े।
ये विविध सुन्दर नाम केवल प्रेम ही के हैं पढ़े॥
है यज्ञ अद्भुत प्रेम जग में उच्च प्रेमी के लिये।
यज्ञाग्नि में निज स्वार्थ का शाकल्य देना चाहिये॥११

है प्रेमयज्ञ न पूर्ण होता स्वार्थ की आहुति बिना।
नि:स्वार्थ प्रेमी के गुणों को मैं तुम्हें देता गिना॥
है आत्मविस्मृत महा योगी सहज प्रेमी सर्व्वदा।
इस वाह्य जग की ओर उस की दृष्टि नहिं जाती कदा॥१२

अपने सुखों की ओर वह भ्रूक्षेप है करता नहीं।
उपहास निन्दा ताप दुख से वह कभी डरता नहीं॥
उठती नहीं है भूल कर भी कामना उस को कभी।
है दग्ध ही जाती सहज में वासना उस को सभी॥१३॥

आराध्य-प्रियतम के सिवा वह और किस को मानता।
आराध्य-प्रियतम छोड़ कर जग में नहीं कुछ जानता॥
आराध्य-प्रियतम को सदा सब वस्तु में अवगाहता।
आराध्य-प्रियतम त्याग कर वह और किस को चाहता॥१४

तन्मय सदा है मग्न रहता प्रेम ही के ध्यान में।
निज को सदा है भूल जाता प्रेम ही के ज्ञान में॥
कर त्याग संस्रव स्वार्थ का वह प्रेम में अनुरक्त है।
आदर्शप्रेमी, पुण्यभाजन, प्रेम का वह भक्त है॥१५॥

जग में कभी प्रेमी नहीं कुछ मुक्ति को है मानता।
है मुक्ति प्रेम पुनीत ही मन में सदा वह जानता॥
अनुपम मनोहर सरल सुखमय भाव उस के हैं सभी।
कोई नहीं है दुःख पाता विश्व में उस से कभी॥१६॥

करुणा बिना जगदीश के प्रेमी कोई होता नहीं।
है प्रेम में उन्मत्त होकर दिवस निश रोता नहीं॥
प्रेमाश्रु मन को शुद्ध करता, स्वार्थ को देता बहा।
सङ्कीर्णता, अपवित्रता, ममता नहीं रहती, अहा!॥१७॥

पाकर प्रणयनिधि फिर नहीं नर यांचना करता कभी।
उस के हृदय से निकल जाती है सुनो वाञ्छा सभी॥
सेवी प्रणय के पदकमल का इतर पुष्प न चाहता।
है प्रेम उज्ज्वल कल्प-तरु सुख और है चञ्चल लता॥१८॥

शिक्षास्थली है प्रेम की संसार निश्चय जानिये।
जो प्रेम की शिक्षा न पाता अधम उस को मानिये॥
नर जन्म उस का व्यर्थ है जो प्रेम का भूखा नहीं।
जो प्रेम का करता निरादर, सुख नहीं पाता कहीं॥१९॥

अतएव वाचक छोड़ कर छल प्रेम की सेवा करो।
हिय की कटोरी प्रेम के पीयूष से प्यारे भरो॥
पारस्परिक द्वेषादि तज सब प्रेमरङ्गों में रंगो।
औसर नहीं फिर फिर मिलेगा मोहनिद्रा से जगो॥२०॥

(मालती)

" The beautiful, that men and Gods alike subdues,
must perish ;
For Pity ne'er the iron breast of stygian Jove
shall cherish ! "

Scheller.

सौन्दर्य्योपासक ।

(मालती ।)

प्रथम कल्पना ।

दर्शन ।

"To see her is to love her,
And love but her for ever ;
For nature made her what she is,
And never made another."
Burns.

समय का प्रबल प्रवाह प्रतिक्षण मानवी आशा और दुःख के भारी बोझ को अपनी तरल तरङ्ग में बहाये लिये जाता है। यह प्रवाह क्या किसी निर्दिष्ट स्थान को जाता है? यह समय का प्रवाह अनन्त की ओर प्रधावित होता है। क्या प्राणी मात्र नश्वर जीवन

और शरीर स्त्री की रक्षा तथा सुख के लिये अपने प्राणों को झुलाया करते हैं ? कदापि नहीं ! इस का एक दूसरा भी उद्देश्य है। परिश्रम से नित्य का भोजन प्राप्त होता है। किन्तु प्रेम के उल्लास से आत्मा की तुष्टि तथा पुष्टि होती है एवम् इस से भविष्य का बीज भी अङ्कुरित होता है।

घटनाओं के ज्वारभाठा से जो चरित्र संगठित होते हैं वे स्वयम् ही बुद्धि एवम् मन की कसौटी हो जाते हैं। चाहे कोई जाने अथवा न जाने। श्रेष्ठ व्यक्ति भी अपने अनुमान तथा विचार में भूल करते हैं। अतएव भले बुरे की यथार्थ जांच उच्च तथा क्लिष्ट शिक्षा का फल है। बहुधा नीच भी उत्तम का मनोहर रूप धारण किये धरातल में विचरण करता है, अनायास ही लोगों के चित्त को अपनी ओर आकर्षित करता है और पुष्प के कीट सा आंखों से छिपा रह जाता है। अतएव अच्छे मनुष्य भी बहुधा धोखा में पड़ विफल मनोरथ हो जाते हैं और दुष्टों को सफलता प्राप्त हो जाती है तथा अविवेकी संसार से उन्हें प्रशंसा भी मिलने लगती है।

उपर्युक्त कथन मेरी जीवनी के एक पृष्ठ से प्रत्यक्ष चरितार्थ होगा।

मैं कौन हूँ ? इस के जानने से आप लोगों को कुछ विशेष लाभ नहीं होगा। अतएव अपना पूर्व परिचय नहीं देकर मैं इस समय आप लोगों को अपने जीवन की सब से अधिक दुःख-मय घटना सुनाता हूँ।

आज आषाढ़ की कृष्णाष्टमी है। अभी चन्द्रदेव का आगमन नीलोज्ज्वल आकाश में नहीं हुआ है। किन्तु गगन में बादलों के नहीं रहने के कारण असंख्य तारागण चारो ओर से छिटक आये हैं। आज मेरे विवाह का दिन नियत है। शुभ मुहूर्त में यह कार्य्य सम्पन्न होगा। किन्तु इस समय मेरे हृदय में नाना प्रकार के भिन्न भिन्न भावों का विकाश हो रहा है।

' यह मेरा दूसरा व्याह है। प्रथम पत्नी को स्वर्गवास किये आज

एक वर्ष बीत गया किन्तु उस की मूर्त्ति आज तक मेरे हृदय-मन्दिर में जागरित है। तनिक भी उस में परिवर्तन नहीं हुआ। कभी उसी के वियोगरूपी बारिधि में मेरा मन निमग्न होने लगता है। चारो ओर की सुधि जाती रहती है। कभी बाहर के बाजों की ध्वनि कान में पड़ने पर मैं चिहुक जाता और अपनी वर्त्तमान अवस्था को स्मरण कर विस्मित हो जाता हूँ। कभी इधर उधर की बातों में मन के बहल जाने के कारण पुनर्विवाह का भविष्य सुख अनुभव करने लगता हूं। कभी यह उत्कण्ठा मन को व्यग्र कर देती है कि देखूं इस पत्नी के स्वभाव, रूप, गुण कैसे हैं। कभी जी में आता है कि पुनर्विवाह की स्वीकृति अच्छी नहीं हुई। हाय! मनुष्य की सब बातें क्षणभङ्गुर हैं। कमल-पत्र पर जलबिन्दु सा कोई भाव ही स्थिर नहीं रहता। जब मुझे प्रथम बार पत्नी-वियोग हुआ था तब मेरी दृढ़ प्रतिज्ञा थी कि अब व्याह नहीं करूंगा। किन्तु वह बात वहीं रह गयी और आज वर के भेष में मैं बारातियों के संग जनवासे में आ बैठा हूं। और कभी कभी भविष्य-सुख का भी अनुभव कर रहा हूँ। किन्तु प्रथम-भार्य्या की वह मोहिनी मूर्त्ति और करुणापूर्ण दृष्टि अभी तक विस्मृत नहीं होती। इसी प्रकार सुख, दुःख, चिन्ता तथा उत्कण्ठा का खिलौना बन मैं ने रात बितायी।

ऊषा उदय होते ही व्याह के लिये मैं ने मण्डप में पदार्पण किया। रीतिपूर्वक व्याह होने लगा। भूत भविष्य का ध्यान छोड़ कर मैं भी वर्त्तमान में लीन हो गया।

ऊषा आगमन सब के लिये समान नहीं होता। कितनों की चिरवाञ्छित आशा पर पानी फिर जाता है। कितनों के हृदय में नूतन प्रेम और उत्साह का विकाश होता है। कितने शोक और चिन्ता से व्याकुल हो जाते हैं। कितनों की आंखों से आंसू की झड़ियां लग जाती हैं। कितनों के आर्द्र लोचन को सुख का पवन सुखा देता है। कोई कमल सा खिल जाता है और कोई कुमुदिनी

सा मुरझा जाता है। मेरा भी हृदय कभी कभी धड़क जाता है कि देखें आज मुझ पर क्या बीतती है ? नयी बहू कैसी मिलती है ?

पाणिग्रहण सम्पन्न हुआ। बाराती लोग बाहर गये। चहुँ ओर से ललनाएं आजुटीं। सोहागिन भांति भांति का गान और नाना प्रकार का कुतूहल करने लगीं। मँडवा की रीति रस्म की इतिश्री हुई। नई बहू के साथ गँठबन्धन किये मैं भी कोहबर की ओर चला। हर ओर रूप की हाट लगी थी। जिधर देखता उधर ही मनोहारिणी सुहागिन खड़ी थीं। सब की सब सुन्दर वस्त्राभरण से विभूषित थीं। अङ्गराग, मुखराग आदि किसी शृङ्गार की कोई कमी नहीं थी। कहीं कामिनियों की मधुर बोली मन को अपनी ओर खींच रही थी। इधर प्रभात का सुखद पवन मन को मोह रहा था। उधर चिड़ियों का मधुर कलरव सुन कर हृदय प्रफुल्लित हो रहा था। ऐसे समय में कब मनुष्य का मन स्थिर और शान्त रह सकता है। मेरा नयन खञ्जन पंख फड़फड़ाता हुआ इधर उधर मँड़रा रहा था कि अकस्मात वह एक रमणीरूपी तरुवर पर जा बैठा। फिर क्या था ? आंखों से आंखें लड़ीं सब सुधि जाती रही। चित्त व्याकुल हो गया। किसी ने सत्य कहा है कि :—

" तनिक कङ्कड़ी के पड़े, नयन होत बेचैन ।
वे बपुरे कैसे जियें, जिन नयनन में नैन ॥ "

जिस सुन्दरी पर मेरी दृष्टि पड़ी थी उस की अवस्था लग भग बारह वर्ष की थी। लड़िकाई की चञ्चलता तो पयान कर चुकी थी किन्तु अभी यौवन का पूर्ण विकाश उस के अङ्ग प्रत्यङ्ग में नहीं हुआ था। सौंदर्य्य चूड़ान्त था पर पूर्ण यौवन का संयोग नहीं हुआ था। जिस प्रकार प्रथम् ऊषा के किञ्चित प्रकाश से आकाश सुन्दर ज्ञात होता है उसी प्रकार प्रथम यौवन के किञ्चित विकाश से उस का शरीर मनोहर प्रतीत होता था। यह वर्षावारि प्रमथिता, उमङ्ग बाढ़ से विचलित, हाव भावावर्तधारिणी, तीव्र गामिनी

परिपूर्णा नदी तो नहीं थी, किन्तु वसन्त निकुञ्ज प्रह्लादिनी मन्द गामिनी सुखद कल्लोलिनी उज्ज्वल अपूर्ण तरङ्गिणी सी विशेष प्रिय ज्ञात होती थी। वह वर्षा गुल्मलतादि से आच्छादित हरे भरे प्रौढ़ पत्तों तथा सुन्दर स्वादिष्ट फलों के बोझ से अपने भार को सम्हालने में असमर्थ विशाल विटप तो नहीं थी; किन्तु ललित कोमल स्निग्ध श्याम पल्लवोंसे सुशोभित मुकलित तथा अर्द्ध विकाशित कलियोंसे विभूषित वसन्त तरुवर सी चित्त मुग्ध करती थी। देखतेही वह मेरी आंखों में समा गयी। कुछ देर आंखे वहीं ठहर गयीं। आग्रह करने पर भी शीघ्र न फिरीं। देखा कि देह की कान्ति तप्त कञ्चन वर्ण है। अति सुकुमार शरीर, अङ्ग अङ्ग से कोमलता झलक रही है। मुखमण्डल की लावण्यता देखतेही बनती है। सुन्दर गठित सघन निबिड़ केशराशि पन्नगी जसी पृष्ठ तथा कटि प्रदेश पर शोभा पा रही है, जिस की आभा "सिल्क" की "पारसी" साड़ी को बेध कर नेत्रों को शीतल करती है। प्रशस्त ललाट को सिन्दूरविन्दु बिहीन देख और सुन्दर कीरवत् नासिका में छोटी सी "नथुनी" देख कर मुझे अनुमान हुआ कि यह मनोहारिणी बाला अभी अविवाहिता है। एकवार मेरे कटाक्ष को अपनी ओर चञ्चल हो जाते देख उस ने मेरी ओर पूर्ण दृष्टि से देखा फिर वह दूसरी ओर देखने लगी। किन्तु उस के धनुषाकार भ्रू युगल मेरी आंखों में अटक गये। इस के ताम्बूलराग से रञ्जित पतले अधरों को देख कर मेरा मन मचल गया। इस के सुचिक्कन गोल कपोल पर (जिन पर बिखरे हुए केश के एक दो गुच्छे आ पड़े थे) मेरे नयन फिसल गये। उस समय कवि की यह उक्ति मुझे याद आयी कि—

"ज़ुल्फ़ें पड़ीं हुई थीं वहां रूए यार पर।
यां सांप लोटते थे दिले बे क़रार पर॥"

कृष्ण चञ्चल नयन-तारा को देख कर ज्ञात हुआ मानों पद्मवन में भ्रमर मंडरा रहे हों। किसी दूसरी ओर देख कर न जाने क्यों

एकबार वह विहंस पड़ी, ज्ञात हुआ मानो पद्म कोरक ने खिलकर मोतियों की पंक्ति दिखायी। सारांश यह कि मेरा मन मेरे हाथों से जाता रहा और यह जानने को मैं व्याकुल हो गया कि वह बाला कौन है। क्या इस से दो बातें करने का मुझे सौभाग्य प्राप्त हो सकता है? मेरा मनोभाव किसी पर विदित नहीं हुआ। और अपनी यथार्थ अवस्था स्मरण कर मैं बहुत दुःखी हुआ। हाय! कहां आया था विवाह करने और कहां प्रेम का पासा ढाल दिया? जगदीश की महिमा अपार है! कोई क्या कह सकता है कि कब क्या होने वाला है। मेरा मन एक दम दुर्बल हो गया। बाणविद्ध मृग सा वह छटपट करने लगा। उस समय मुझे बोध हुआ कि ऐसी सुन्दरी स्त्री मैंने कभी नहीं देखी है।

आज भी मेरे मन में यही बात आती है कि सौन्दर्य्य का प्रभाव अभी तक मेरे हृदय पर ऐसा कभी नहीं पड़ा था। हो सकता है कि यह बात मेरी दृष्टि दोष से हो अथवा प्रेम के रङ्गीन कांच ने मेरी आखों को तिरमिरा दिया हो। किन्तु आजन्म कदाचित् मुझे यही धारणा रहेगी कि वैसी सुन्दर रमणी मेरे दृष्टि पथ पर कभी नहीं पड़ी। मुझे ज्ञात हुआ कि यह जीव इस नश्वर संसार का नहीं है। मानो कोई अप्सरा शाप-भ्रष्ट हो इस धरातल पर भ्रमण करती हो।

मैं अपने मन के भाव को कुछ स्थिर नहीं कर सका। हाय! हाय! मुझे उस समय तनिक भी इस बात का ज्ञान नहीं रहा कि अभी जिस के सङ्ग भंवरी देकर देव तथा पितरों के सम्मुख मैंने यह प्रतिज्ञा की है कि जन्मान्तर में भी अब तुम्हारी प्रीति न छोडूंगा वह अभी दाहिनी ओर खड़ी है। हा! शपथ करते देर हुई किन्तु उसे भङ्ग करते विलम्ब नहीं हुआ। अभी जिसे अपना तन मन धन सर्वस्व दे चुका हूं, उसे क्या उत्तर दूंगा?

पर यह सब ज्ञान उस समय कहां रहा? जब मैं अपने में

होता तब न इन बातों का विचार करता। वहां तो केवल यह चिन्ता बंधी थी कि यह परम सुन्दरी कौन है? जी चाहता था कि इसे देखते ही रह जाऊं।

यह घटना कहते मुझे इतनी देर हुई, किन्तु यह कार्य्य क्षण मात्र का था। आंखों को उस ओर जाते देर न हुई कि प्रेम-प्रदीप हृदय मन्दिर में प्रज्वलित हो गया। और नाना प्रकार के भाव मन में उदय होने लगे। अपने मन के भावों को छिपा कर मैं ने कोहबर में प्रवेश किया और वहां यथाविधि लोकाचार होने लगे

द्वितीय कल्पना।

परिचय।

" The love which my spirit hath painted
It never hath found but in thee!"
Byron.

कोहबर से बाहर आकर मैं जनवासे में आया। प्रायः नौ बज गये थे। आज आकाश किञ्चित् मेघाच्छन्न हो आया है। ठंढी ठंढी हवा चल रही है। कभी कभी सूर्य्य बादलों से ढक जाता है और कभी घटा का आवरण हट जाने के कारण भास्कर भगवान् अधिक ताप से संसार को तप्त करने लगते हैं। पावस में संयोगियों के उमङ्ग बढ़ानेवाले और विरही जनों को सतानेवाले पपीहा अपने हृदयाकर्षक रव आम की सुन्दर डालियों से सुना रहे थे। जहां हमलोगों का निवास था आम केबगीचे की शोभा अत्यन्त सुहावनीथी।

बीच बाग़ में एक शामियाना खड़ा था। जिस में स्थान स्थान पर कांच के सुन्दर झाड़ कुंडी और फानूस लटक रहे थे। सघन वृक्षों के नीचे जगह जगह पर रावटी तथा खीमें गड़े थे जिन में बैठ कर लोग विश्राम कर रहे थे। कहीं खाने पीने का उद्योग हो रहा था। कोई किसी पेड़ के नीचे बैठा चूल्हा फूंक रहा था। कोई खाने की सामग्री जुटा रहा था। कोई स्नान ध्यान आदि में लगा था। चारों ओर हलचल मच रही थी।

विषण्ण मन में भी अपने एक मित्र के साथ एक खोमें में बैठा था। यह मेरे साथ कालिज में पढ़ते थे और आप मेरे स्वजनों में एक थे। इन का वयस प्रायः बीस वर्ष का था। मुझे चिन्तित देख कर इन्हों ने पूछा कि "क्यों भाई बात क्या है? तुम ऐसा उदास क्यों हो?। नववधू मनमानी नहीं मिली क्या?"

मैं—नहीं कुछ नहीं! कोई ऐसी बात नहीं है। अभी तो मैं ने उसे देखा भी नहीं।

मित्र०—तब क्यों? क्या पहली स्त्री की सुधि आयी है?

मैं०—व्यर्थ क्या बक रहे हो।

मित्र०—बुरा न मानो। तुम्हारा मुंह देख कर मुझे दुःख होता है।

मैं०—दुःख करने की कोई बात नहीं। तुम मुझे न छेड़ो।

मित्र०—छिपाने की चेष्टा व्यर्थ है। तुम्हें देख कर मुझे निश्चय होता है कि तुम किसी घोर चिन्ता में डूबे हुए हो। देखो छिपाने से तुम्हारी अवस्था छिप नहीं सकती। साफ कहो बात क्या है?

मैं०—भाई, क्या कहूँ? यहां आकर तो मैं लुट गया।

मित्र०—हैं! बात क्या है? क्यों? यह क्या? आप की आंखों से आंसू क्यों गिरने लगे? भाई धीरज धरो! मेरा मन बहुत घबड़ा रहा है, कुशल तो है? साफ कहते क्यों नहीं? बात क्या है?

मैं०—हृदय की प्रतिमाच्युत अरघा पर पत्नीमूर्त्ति स्थापन करने आया था। किन्तु एक नवीन प्रतिमा ने उस पर बलात्कार आसन ग्रहण कर लिया।

मित्र०—तुम्हारी इस रहस्यपूर्ण विषम समस्या को मैं कुछ भी नहीं समझ सका?

मैं०—क्या इस से भी साफ कहना होगा, तो लो सुनो एक अनजान कामिनी से मेरी आंखें लड़ गयीं। अब हृदय व्याकुल हो रहा है समझ में नहीं आता कि भाग्य में क्या, बदा है?

मित्र०—यों कहिये ! हज़रते इश्क़ ने, देखता हूं, बेढबफांसा है। यह क्या ? तुम से तो ऐसी आशा न थी। आज तुम्हारा भावना भाव कहां है ? सच कहो, तुम ने यह नया रंग क्या जमाया ?

मैं०—अब अधिक न सतावो। जो होना था सो हो गया। मैं अब आपे में नहीं हूं।

मित्र०—अच्छा यह तो कहो कि वह कौन है ?

मैं०—सो तो मैं नहीं जानता। पर उसे देखे बिना अब एक छन भी रहा नहीं जाता।

मित्र०—तो फिर यहां क्यों आये हो ? वहीं उसे देखते रहते।

मैं०—क्या तुम ने नहीं सुना है कि

" इन दुखिया अँखियान को, सुख सिरजे हैं नाहिं।
पावें तो देखें नहीं, देखे बिन पछताहिं ॥"

कवियों की एक एक उक्ति अब मुझे हृदयङ्गम होने लगी और उन का विशेष भाव मेरी समझ में आने लगा।

मित्र०—क्यों न हो। मुझे भी आप के भाव झलकने लगे।

मैं०—पराये की विपत्ति पर ठट्ठा उड़ाना बड़े लोगों का काम नहीं है। मर्मान्तिक वेदना दूसरा क्या जानेगा। " जा के पांव न फटी बेवाय, सो क्या जाने पीर पराय।"

हृदय खोल कर दिखाने की वस्तु नहीं, नहीं तो तुम्हें प्रत्यच्छ दिखा देता कि मेरे मन की अवस्था कैसी है।

मित्र०—नहीं ! ऐसा करने की कोई आवश्यकता नहीं। तुम्हारे मुखड़े की कान्ति ही तुम्हारी ओर गवाही दे रही है। किन्तु यह तो कहो कि वह बड़भागिनी है कौन ?

मैं०—भाई सो तो नहीं जानता। किसी से पूछने का मुझे साहस नहीं हुआ। देखूं फिर उसे देख सकता हूं वा नहीं।

मित्र०—वाह ! यह तो तुम ने अच्छी कही। घंटों वहां डटे रहे फिर किसी से पूछा भी नहीं कि तुम्हारे तन, मन, ज्ञान तथा बुद्धि की लूटनेवाली कौन है। ये सब व्यर्थ की बातें हैं। इन्हें छोड़ो। बैठे बिठाये अपने सर पर क्यों बला लेते हो।

मैं०—तुम भूलते हो। यह बला इच्छा पूर्वक ली नहीं जाती। वरन् आप से आप यह सिर पर आ पड़ती है। जो छोड़ने को तुम ने कही, वह तो होने की नहीं। मेरे प्राण एवम् मन तो दूसरे की मुट्ठी में हैं, मैं छोड़ूं क्या ? प्रेम वह पक्का रङ्ग है जो छुड़ाने की चेष्टा करने पर अधिकतर गाढ़ा होता जाता है, कभी छूटता नहीं।

मित्र०—तुम्हारी बेतुकी बातें अब मुझे नहीं भातीं। हाय ! तुम से यह कौन कब और आशा करता था कि इस प्रकार तुम इश्क का चौसर खेलोगे। परमात्मा की ओर तुम्हारी सच्ची पुनीत प्रीति कहाँ गयी ? जिस के दर्शन के लिये आज सात वर्ष से तुम व्यग्र थे उन्हें क्या तुम ने एक बारगी भुला दिया। इस घोर पापकर्म की ओर क्यों बढ़ते हो ? परायी स्त्री पर दृष्टि डालना क्या अच्छा है ? अभी अपने को सम्हालो नहीं तो फिर बेकाम हो जाओगे। देखो, अग्निकण को मनुष्य पैर से कुचल कर तुरत बुता दे सकता है किन्तु छोड़ देने पर जब वह प्रबल हो जाता है तो नदी भी उसे बुझा नहीं सकती। अभी संयम करो नहीं तो फिर यत्न काम नहीं आवेगा।

मैं०—मित्र की दुर्बलता यदि मित्र सहन नहीं करेगा तो कौन करेगा ? अच्छा तुम्हें जो उचित ज्ञात हो वही कहो, किन्तु मैं तो अपने को अब सम्हालनेमें असमर्थ हूं। क्या तुम ने नहीं सुना है कि "मन में रहे जो ताहि दीजिये विसार, मन आप बसे जामें ताहि कैसे को विसारिये।" किन्तु यह बात मेरी समझ में नहीं आती कि प्रेम इतना दुःखद क्यों होता है ?

मित्र—इब्तदाय इश्क है रोता है क्या ?
आगे आगे देखना होता है क्या ?

इसी से कहता हूं कि अङ्कुर ही में इस वासना की छिन्न-भिन्न करना उचित है।

मैं०—प्रेम के स्रोत को निरुद्ध करने की सामर्थ्य मुझ में नहीं है। तुम्हारी समझ में क्या रमणीप्रेमाकाङ्क्षा पाप है ?

मित्र०—मैं इस विषय में तुम से सहमत नहीं हूं। यह प्रेम नहीं है। मेरी समझ में यह बात नहीं आती कि प्रथम दर्शन से प्रेम कैसे उत्पन्न होता है। प्रथम दर्शन से घटनाक्रम से राह चलते एक बार सहसा किसी को देख कर जो प्रेम उदय होता है वह कभी प्रगाढ़ नहीं हो सकता। वह केवल लालसाजनित क्षणिक मोह है, प्रेम नहीं। उस की उत्तेजना बहुतप्रबल होती है और वह मनुष्य को एकदम ज्ञान शून्य कर छोड़ता है। किन्तु यथोचित संयम का सहारा लेने से सब विपद् तथा आशंका हट सकती है। असङ्गत प्रवृत्ति के स्रोत को आदि ही में नहीं रोकने से बढ़ जाने पर क्रमशः वह कूल अतिक्रम कर सब को डुबो देता है। सत्य सदा अप्रिय होता है, इसी से कहते डरता था, किन्तु अब देखता हूं कि कहे बिना काम भी नहीं चलता। तुम्हें वेदना देने की इच्छा से मैं यह अप्रिय सत्य नहीं कहता।

मैं०—तुम्हारे ऐसा कहने का कारण यह है कि अभी तक तुम ने किसी प्रेम करने को योग्य पदार्थ को नहीं देखा है। जिस सौन्दर्य्य का आदर्श तुम्हारे हृदय में चित्रित है, यदि उस की छाया तुम किसी वाह्य वस्तु में देखते तो तुम्हें ज्ञात हो जाता कि प्रथम दर्शन से प्रगाढ़ प्रेम क्यों कर उत्पन्न होता है ? मेरे मनोगत भावों को तुम नहीं समझ सकते। उस देवी की मैं भक्ति करता हूं हृदय से मैं उस की श्रद्धा करता हूं, उसे मैं पूजा की पात्री समझता हूं, इस लावण्य प्रतिमा ने मेरा जीवन सर्वस्व अपहरण किया

है ! मेरे जीवन की सुख-शान्ति उसी की कृपा के अधीन है। वह भूलोक दुर्लभ नारी मेरी नहीं हो सकती, यह मेरा मन साफ कहता है। किन्तु मनाने से नहीं मानता।

मित्र०—समझ लिया तुम्हारे साथ बकवाद बढ़ाना व्यर्थ है।

इतने हीं में नौकर ने आकर कहा कि हवेली से आदमी बुलाने आया है। क्या करता, लाचार पालकी पर चढ़ कर हवेली में पहुँचा। यहां पर्यङ्क पर एक साफ सुथरा बिछावन पड़ा था। इधर उधर कई स्त्रियां बैठी हुई थीं। मेरी सास भी वहीं थीं। उन को मैं ने सादर प्रणाम किया और उन को आज्ञा पा वहीं बैठ गया और वह वहाँ से चली गयीं। मेरी आंखें अपना भूला धन खोजने लगीं।

भाग्यवश थोड़ी देर में वह भी वहां आ कर चुपचाप अति गम्भीर भाव से एक कोने में बैठ गयी। उस की चाल देख कर ज्ञात हुआ मानो नदी में लावण्यता की छोटी छोटी तरङ्गे उठती हों। अब क्या था? लालची लोचन बार बार उसी ओर जाने लगे। जिसे देख एक प्रौढ़ा बोली "क्यों न हो अपना सभी पहचानता है। देखो न, किसी दूसरे की ओर नहीं देख, बाबू अपनी साली को कैसी प्रेम-पूर्ण-दृष्टि से देख रहे हैं। क्यों बाबू यह पसंद आती है? इसे भी साथ लिये जाइये न?"

अब क्या था। सब की सब हंस पड़ीं। ज्ञात हुआ मानो चन्द्रालोक में विद्युत् का प्रकाश हुआ। मैंने लज्जावश शीश झुका लिया। किन्तु इतना जान कर कि यह मनमोहिनी मेरी कोई अपनी है, हृदय सरोवर में आनन्द की लहर उठी। मेरी साली ने भ्रूयुगल कुञ्चित कर कहा कि "मुझे क्यों कुढ़ाती हो, कहो तो मैं यहां से चली जाऊं।" भान हुआ मानो कोकिला ने पञ्चम में अलापा। आंखों का घुमाना हृदय में गड़ गया। भ्रूयुगल जुटे, जान पड़ा मानो धनुष में गुण पड़ा। लज्जा एवम् क्रोध से कपोल किञ्चित् लाल हो आये ज्ञात हुआ मानो कमल खिल गये। संकोच से अधर

फड़क उठे मानो मन्द मन्द वसन्ती पवन के संचालन से गुलाब पुष्प के कोमल पत्र हिल गये।

फिर इधर उधर की बातें होने लगीं। कुछ देर हंसी दिल्लगी की भी ठहरी। मुझे ज्ञात हुआ कि मेरी पत्नी की तीन बहन और हैं। उन में बड़ी का ब्याह हो चुका है और छोटी दो कुंआरी हैं। मेरी प्रेयसी मेरी साली है।

आज ही बिदाई का दिन है। बिदा होते समय मेरी सास ने आ कर कहा कि बबुआ आप दूरदेश के रहने वाले हैं। घर में कोई पुरुष नहीं है कि आप का सम्वाद लिया करेगा। कृपा कर बीच बीच में पत्र लिखा कीजियेगा। और यदि उत्तर जाने में बिलम्ब हो तो बुरा न मानियेगा। यहां इसी के (मेरी प्रेयसी को दिखा कर) नाम से पत्र भेजियेगा। मालती आप के पत्रों का उत्तर दिया करेगी।"

मैं ने नम्र भाव से अङ्गीकार किया। मन ही मन इस बात पर प्रसन्न भी हुआ कि मालती के संग पत्रव्यवहार करने तथा अपने मनोभाव के प्रकट करने का यह अच्छा सुयोग मिला;

सब को अपने काम में इधर उधर लगे हुए देख कर अवसर पा मैं ने साहस किया और गद्गद स्वर से "मालती" ऐसा कह कर अपनी प्रेयसी का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया। कण्ठ से आवाज निकलते निकलते मेरा कलेजा धड़क उठा, रोमाञ्च हो आया, गालों पर खून दौड़ आया और मैं सहम गया।

लज्जाशीलता की मूर्त्ति ने अपने नयन को नीचे किये तथा पद-नख से पृथिवी को खोदती हुई अपने अङ्ग-प्रत्यङ्ग को समेट लिया। जान पड़ा मानो पन्नगी चोट खा कर ऐंठ गयी हो। बैठे ही बैठे कमर ने सौ सौ लच खायी। कपोत की सी गर्दन अनायास ही हिल गयी। नहीं कह सकता किन्तु हो सकता है कि जूड़ा

भी खुल गया हो। उस का यह भाव देख कर मन हाथों से जाता रहा।

मैंने उस विधाता को लचलच धन्यवाद दिया जिस ने इस अनुपम रूप, कोमल अङ्ग और अपार मनोहर छवि को बनाया। गङ्गाजल पर चन्द्रालोक के नृत्य जैसा सुकुमार, नीलोज्ज्वल गगन जैसा कोमल, नील नीरद से वेष्ठित शशांक जैसा लावण्यमय जो कुसुम उस गृहकानन को सुशोभित करता था वह नन्दनबन में भी खिलता है वा नहीं सो नहीं कह सकता।

साहस पर भार दे कर मैं ने कहा " मालती! तुम्हारा नाम कैसा मनोहर है। तुम्हारे जैसा रूप मैंने आज तक कहीं नहीं देखा।" कुछ उत्तर नहीं मिला। नहीं कह सकता कि मेरा मनोभाव उस पर प्रकट हुआ अथवा नहीं। जानता हूं कि मन की भाषा मन समझता है। प्रेम के स्पर्श से दो हृदयतंत्री का सुर मिल जाता है। एक हृदय बाटिका में मनसिज माली आरोपित प्रेम सुमन के विकसित होने पर उस का सौरभ दूसरे हृदयकानन में फैलता है। प्रीति का प्रभाव प्रेयसी पर अवश्य पड़ता है। किन्तु उसे चुप देख कर मुझे संदेह होने लगा कि वह मुझ से घृणा तो नहीं करती, मेरी बातें उसे बुरी तो न लगीं, कहीं वह मुझ से रुष्ट तो न हो गयी।

उस समय मन में यही भाव आये। किन्तु अब कह सकता हूं कि ऐसी कोई बात न थी। अनूढ़ा अज्ञातयौवना थी इसी से प्रेम की गूढ़ सारगर्भित भाषा समझने में असमर्थ थी; अपने मनोगत भावों को वह भलीभांति निरीक्षण नहीं कर सकती थी, उन के तत्त्वों को नहीं जान सकती थी। अत्यन्त लज्जाशीला होने के कारण मेरी बातों का उत्तर उस ने न दिया। नहीं तो साली बहनोई में कुछ ऐसा बर्त्ताव थोड़े रहता है। सालियां तो प्रायः जान बूझ कर अपने बहनोई को कुढ़ाया करती हैं और उन से व्यर्थ का बकवाद बढ़ाया

करती हैं। नहीं बोलने पर भी छेड़छाड़ करना, इच्छा नहीं होने पर भी अपने निरर्थक प्रश्नों का उत्तर लेना, खीझने पर अधिक खिझाना, खिन्न मन को अपने व्यङ्ग तथा विनोदालाप से प्रफुल्लित करना, चिन्तित हृदय को भी शान्तिप्रदान करना तो इन का स्वाभाविक धर्म ही है। किन्तु मेरे भाग्य में यह सुख कहां बदा था? यहां तो लज्जा की मूर्त्ति, गम्भीरता की प्रतिमा, हठ का रूप एवम् निष्ठुरता का अवतार मेरी प्यारी मालती थी।

आज ही क्यों? अपने इन गुणों के द्वारा यह मुझे सर्वदा सताती रही। भला कौन बता सकता है कि इन मायारूपिणी अबलाओं का हृदय विधाता ने ऐसा कठोर क्यों बनाया? कुसुम के भीतर पाषाण क्यों रखा? किसी ने सत्य कहा है कि "कमल नयन कुवलय दृग लोचन अधर मधुर निर्माने, सकल शरीर कुसुम तुम सिरजल, किय तुम हृदय पषाने।" किन्तु देखता हूँ कि जड़ जगत् का ऐसा नियम ही है। क्योंकि विधाता ने सागर के जल को खारा किया, गुलाब में कांटा दिया, चन्द्रमा के हृदय पर कलङ्क का छाप लगाया, अग्नि को धूम से शोभा बढ़ाई, कुसुम में कीट पाला, नरक के पथ को कुसुमास्तृत किया, प्रणय को विरह दिया और कोमलाङ्गियों के हृदय को कठोर बनाया।

कुछ दिनों के बाद मुझे ज्ञात हुआ। किन्तु उस समय तो मालती के चुप रहने पर मुझे बहुत दुःख हुआ, मन में निराशा राज्य करने लगी और अपने पर क्रोध भी हुआ। जिन लोगों ने मेरा व्याह ठीक किया था उन पर भी जी जला। मन में आया कि इसी के संग लोगों ने मेरा विवाह ठीक क्यों नहीं किया। यदि इसी से मेरी शादी आज हुई रहती तो मैं कितना सुखी होता— कैसा स्वर्गानन्द आज इसी लोक में अनुभव करता।

इसी समय आशा देवी मोहिनी रूप धारण किये सामने आ खड़ी हुई। फिर उन्हों ने मुझे क्या क्या प्रलोभ दिया और मेरे मन को

क्यों कर समझा था सो अब याद नहीं है। चेष्टा करने पर भी स्मृति-पथ पर नहीं चढ़ता, सारा परिश्रम विफल जाता है।

बहुत दिनों के पश्चात् अपनी पत्नी से मैंने सुना कि मालती सर्वदा लज्जा के बोझ से दबी रहती है। कभी मुंह खोल कर अपनी सहेलियों से भी नहीं बोलती। सदा चिन्तित सी रहा करती है। बरसों के बाद मेरे कलेजे का बोझ हटा। किन्तु उस समय तो मेरा दुःख असह्य हो गया था।

विदा हो कर मैंने घर की राह ली। मेरी पत्नी की बिदाई नहीं हुई। मार्ग में अपनी ही चिन्ता में मैं डूबा रहा। मन की वेदना बढ़ती गयी। तब ज्ञात नहीं हुआ, किन्तु अब समझता हूं कि यदि मेरी नई बधू मेरे साथ आती तो मैं कदाचित् मालती को अपनी पत्नी के रूप गुण पर मुग्ध हो कर भूल जाता। मालती से प्रेम का पलटा न पाने के कारण हो सकता था कि मैं अपनी स्त्री की प्रीति में अपने को भुला देता, किन्तु मेरे भाग्य में ऐसा नहीं था। मुझे तो दुःख तथा चिन्ता में दिन बिताना था। आप लोगों को अपनी विपद कहानी सुनानी मेरे अदृष्ट में था। सारी जिन्दगी रोना मेरे बांटे पड़ा था। तो इस के विपरीत भला कैसे होता।

तृतीय कल्पना।

प्रेमप्रलाप।

" Ye who have felt the dear luxurious smart,
When angel charms oppress the powerless heart,
In pity here relent the brow severe.
And o'er Fernando's weakness drop the tear."

Camöenso.

पतित पावनी पुनीत श्री सरयू जी के किनारे एक दिन संध्या समय मैं वायुसेवन कर रहा था। प्रकृति की शोभा अकथनीय थी। पश्चिम ओर दिवाकर अस्ताचल की ओर गमनोन्मुख थे। शीतल मन्द सुगन्ध समीर बह रहा था। निकटस्थ वृक्षों पर चिड़ियाँ चह चहा रही थीं। कलकल ध्वनि करता हुआ सरयूनीर अपने वेग से बहता चला जाता था। प्राचीन कवि का वाक्य ध्यान में चढ़ आया कि नदी स्रोत तथा समय किसी की अपेक्षा नहीं करते। कुछ देर के बाद चन्द्रालोक ने बालुकाराशि की शोभा बढ़ाई। चन्द्ररश्मि सरयू के अगाध हृदय पर नृत्य करने लगी। इस अनुपम दृश्य को देख कर मन को तनिक विश्राम मिला। चिन्ताकुल प्राण विरह-जनित दुःख को क्षण भर भूल गया।

ससुराल से लौटे आज मुझे लगभग एक बरस के बीत गया। किन्तु मालती की वह हृदयहारिणी मूर्त्ति अभी तक मेरे स्मृति पटपर जागरित है। मेरे हृदय गगन में उस का रूप-नक्षत्र एक भाव से अभी तक ज्योतिर्मान है, वह अस्त नहीं हुआ, उस में परिवर्त्तन भी नहीं हुआ। बीच में मैंने उसे कई पत्र भी लिखे किन्तु सन्तोषजनक उत्तर किसी का नहीं मिला। बालिका सुलभ स्वभाव-वश वह मेरे गूढ़ तथा गम्भीर प्रेमालाप को ठट्ठा में उड़ा देती थी। प्रेम-पत्रिका का रूखा उत्तर देती थी। उस के व्यवहार से मेरा हृदय दग्ध हो रहा था। विरह-ज्वाला दिनों दिन बढ़ती जाती थी। मेरा मन व्याकुल होता जाता था।

एक बार मैंने उस से पूछा था कि "मालती! क्या तुम मुझे प्यार करती हो?" उस ने उत्तर दिया था कि "नहीं!"। हाय! हाय! जान पड़ा मानों मुझे बिच्छू ने डंक मार दी। नस नस में बिजली दौड़ गयी। मुझे ज्ञात हुआ कि मेरे कलेजे से किसी ने कुछ निकाल लिया है। मेरी मर्मान्तिक बेदना सीमा को पहुंच गयी थी। फिर मुझे साहस नहीं हुआ कि कुछ उस से कहूं। इधर उस को पत्र लिखना भी कम कर दिया था। किन्तु मन नहीं मानता था। प्रति दिन पत्र लिखने की सामग्री लेकर बैठता था, चिट्ठी लिखने की चेष्टा करता था; किन्तु "पाती भींजत नैन जल, कर कांपत मसिलेत। पापी विरहा मन बसत, व्यथा लिखन नहिं देत॥" की दशा हो जाती थी।

आज चिन्ता और दिनों से अधिक व्याकुल कर रही थी। चित्त बहुत विकल हो गया था, वही भूलता भटकता इधर निकल आया था। यहां कुछ देर तक तो मन बहला रहा। किन्तु फिर वही ध्यान बंध गया। उसी की सुधि ने आ घेरा, शोक ने पुनः घर दबाया। दिल धड़कने लगा। अपनी दशा किस से कहूं? कौन समझे? जिस ने अपने कलेजे को निकाल कर किसी दूसरे के पाद-

पद्म पर समर्पण किया है. जिस ने अपने कलेजे पर पत्थर बांध कर अपने प्राणों को रक्षा की है, जिस ने अपने गले को अपने हाथों से काटा है, जो दिल देकर बेदिल हो चुका है, जिस ने अपने हृदय को चीरकर अपनी प्रेयसी को दिखा दिया है—वह मेरी मर्मवेदना समझेगा। जिस का प्रणय केवल स्मृति के सहारे सजीव है, उस के सिवाय मेरी बात कौन समझेगा ? जिस के प्रणयदीप का निर्वाण निराशावात के झकोरे से भी नहीं होता, उस के सिवाय मेरे इस प्रेम-प्रलाप को कौन समझेगा ? जो कवि नहीं होने पर भी वियोग व्यथा को मर्मान्तिक कविता समझता है, मेरी कहानी उसी को रुचिकर होगी और जो सर्व त्यागी होकर प्रेम का भिखारी बन अपनी प्रणयनी की चौखट पर सीस रगड़ता है, मेरे साथ उसी को सहानुभूति होगी।

आज आठ वर्ष से मैं प्रेम की भूलभुलैया में पड़ा हूं। अपने इष्टदेव के दर्शनार्थ मैं आज आठ वर्ष से व्याकुल हो रहा हूं। उस की सलोनी सांवली सूरत का दिनरात ध्यान करता हूं, उसी के मिलने की अभिलाषा से मैं अपने प्राणों की रक्षा करता हूं। अपने शास्त्र के कथनानुसार मुझे पूर्ण आशा है कि मैं एक दिन अवश्य सच्चिदानन्द आनन्दकन्द परब्रह्म का दर्शन पाऊंगा, जिन के रूप के विषय में श्री गोस्वामी जी ने कहा है कि :—

“नील सरोरुह नील मनि, नील नीरधर स्याम।
अंग अंग प्रति वारिये, कोटि कोटि सत काम॥”

बीच बीच में मैं उन की कृपा भी अनुभव करता हूं। यथार्थ बात कहने में भय ही क्या है, कभी कभी मुझे स्वप्नावस्था में उन की झलक भी दिखाई पड़ती है। और उन की रसभरी मधुर मनोहर वाणी भी उसी अवस्था में कर्णरन्ध्र में प्रवेश करती है। किन्तु इतने पर भी मेरा चञ्चल मन मालती पर चला गया और आज मैं उस के लिये व्याकुल हो रहा हूं।

हाय ! इस चञ्चल मन का क्या ठिकाना ? इस की रुचि का क्या भरोसा है ? इस की गति का कौन अवरोध कर सकता है ? मन क्या चाहता है सो भी तो ज्ञात नहीं होता ? क्यों इधर से उधर भूत सा भटका करता है ? प्रेम क्या सचमुच प्रेमी को अन्धा बना देता है ? बुद्धि को नष्ट कर देता है ? पूर्वापर के ज्ञान से मनुष्य को वञ्चित कर छोड़ता है ? इसी से तो लोग कहते हैं कि प्रणय आंख से नहीं वरन् चित्त से देखता है। इस का भेद तो यही है कि यदि मैं अपने "प्रियतम" को अपनी इन आंखों से देखे रहता तो कदाचित् मालती पर मेरा मन नहीं आता। किन्तु वह सौभाग्य तो मुझे प्राप्त हुआ नहीं। यदि जागरित अवस्था में मुझे अपने इष्ट देव का दर्शन हुआ होता तो कदापि मैं मालती के लिये आज नहीं मरता। किन्तु पछताने से अब क्या होता है ? अब तो देखता हूं कि " यह भी न मिला वह भी न मिला "।

आज मैं सब की आंखों में हलका हो रहा हूं। मेरे आन्तरिक भाव को नहीं जानने के कारण लोग मुझ से ठट्ठा उड़ाते हैं। मेरे मनोगत भावों को, मेरे अन्तःकरण की दाह को नहीं जानने के कारण लोग मेरा उपहास करते हैं। किन्तु पराये की पीर जानना कुछ सहज नहीं है। इसी से कविवर विद्यापति ने एक स्थान पर लिखा है कि " पर दुख दुखी नहिं कोई।"

अपनी कहानी लिखते मुझे आज भय होता है। डरता हूं कि लोग निन्दा करेंगे। मुझे पागल समझ कर मुझ पर हंसेंगे। परन्तु जो शून्यहृदय है वही ठट्ठा उड़ावेगा, जो कुछ नहीं समझता है वही हंसेगा; जो अज्ञ है वही मेरा उपहास करेगा, जो प्रेम से वञ्चित है वही मेरी निन्दा करेगा। जिसे प्रेमरस का आस्वाद मिला है, वह अवश्य मेरे दुःख से दुःखी होगा। जिस ने प्रेम—पयोनिधि में सन्तरण किया है वह मेरी व्याकुलता को अनुभव करेगा। जो प्रेमावर्त्त में डूब उतरा चुका है, वही मेरी

दुर्बलता को क्षमा करेगा। अप्सरा विनिन्दक सौन्दर्य्य का जिस के दुर्बल हृदय पर प्रभाव पड़ा है, जिस ने प्रीति का मधुर चपेट सहन किया है, वही भौंह बंक करके मुझे आंख नहीं दिखलावेगा, बरन् मेरी निर्बलता पर करुणा का आंसू बहावेगा। जो प्रेम-तत्वों का ज्ञाता है, जो संसारी सुखों से विरागी हो अपने प्रेमपात्र का अनुरागी बना है, वही मेरी दशा पर नहीं हंसेगा। जिस ने अपने सुख दुःख मान तथा अपमान को किसी दूसरे के हाथों में सौंप दिया है, वह मेरे संग उपहास नहीं करेगा। जो प्रणय की फांस में फंस कर पिञ्जरबद्ध पक्षी सा छट पट कर रहा है, जो अपने प्राणाधिक प्रेमप्रतिमा को एक बार देखने के लिये आठ आठ आंसू रो रहा है, क्षुधित रहने पर भी जिसे भोजन की रुचि नहीं होती, प्यासे रहने पर भी जो हाथ में जल लिये बैठा रह जाता है, जलपात्र को अपने होठों तक नहीं ले जाता, महीनों नहीं सोने पर भी जिस को आंखें नहीं लगतीं, जो निर्ज्जन स्थान में बैठा निर्भय रोया करता है और अपने रोदन का कारण नहीं जानता उसी की सहानुभूति मेरे सङ्ग होगी।

मेरा ऐसा क्या दोष है कि विधाता मुझे इतना रुला रहे हैं? मैं ने कौन ऐसा पाप किया जिस का यह प्रायश्चित्त भोग रहा हूं? मैं सौन्दर्य्यानुरागी हूं; सौन्दर्य्योपासक हूं अवश्य किन्तु इस से क्या मुझे आजन्म रोना पड़ेगा? सौन्दर्य्य को कौन नहीं चाहता? सुन्दर तितली को देख कर किस की आंखें उस की ओर नहीं दौड़तीं? सुन्दर सुगन्धित सुमन को देख कर कौन मोहित नहीं होता? अमल धवल-किरण-राशि-शरदेन्दु को देखने की इच्छा किस को नहीं होती? शीतल मन्द सुगन्ध समीर का सेवन किस को नहीं भाता? लहराती हुई सुन्दर नदी के कूल पर बैठ कर कौन आनन्द नहीं पाता? नील नीरद पूर्ण आकाश की शोभा देख कर किसके हृदय गगन में आनंद की घटा नहीं उमड़ती? बाल वसन्त विहारी

विहङ्गमकुलभूषण कोकिल का आलाप सुन कर कौन मुग्ध नहीं होता? तरुण अरुण की अनुपम छटा देख किस का मन आह्लादित नहीं होता? तो फिर सुंदरी रमणी को देख कर मेरा मन यदि मुग्ध हुआ तो इस में पाप क्या है? इस के लिये मैं रुलाया क्यों जाता हूं?

मैं मालती को पाप-दृष्टि से कदापि नहीं देखता। मैं उसे देखना चाहता हूं—सर्वदा देखना चाहता हूं—और उसे केवल अपनी कहना चाहता हूं। जैसे सुंदर पक्षी को देखकर लोग अपने पास रखना चाहते हैं, जैसे सुंदर पुष्प को देखकर लोग अपनी वाटिका में आरोपन करना चाहते हैं, उसी प्रकार मैं भी मालती को अपनाना चाहता हूं। इस में मेरा स्वार्थ कुछ नहीं है। ईश्वर ने मालती को बनाया—उस को सौन्दर्य्य दिया—उसे देख कर, उसे पाकर मैं अपने इष्टदेव, उस के कर्त्ता को उन की इस कारीगरी के लिये धन्यवाद देना चाहता हूं।

अब कहिये मैंने कौन ऐसा महापाप किया कि जिस के लिये इतना रोना पड़ता है? ऐसा कौनसा गुरुतर अपराध किया, जिस हेतु विधाता मुझे इतना सता रहा है। विधाता ने एक को सुन्दर बनाया और मुझे सौन्दर्य्यप्रेमी किया, इस में मेरा क्या दोष है? जिसे मैं सुन्दर पाता हूं उसी से अनुराग करता हूं क्योंकि मैं वहां अपने इष्ट देवता का विशेष विकाश पाता हूं। विधाता ने जगत् को सुन्दर बनाया और मुझे अन्धा नहीं किया इस में भला मेरा क्या दोष है? विधाता ने जिसे सौन्दर्य्यानुरागी किया वह सौन्दर्य्यानुरागी हुआ, जिसे पाषाणहृदय का बनाया, वह पाषाण हृदय का हुआ, जिसे मनोहर बनाया, वह मनोहर हुआ, जिसे घृणित बनाया, वह घृणित हुआ, जिसे कोमल बनाया वह कोमल हुआ, जिसे निठुर बनाया वह निठुर हुआ, इस में भला दूसरे का क्या अपराध है?

जो सुन्दर है उसे प्यार करना क्या पाप है? सरयू! तुम्हारे निकट आकर मनुष्य आनन्द पाते हैं—सुख अनुभव करते हैं—क्या यह पापकर्म है? ज्योत्स्नामयी रजनी में लोग भ्रमण कर सुखी होते हैं—यह क्या पाप है? सुन्दर सुगन्धमय फूलों को तोड़कर लोग कण्ठहार बनाते हैं, क्या इस में कोई दोष है? घन उमण्ड को देख कर मोर नाचता है, चन्द्रमा को चकोर एकाग्र-चित्त होकर देखता है, दीपक की ज्योति पर पतङ्ग अपने को दग्ध करता है—तो क्या यह गुरुतर अपराध है? मेरीसमझ में नहीं आता। प्राणेश, प्रियतम प्रभो! तुम्हीं बता दो। तुम्हीं कहो, मुझे क्यों रुला रहे हो। हाय!

"फलक तूने इतना हंसाया न था।
कि जिस के तु बदले रुलाने लगा।"

प्राणेश्वर! कहो, मुझे इतना क्यों सता रहेहो? तुम्हारी इच्छा के विरुद्ध मैं क्या करता हूं? जो कराते हो, मर मिट कर वही तो कर रहे हैं। क्या प्रेम की शिक्षा स्वरूप इस मार्ग पर चलने का तुमने मुझे साहस और उत्साह नहीं दिया है? देखो, तुम्हारे लिये मैंने क्या परित्याग नहीं किया? तुम्हारे वियोग में मैं ने सर्वशृङ्गार को जलाञ्जुलि देदी है। देखो, मैं पान नहीं खाता, सुगन्ध द्रव्यों का व्यवहार नहीं करता, सुन्दर वस्त्राभूषण धारण नहीं करता। सदा तुम्हारे ही ध्यान और चिन्ता में रहता हूं।

जिस स्थान में जाता हूं तुम्हीं को ढूंढ़ता हूं। जब जहां कहीं सुन्दर मनोहर पदार्थों को पाता हूं तो तुम्हारे ही पादपद्म में उन्हें समर्पण करता हूं। जब किसी देवमन्दिर में जाता हूँ, तब तुम्हारे ही आगे शीश नवाता हूं। तुम्हें छोड़ कर मैं अपर किसी देवी देव को नहीं मानता। तब प्यारे कृष्ण! तुम्हीं कहो, तुम मुझे क्यों रुला रहे हो? क्या तुम्हारी रुचि के विरुद्ध मालती की ओर मेरा मन गया? क्या तुम ने ऐसा करने का मुझे उत्साह नहीं दिया? यदि

यह बात तुम्हे न भाती तो क्या मैं इस पथपर अग्रसर हो सकता था ! उस दिन की बातें क्या तुम्हें स्मरण नहीं हैं ? क्या तुम ने एकबार निशाकाल में जब मैं बेसुध पड़ा था, मुझे ऐसा नहीं कहा था कि " मालती की आत्मा बहुत पवित्र है, तुम उसे मेरी ओर झुकाने की चेष्टा करो । अन्तःसलिला फल्गू नदी के जल सदृश उस का प्रेम अन्तर्निहित है, उस को प्रकट करने का यत्न करो। यदि तुम मेरी बात मानोगी तो वह तुम्हारी हो सकती है। " पर कहां ? कुछ तो नहीं हुआ ! मालती मेरी एक भी नहीं सुनती। मैं ने कितनी चेष्टा की। पर अभी तक तो सब श्रम व्यर्थ ही हुआ।

हां ! उस में गुण तो अनेक हैं। सीने पिरोने में तो कदाचित् विरली ही कोई ऐसी निपुण होगी, देखा है सिल्क का "बोडिस" तथा "जेकेट" आदि भी वह स्वयम् सी लेती है; जिन्हें देख कर यह कहना कठिन है कि ये कलकत्ते के बने हैं या नहीं। ऊन तथा कारपेट का काम तो "कल" सा शीघ्र एवम् साफ करती है। कार चोबी, चिकन तथा कामदानी पर भी हाथ भरपूर बैठा है। पाक-शास्त्र की तो आचार्य्या ही ज्ञात होती है। इसी से तो उस के पड़ोस की स्त्रियां कभी कभी उसे द्रौपदी कहती हैं। इधर पढ़ने लिखने में भी कोई कसर नहीं है। कैसा सुन्दर अक्षर लिखती है; ज्ञात होता है मानो मोतियों की पंक्ति काग़ज़ पर बैठाती हो—भला चतुर लिखाड़ी के सिवाय ऐसा लिख ही कौन सकता है ? सुनता हूं कि " चन्द्रशेखर " " सप्तम प्रतिमा " आदि ग्रन्थों की भाषा तथा भाव को भली भांति से समझ लेती है। कभी कभी सरस्वती के अङ्कों को भी पढ़ती है। कविता की भी रुचि उसे अवश्य है क्योंकि प्राचीन तथा नवीन कवियों की मधुर एवम् सुन्दर कविताएं उस ने याद की है ! यदि अभ्यास करे तो मुझे पूर्ण आशा है कि साहित्यक्षेत्र में भी अपना कुछ नाम करे। किन्तु इतने पर भी उस के हृदयाकाश में प्रेमनक्षत्र उदय नहीं होता, उस के मन मरु में प्रेमजलाशय का

दर्शन नहीं होता, उस के हृदयसागर में प्रणयदीप दिखाई नहीं देता, उस के मानससरोवर में प्रणय-पद्म विकशित नहीं होता, उस के हृदयारण्य में प्रीतिसरसी दिखाई नहीं देती। क्या कहूं? इस में किसी का वश ही क्या है किन्तु समझाने से तो चित्त मानता नहीं।

प्रभो! तुम सर्वज्ञ हो, तुम से क्या कहूं? मैं यह भी नहीं जानता कि मेरा मन क्या चाहता है? मालती को अपनाना? तो क्यों, वह अपनी नहीं है क्या? क्यों नहीं, वह तो अपनी हुई है। जब वह मेरी भार्य्या की सहोदरा है तब तो वह अपनी हुई है। तब क्या उसे लेकर सुख करना चाहता हूं, गृहधर्म चलाना चाहता हूं, अपनी घरनी के लिये मौत बुलाना चाहता हूं? नहीं! नहीं! कदापि नहीं। तब मन इतना व्याकुल क्यों हो रहा है? जब मुझे कुछ इच्छा ही नहीं, कुछ स्वार्थ, कुछ लालसा और कोई वासना ही नहीं है तो फिर चित्त इतना चञ्चल क्यों होरहा है और मालती की चिन्ता मुझे इतना क्यों सता रही है? पहले जैसे एक प्रभु के ही ध्यान में मन लीन रहता था, चाहता हूं कि अब भी रहे और मालती का ध्यान छोड़ दूं। किन्तु मन में आया कि चाहता हूं, अवश्य चाहता हूं। जैसा आज है वैसा रहे तो कोई चिन्ता नहीं, किन्तु ऐसा ही तो नहीं रहेगा—बराबर ऐसा ही रहना तो असम्भव है—चार दिन गये मालती पराये की हो जायगी। आज मालती पर किसी दूसरे का प्रभुत्व नहीं हुआ है, उस के प्रणय का स्रोत किसी व्यक्ति विशेष रूपी सागर की ओर प्रधावित नहीं हुआ है, इसी से मन तू ऐसा सोचता है। जिस दिन मालती किसी दूसरे के साथ अनुराग करेगी, जिस दिन वह अपना प्राण किसी दूसरे के हाथ सौंप देगी, जिस दिन उस के हृदय सिंहासन पर दूसरी प्रतिमा प्रतिष्ठित होगी और जिस क्षण तुम्हारे लिये स्थान शेष नहीं रह जायगा और जिस क्षण कोई अपर व्यक्ति उस का पाणिग्रहण करेगा उसी दिन तुम्हे ज्ञान होगा कि मैं (मेरा मन) क्या चाहता हूं। मन चाहता

है कि मालती मेरी हो, मेरी रहे, किसी दूसरे के साथ उस का कुछ सम्बन्ध नहीं रहे, मेरे सिवाय किसी दूसरे का कोई अधिकार उस पर न हो। सब हो तो हो किन्तु मालती पराई न हो। उसे मैं शिक्षा दूंगा, उसे मैं धर्म के पथ पर ले चलूँगा, उस के हृदय में निःस्वार्थ प्रेम का विकाश करूंगा। उसे आदर्श रमणी बनाऊंगा। उस की मनो-हारिणी प्रतिमा को अपने हृदय पर स्थापित कर तृषार्त्त चातक ऐसा अतृप्त लोचन से अहर्निश उस के मुखमयंक की ओर देखा करूंगा। दिवा रात्रि उस के निकट रहूंगा। दिन में उस की अमृत-वाणी श्रवण करूंगा, रात्रि में उस की सुभ कान्ति को देख कर अपने हृदय की पिपासा निवारण करूंगा।

मन के प्रलाप को सुन बुद्धि चकित हो गयी। किन्तु इस प्रकार मैंने मन के प्रलोभ को दमन करने के लिये युक्ति दी। मैंने मन से कहा कि "व्यर्थ क्या सोच रहा है? मेरी सम्मति मान। मालती परायी स्त्री है। उसे काल भुजङ्गिनी जान कर, उस के पथ से दूर रह। यदि धर्म की ओर चेष्टा हो—यदि सत्य पर ममता हो—यदि अपनी भामिनी का आदर करना चाहता हो—यदि पुण्य संचय करने की अभिरुचि हो—इन्द्रियदमन की वासना हो—स्वर्ग के पथ का परिष्कार करने की अभिलाषा हो, श्री कृष्ण की परम पुनीत भक्ति प्राप्त करने की इच्छा हो तो मालती की ओर भूल कर भी मत देखो, इस मार्ग को अवलम्बन करने से तू कदापि सुखी नहीं होगा। 'यह परनारि लिलार गोसाईं। तजिय चौथ चन्दा की नाईं॥' बस अब चेत जा और मेरी दिखायी हुई राह पर चल।

हित की बातें सुन कर प्राण अत्यन्त व्यथा पाने लगा। मन व्यग्र हो गया। अतएव मेरा सब परिश्रम विफल गया। मन ज्यों का त्यों अपनी ही धुन में लगा रहा। मन को बहलाने का बहुत यत्न मैंने किया किन्तु इसे किसी बात में लगते न देख मेरी इच्छा हुई कि एक महात्मा से जा मिलूं, जिन के संग दो चार महीनों से मुझे पत्र

व्यवहार था किन्तु दर्शन का सौभाग्य अभी तक नहीं हुआ था। लोगों से सुना था कि आप भगवान् के अपने जनों में से एक हैं और आप पर ईश्वर की बहुत विशेष कृपा रहती है। आप बड़े सुशील, बुद्धिमान, गम्भीर और ईश्वरप्रेमी हैं। आप में अनुराग एवम् विराग की मात्रा समान है। आप प्रेम तथा भक्ति के निगूढ़ तत्त्वों के पूर्ण ज्ञाता हैं। साहित्य का भी प्रेम आप में कम नहीं है। साहित्यसेवी सदा आप के निकट आया जाया करते हैं और आप से बहुत कुछ लाभ भी उठाते हैं। आप को गद्य तथा पद्य दोनों की रचना का अभ्यास है और कई एक उत्तमोत्तम गद्य पद्य मिश्रित ग्रन्थों को रच कर आप ने प्रकाशित भी किया है। सुना है कि आप सौन्दर्य्यानुरागी हैं। सौन्दर्य्य ही आप की उपासना है। संसार से विरागी हो सौन्दर्य्य भिखारी बने सौन्दर्य्यनिकेतन, लावण्यनिधि माधुर्य्य पुञ्ज कोमलतन श्याम सलोने के ध्यान में आठो याम आप लीन रह कर प्रेमाश्रु से हृदयबाटिका में आरोपित अनुरागलतिका को सींचा करते हैं। प्रायः कहा जाता है कि मनुष्य जिस ध्यान में रहता है उस की प्रकृति तथा रूप भी उसी के अनुरूप हो जाते हैं। इसी से सुनता हूं कि उक्त महात्मा का दीप्तिमान मुखमण्डल देख कर मनुष्य को सुखशान्ति मिलती है, क्योंकि उन पर रूप शशि पूर्ण कला से विराजता है।
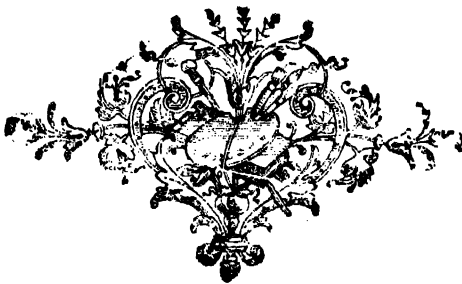
चतुर्थ कल्पना।

मनुष्य जीवन का कर्तव्य।

" Learn, by a mortal yearning to ascend
Towards a higher object—Love was given,
Encouraged, sanctioned, chiefly for that end,
For this the passion to excess was driven—
That self might be annulled: her bondage prove
The fetters of a dream, opposed to love. "

Wordsworth.

अखण्ड मार्तण्ड अपनी प्रखर किरणों से सारी पृथिवी को जला रहे हैं। मध्याह्न का समय है। भूमि तवा सी तप रही है। बड़े लोग गुलाब नीर से सींचे खस की टट्टियों में अपना समय बिता रहे हैं। पसीने से बदन सराबोर हो रहा है। पक्षिगण सघन वृक्षों की डालियों पर बैठ कर छाया सेवन कर रहे हैं। जिन की सुखद छाया में पशु भी विश्राम कर रहे हैं। सड़कों पर लूह दौड़ रही है। कोई इधर उधर चलता दिखाई नहीं देता। राह एकदम बन्द है।

इसी समय पांवप्यादे मैं एक पक्की राजपथ पर जा रहा हूं।

पर एक बार उठाने पर फिर भूमि पर धरते भय लगता है। ज्ञात होता है, तलवे में फफोले पड़ गये हैं। प्यास के मारे प्राण कण्ठ-गत है। कहीं किसी से परिचय भी नहीं कि उस के निकट जा कर थोड़ी देर विश्राम करूं।

इसी प्रकार बहुत रास्ता तय कर मैं अपने निर्दिष्ट स्थान पर पहुँचा। सामने एक ईंट निर्मित कुटी मिली। उस का द्वार बंद था। पथरीली भूमि आग सी लहक रही थी। खड़ा रहते बन नहीं पड़ता। वहां कोई जन प्राणी नहीं, जिस से कुछ पूछूं। किन्तु जानता था कि जिस महात्मा के दर्शन हेतु घर छोड़ कर इतना कष्ट उठा, यहां आया हूं वह इसी सामने वाली कुटी में रहते हैं। इन से कभी साक्षात्कार नहीं हुआ था। किन्तु अब मैं जाता कहां, यहां किसी से परिचय भी तो नहीं था। विवस मन में साहस कर द्वार पर कराघात किया। भीतर से आवाज़ आयी "कौन है ?" हृदय में बल आया। मैंने कहा "मैं सरकार का एक दास हूं। आप के दर्शनार्थ यहाँ तक आया हूं। यदि कृपया भीतर आने की आज्ञा हो तो मेरी सारी वासना पूर्ण हो।"

महात्मा ने कहा कि "इस समय तो मैं किसी से मिलता नहीं पर जब तुम आगये हो तब पहले अपना परिचय दो।"

मैं ने अपना नाम ठिकाना बताया। महात्मा ने भीतर आने की अनुमति दी। मेरा सब परिश्रम सफल हुआ। ठहरने को स्थान मिला और सन्त का दर्शन।

भीतर जाकर देखा कि एक काठ की चौकी पर गेरुआवस्त्र परिधान किये महात्मा बैठे हुए हैं। शीशादिक के केश आप ने भद्र कराया था। सुन्दर ललाट पर किञ्चित् पीत तिलक शोभा दे रहा था। आप के अङ्गप्रत्यङ्ग से कोमल कमनीयता झलक रही थी। शान्त तथा करुणा के आप रूप ही ज्ञात होते थे। बात बात में आप

का हृदय पिघल जाता था, कण्ठ गद्गद हो जाता था और आंखों से प्रेमवारि की झड़ी लग जाती थी। एकबार भी जिस ने आरत सा आतुर मर्मान्तिक वेदना बढ़ानेवाली प्रेम-भरी मधुर कण्ठध्वनि से आप को प्रभु का नाम उच्चारण करते सुना है, वह कदापि नहीं भूल सकता। उसे स्पष्ट ज्ञात होगा कि अन्तरात्मा की भाषा यही है, प्रगाढ़ प्रेम की वाणी यही है, कलेजे को टुकड़े टुकड़े करनेवाला, पत्थर को मोम बना देनेवाला, आसमान की जंजीर को हिला देनेवाला, निठुर को कोमल बनानेवाला, एवम् प्रियतम के ध्यान को अपनी ओर आकर्षित करने वाला चिर—विरहिनी का विरहरव यही है।

आप के निकट पहुँचते ही मेरे मन में शान्ति आयी, कारण यह कि वहां चारों ओर शान्ति अटल अविचल रूप से राज्य कर रही थी। प्राचीनकाल के ऋषियों के आश्रम सा वह स्थान दीख पड़ा। कहीं पुस्तकें पड़ी हुई थीं, कहीं गाते से बंधी हुई पोथियां, कहीं लिखने के लिये कागज़, कहीं अर्ध लिखित पत्र, कहीं लिखने की सामग्री। एक कोने में गङ्गाजलपूर्ण एक कलसी और भोजन के पदार्थ रखे हुए थे। देखा कि अनुराग और शान्ति की मूर्त्ति धारण किये आप कम्बल के आसन पर विराजमान हैं।

चरणरज को शीश में लगा और उन की आज्ञा पा मैं एक टाट के टुकड़े पर जिस पर एक कम्बल पड़ा था बैठ गया। फिर कुशलसम्वाद पूछने के बाद महात्मा ने पूछा कि "आप इतना चिन्तित क्यों दीखते हैं।" अकपट रूप से मैंने उन से सब बातें कहीं। सुन कर वे दुःखी हुए।

बड़े लोगों का प्रधानगुण यही है कि वे लोग पराये के दुःख से सदा दुःखी हुआ करते हैं। जो जितना ही बड़ा है वह दूसरे के लिये उतनाही अधिक परितप्त होता है। संसार को दुःखी देख सुख सम्पत्ति से घिरे रहने पर भी राज पाट गृह सुख रमणी बन्धु

बांधव नवजात शिशु तथा माता पिता सब को परित्याग कर शाक्य-देव को आजन्म बन बन भटकना पड़ा। अपने भाई देवदत्त के बाण से आहत हंस को दुःखित देखकर कुमार सिद्धार्थ को जो पहले पहल दु:ख हुआ, वह दुःख उन के हृदय से तब तक नहीं गया जब तक उन्हों ने सारे संसार के उपकारार्थ हिंसा को निषेध करते हुए निर्वाण मत का जगत् में प्रचार नहीं किया। पराये के दुःख से यावज्जीवन दुःखी रह कर शाक्यसिंह बुद्धदेव हुए। किसी को दुःखी नहीं करने का जगत् को उपदेश देकर ऋषभदेव आदि-नाथ हुए। पराये दुःख से कातर परोपकार को शिक्षा देते हुए और अपने बैरी से भी पलटा लेने को निषेध करते हुए, वरन् शत्रुओं को भी प्यार करने और उन की आत्मा के निमित्त प्रार्थना करने की आज्ञा देते हुए "क्रास" पर प्राण गंवा "ईसा" मनुष्यों में श्रेष्ठ हुए और उन्हें ईश्वर के प्यारे पुत्र की उपाधि मिली। जो दूसरे के दुःख से दुःखी होना जानता है, जो दूसरे के लिये रोना जानता है, जो परायी विपत्ति को अपनी विपत्ति जानता है वही देवता है, वही महापुरुष है, वही महात्मा है। गोस्वामी जी ने भी यही कहा है कि "परहित लागि तजे जो देही। संतत संत प्रसंसहि तेही।" बहुत देर तक इधर उधर की चली अन्त में भक्ति की बात निकली। मैंने सविनय कहा कि "भक्ति का नाम तो बहुत दिनों से सुना करता हूं। किन्तु भक्ति कहते किसे हैं, इस बात को यथार्थ रूप से अभी तक नहीं जानता हूं। यदि कृपा कर आप मेरी आत्मा की शान्ति के लिये इस का कुछ भेद बता दीजिये तो बहुत अनुग्रह हो।

महात्मा मुस्कुराकर बोले कि इस गूढ़ और विषमतत्त्व का भेद मैं तुम से क्या कहूँ। जब नारदादि ऋषियों ने इस विषय का पूरा भेद नहीं पाया तो मैं अल्पबुद्धि क्या कह सकता हूं।

मैं०—जी हो किन्तु आप के उपदेश से मेरा भ्रमान्धकार यदि दूर हो जाय तो इस में आप की क्या हानि है ?

महा०—कुछ नहीं। यदि तुम इतना आतुर हो तो मैं इस गूढ़ विषय पर अपना मत प्रकट करता हूं। भक्ति के सम्बन्ध में कुछ कहने के पहले दो एक बातें तुम्हें समझा देनी पड़ेगी। ईश्वर को साकारभावना कर प्रायः मनुष्य भक्ति करता है। निराकार का केवल ध्यान हो किया जाता है—और वह भी कठिनता के साथ होता है क्योंकि स्वभावतः मनुष्य ध्यान पूजा तथा प्रेम के लिये कोई आकार खोजता है। जो निराकारवादी हैं वे बहुधा अपने आचार्यों को ही पूजा, सेवादि करने लग जाते हैं। अतएव भक्ति क्या वस्तु है इस के समझाने के पहले मुझे यह मान लेना पड़ेगा कि तुम ईश्वर को वरन् साकार ईश्वर को मानते हो और उन के प्रति तुम्हारी श्रद्धा तथा विश्वास है।

मैं०—इस में तो संदेह नहीं।

महा०—तब रही भक्ति की बात। सुनो, तत्वभेदिनी प्रतिभावाले प्राचीन आर्य्य ऋषियों ने कहा है कि भगवद्भक्ति मनुष्य मात्र का प्रधान तथा परमधर्म है। यह "भक्ति ईश्वर में परम प्रेम का रूप" है। भक्ति वह पदार्थ है कि जिसे पाकर मनुष्य सिद्ध तथा सन्तुष्ट हो जाता है, अमृतफल पाता है, पागल हो जाता है, मौन हो जाता है, किसी से द्वेष नहीं रखता और न किसी विषय का उत्साह ही रखता है। यह वह पदार्थ है कि जिसे पाकर वह फिर किसी वस्तु के पाने की इच्छा नहीं करता, जैसा कि भारतेन्दुजी ने कहा है कि "जेहि लहि फिर कुछ लहन की, आस न हिय में होय। जयति जगत पावन करन, प्रेम बरन यह दोय।" धर्म तथा पुण्यकर्म और वस्तु है और भक्ति कुछ और ही वस्तु है। एक के विना मनुष्य दूसरे को पा सकता है। यहां धर्म तथा पुण्य कर्मों के विषय में मैं कुछ कहना नहीं चाहता।

प्रसंगवश इतना कह दिया। रही भक्ति—उस के गुणों की और कहां तक कहूँ ? उस की अधिक प्रशंसा करनी मानो सूर्य्य को दीपक दिखाना है, स्वच्छ कलधौत पर सोने का पानी फेरना है, मोर तथा तितली के पंख को चित्रित करना है, गुलाब के सुमन पर सुगन्धित नीर छींटना है, हिम को ठंढा करना है, इन्द्रधनुष में रङ्ग भरना है और आकाश में नक्षत्र को दीप की सहायता से ढूंढना है। बस, तुम यही जान लो कि प्रेम ही परमेश्वर हैं। ऐसे प्रेम की जय !

मैं०—तो क्या प्रेम और भक्ति दोनों एक ही वस्तु हैं ?

महात्मा ने कहा कि ऐसा नहीं। दोनों में कुछ भेद है किन्तु व्यवहार में प्रायः दोनों शब्द एक ही अर्थ में आते हैं। मेरी समझ में भक्ति की एक विशेष अवस्था का नाम प्रेम है। सब भगवत् प्रेमी भक्त अवश्य हैं किन्तु सब भक्त प्रेमी नहीं। शास्त्रोक्त नवधा भक्ति का साधन करने से हृदय में प्रेम का विकाश हो जाता है अर्थात् नवधा भक्ति करते करते मनुष्य प्रेमा भक्ति को पाता है। अतएव सर्वगुण सम्पन्न विशुद्ध प्रेमदेव की सर्वत्र मङ्गलमयी भक्ति का अनुशीलन करना मनुष्य का एकमात्र कर्त्तव्य है क्योंकि "प्रीति रेव परो धर्मः प्रीति रेव महत्तपः। ईश्वरोऽपि विना प्रीतिं कदापि न प्रसीदति।" यह प्रीति वा भक्ति दो प्रकार की है, एक गौणी वा साधारण भक्ति और दूसरी प्रेमा वा परा भक्ति।

मैं०-किन्तु भक्ति कहते किसे हैं ? यह तो आप ने नहीं कहा ?

महा०—सन्तों ने कहा है कि "ईश्वर में पूरे अनुराग को यथार्थ भक्ति वा प्रेम कहते हैं" और यह भक्तिलता श्रद्धा तथा विश्वास विटप के सहारे फूलती फलती है। लोग कहते हैं कि "भक्ति सब वृत्तियों का निरोध है" किन्तु मेरे जानते अपर वृत्तियों का निरोध और प्रभु के निरन्तर चिन्तन के अनुशीलन द्वारा अन्तःकरण में ईश्वर के प्रति पूर्ण अनुराग का विकाश ही पराभक्ति

है। भक्तिमार्ग के आचार्य्य श्रीनारदजी ने कहा है कि "इष्ट देव में कायिक वाचनिक तथा मानसिक कर्मों को अर्पण करना, उन्हीं की प्राप्ति के उद्देश्य से अखिल कर्मों को करना और उन का निरन्तर स्मरण रखना, कदाचित् भूल जाने से अत्यन्त व्याकुलता तथा मानसिक उद्वेग अनुभव करना ही भक्ति है। अतएव बैठ कर माला जपना, तिलक मुद्रा धारण करना और प्रतिमा की पूजा इत्यादि जो नवधा भक्ति के नाम से प्रसिद्ध हैं, गौणीभक्ति के अङ्ग मात्र हैं। हां, इन के अनुशीलन से पराभक्ति भी प्राप्त हो सकती है।

मैं०—यह अमूल्य रत्न क्यों कर प्राप्त होता है ?

महा०—आर्त्त, अर्थार्थी, जिज्ञासु अथवा ज्ञानी होने से। दुःख पड़ने से मनुष्य ईश्वर की भक्ति करता है। किन्तु वह भक्ति निकृष्ट श्रेणी की है। गुरु से पूछ कर उस से उपदेश पा कर भी मनुष्य भगवान् को पहचानता और भजता है एवम् उस की प्रीति उस में होती है। नवधा भक्ति के बताये हुए कर्मों को कर के मनुष्य भक्ति पद को पाता है फिर ज्ञान के द्वारा भी जीव को भक्ति प्राप्त होती है। क्योंकि ज्ञान द्वारा संशय तथा भ्रम का नाश हो जाता है। ज्ञान द्वारा मनुष्य ईश्वर और अपने स्वरूप को पहचानता है, उस के प्रति श्रद्धा तथा विश्वास उत्पन्न होते हैं। अतएव ज्ञान तथा कर्म से भी मनुष्य को भक्ति करने में सहायता मिलती है, अर्थात् कार्य्यकारिणी तथा ज्ञानार्जनी शक्तियां चित्तरञ्जिनी शक्ति को उत्तेजित करती हैं। किन्तु भक्ति की साधना नितान्त कठिन है। जब मनुष्य के हृदय में ईश्वर की सामीप्य, सालोक्य, सारूप्य एवम् सायुज्य प्राप्ति की कामना उत्पन्न होती है तभी यह रत्न प्राप्त होता है। जान रक्खो कि ईश्वर ही प्रीति हैं, ईश्वर ही भक्ति हैं और प्रेम ही ईश्वर हैं। जिस ने विशुद्ध प्रेम को पाया उस ने ईश्वर को पाया। यों तो भक्ति प्राप्त करने के अनेक उपाय सद्-

ग्रन्थों में लिखे हैं किन्तु सच्ची बात तो यह है कि जिसे कृपा कर भगवान् जना देते हैं वही इस तत्त्व को जानता है। इस का कोई कारण मनुष्य जान नहीं सकता। लिखा है कि जिस प्रकार स्वयंम्बर में कुमारी जिस के कण्ठ को चाहती है जयमाल से सुशोभित करती है उसी प्रकार जिस के हृदय में चाहते हैं भगवान् अपने प्रेम का विकाश करते हैं।

मैं०—यह क्योंकर जाना जाता है कि व्यक्तिविशेष के हृदय में प्रेम का विकाश हुआ ?

मह०—जब ज्ञानार्ज्जनोवृत्ति ईश्वर का अनुसन्धान करने लगे, कार्य्यकारिणीवृत्ति ईश्वर को अर्पित होने लगे, चित्तरञ्जिनीवृत्ति ईश्वर के सौन्दर्य्य का उपभोग करने लगे और शारीरिकवृत्ति ईश्वरोद्दिष्ट कार्य्यों के साधन तथा ईश्वर की आज्ञा के पालन में नियुक्त हो जाय, तब समझो कि भक्ति का विकाश हृदय में हुआ। इसी से कहा जाता है कि ईश्वर की भक्ति अत्यन्त दुष्प्राप्य है।

मैं०—इस की उत्पत्ति हृदयक्षेत्र में क्योंकर होती है ?

मह०—इस की उत्पत्ति क्या होगी ? मनुष्य की तो स्वाभाविक प्रवृत्ति भक्ति प्रेम दयादि की ओर है। अभ्यास से जब उस के अन्तःकरण में विकार उत्पन्न होता है तब उस की अरुचि इस से हो जाती है। किन्तु प्रेम की उन्नति क्योंकर होती है, सो तुम से कहता हूँ। सुनो, स्थायीभाव सब के हृदय में है। जब विभाव की सहायता से वह उत्तेजित होता है तब उज्ज्वल रूप से उस का विकाश होता है। और भक्ति तब प्रेम अथवा प्रणय कही जाती है। विभाव भी दो प्रकार के होते हैं। अवलम्बन विभाव एवम् उद्दीपन विभाव। अवलम्बन वा विषयावलम्बन उस वस्तु विशेष को कहते हैं जिस के संग प्रेम उत्पन्न होता है अर्थात् प्रेमपात्र को। किन्तु दूसरे के आश्रय से यदि मनुष्य अपने प्रेमदेव की ओर पहुंचता है तो उस आश्रय को आश्रयावलम्बन कहते हैं। किसी ने कहा है कि भगवान्

मनुष्य के हृदय में प्रेम देता है और उस प्रेम को कोई अवलम्बन वा आसरा देता है किन्तु जब प्रेम प्रौढ़ हो जाता है तब वह अवलम्बन वा आसरा छूट जाता है और प्रेम निराधार खड़ा रह जाता है; और प्रेम में यथेष्ट स्वयम् बल आजाता है।

मैं०—यह गूढ़ तत्त्व मेरी समझ में आता ही नहीं।

महा०—मैंने तो तुम से पहले ही कहा था कि मुझ में इतनी शक्ति नहीं है कि तुम्हें भली भांति इस विषय को समझा सकूं। परन्तु जब तुम ने इस विषय को छेड़ दिया तब ध्यान देकर दो चार काम की बातें और भी सुन लो।

मैं०—जो आज्ञा। मैं उकताता नहीं, आप कहते चलिये।

महा०—जो प्रेम को बढ़ाता है उसे उद्दीपन विभाव कहते हैं। मनुष्य का हृदय अपने प्रेमपात्र को रूप, गुण, सौन्दर्य्य आदि से अलङ्कृत देख कर उस की ओर स्वभावतः आकर्षित होता है। किन्तु सौन्दर्य्य ही का सब से अधिक प्रभाव मानवहृदय पर पड़ता है। लावण्य-मय मनोहर मूर्त्ति को देख कर हृदय में प्रेम का उदय होता है अतएव यही कहना पड़ता है कि सौन्दर्य्य ही प्रेम का मुख्य उद्दीपक है। सौन्दर्य्य को हृदय में ग्रहण करने से मानसिक वृत्तियों की पुष्टि एवम् सम्पूर्ण विकाश होता है तथा मानसिक सर्वाङ्गीन परिणति होती है। मानव वृत्तियों का उत्कर्षण ही परम धर्म है। प्रेम के वाह्य लक्षण यथा स्तम्भ, कम्प, स्वरभङ्ग, अश्रु, रोमाञ्च तथा उच्चाट इत्यादि को अनुभाव वा सात्विक भाव कहते हैं।

मैं०—इस की साधना कैसे होती है?

महा०—सब वृत्तियों को ईश्वराभिमुख करने की चेष्टा ही करनी सब से मुख्य एवम् श्रेष्ठसाधना है। किन्तु ईश्वर विषयक चिन्तन, मनन, श्रवण, ध्यान, स्मरण, कीर्तन तथा निदिध्यासन से इस में बड़ी सहायता मिलती है। पर मन में एकाग्रता आये बिना ये सब भी

काम नहीं देते। किन्तु सुगम एवम् सुलभ साधना भगवदाश्रययुक्त कर्मफल त्याग है। किसी किसी महात्मा का कथन है कि नाम स्मरण एवम् भगवत् के सौन्दर्य तथा स्वभाव का मनन ही प्रधान साधना है। क्योंकि सौन्दर्य्य तथा स्वभाव के मनन से प्रेम पुष्ट होता है। कर्मफल के त्यागने से मनुष्य के हृदय से मान, अपमान, दुःख, सुख, हर्ष, विषाद एकदम जाते रहते हैं।

मैं०—कर्मफल त्याग मैंने नहीं समझा।

महा०—परिणाम की चिन्ता नहीं कर किसी विशेष लोभ से उत्तेजित तथा उत्साहित नहीं हो मनुष्य जब किसी काम को अपना धर्म तथा कर्त्तव्य समझ कर करे तो समझो कि यह निष्काम कर्म है और यही कर्मफल त्याग है। तुम्हें समझना चाहिये कि कर्म करना ही तुम्हारा धर्म है किन्तु उस के फल की आकांक्षा कदापि उचित नहीं है। जो कर्म करो देखो कि उस के प्रति किसी प्रकार की आसक्ति तुम्हारे मन में न जमे। कर्म विशेष सिद्ध हो अथवा नहीं उस का हर्ष विषाद जिस में तुम्हें न हो। अर्थात् कर्त्तव्य समझ कर सब काम करो किन्तु उस में आसक्त न हो जाओ। काम में चित्त लगाओ किन्तु उस पर दिल न दो। समझो कि सब कर्म उसी ईश्वर का है मैं निमित्त स्वरूप उन्हें करता हूं। अतएव ईश्वरोद्दिष्ट कर्मों को छोड़ कर अपर कोई कर्म न करो। जो काम करो वह ईश्वर के निमित्त; अपने निमित्त कोई नहीं।

मैं०—ईश्वरोद्दिष्ट कर्म क्या है?

महा०—इस का उत्तर थोड़े में नहीं दिया जा सकता। इस की ओर ध्यान देने ही से मनुष्य को थोड़े ही दिनों में ज्ञात होने लग जाता है कि कौन कार्य्य ईश्वरोद्दिष्ट है कौन नहीं। जिस काम के करने से चित्त चञ्चल नहीं होता, जिस काम के करने पर पश्चात्ताप नहीं होता, जिस काम के करने से आत्मा सन्तुष्ट रहती है समझो कि वही काम ईश्वरोद्दिष्ट कर्म है। मनुष्य का यही मुख्य

कर्तव्य है। इस मार्ग को अवलम्बन किये बिना मनुष्य कदापि सुखी नहीं हो सकता और न भक्त ही कहा जा सकता है। देखो, धर्म ही सुख है, अनुचित भोग लालसा ही अनेक दुःखों का कारण है। शारीरिक तथा मानसिक वृत्तियों के उचित अनुशीलन में त्रुटि करने ही से मनुष्य दुःखी होता है। धार्मिक व्यक्ति यथार्थ में दुःखी कभी नहीं होता। जो सब कामों को ईश्वर का काम समझ कर करता है वह वस्तुतः ईश्वर को सर्वदा याद रखता है। जिस के मन और ध्यान में भगवान् सदा वर्तमान रहते हैं उस की सब वृत्तियों की उचित उन्नति होती है, और वह ईश्वर का उत्तम भक्त हो जाता है। अतएव सर्व कामना परित्याग पूर्वक सर्व-कर्म-फल ईश्वर को अर्पण करके ईश्वर की भक्ति करनी ही मनुष्य का परम धर्म है।

मैं०—आप क्या कह गये? निष्काम धर्म अथवा कर्म-फल त्याग तो मैंने कहीं किसी ग्रन्थ में देखा नहीं।

महा०—इस में तुम्हारा कुछ दोष नहीं है। यह समय का प्रभाव है। और कहीं इस का उपदेश न सही किन्तु हिन्दुधर्म में तो इस की पूर्ण व्याख्या है। क्या तुम ने नहीं सुना है कि श्री भगवद्गीता का सब से विलक्षण उपदेश यही है और इसी सिद्धान्त के अङ्कित रहने के कारण गीता धर्म पुस्तकों में सब से श्रेष्ठ मानी जाती है। तुम याद रखो कि एक दिन अवश्य ऐसा आवेगा कि चारो ओर भगवद् की उपासना का तथा गीता के पठन पाठन का प्रचार हो जायगा।

मैं०—आप की बातें सुन आज मेरा ज्ञान-चक्षु खुल गया, अब तक मैं समझता था कि भक्ति करनी बहुत सहज है। किन्तु अब देखता हूं कि भक्ति करनी तो दूर रहे, इस गूढ़ विषय को समझना ही कठिन है। अब देखता हूं कि गौणी भक्ति को ही मैं परम भक्ति समझता था और इसी से भक्ति से ज्ञान को बड़ा जानता

था। अब तक उत्कृष्ट वा प्रेमाभक्ति का मुझे ज्ञान ही नहीं था।

महा०—हां! यह बात सुन कर मुझे आनन्द हुआ। तुम ठीक कहते हो कि प्रेमा वा परा भक्ति को केवल अन्तरात्मा से सम्बन्ध है, वाह्य जगत् से इसे कोई नाता नहीं है। यथार्थ भक्ति का विकाश अन्तःकरण में होता है, वाह्य अभ्यास इस में केवल सहायता देते हैं। लगन हृदय से लगती है। प्रेमा वा पराभक्ति मन की एक विशेष अवस्था है, अथवा यों कहो कि मानसिक वृत्तियों की केवल चरमोन्नति है। याद रखो कि "जो आत्मविजयी हैं, संयमी हैं,समदर्शी हैं,परहित में रत हैं,वही भक्त हैं,वही उस महबूब के आशिक हैं,वही भगवान् के आसक्त हैं। जो मुरझा लगे हुए बेसुरा हृदयतंत्री को उपासना के अनुशीलन से सुर में लाता है और जिस का अन्तःकरण निश्छल और निष्कपट हो कर प्रेम (इश्क़) से पूर्ण हो जाता है, वही भक्त है। ईश्वर को सर्वदा अन्तःकरण में विद्यमान जान कर जो अपने चरित्र को पवित्र तथा शुद्ध नहीं करता, जिस का चरित्र ईश्वरानुरूप नहीं है, वह भक्त नहीं है। जिस का समस्त चरित्र भक्ति द्वारा शासित नहीं हुआ वह भक्त नहीं है। जो सर्व लोग और अपने में अभेद भाव जान कर सब के संग सम व्यवहार करता है वही भक्त है।" ऐसे ही उदार एवम् प्रशस्त भक्ति की व्याख्या हिन्दुओं के ग्रन्थों में भरा है! आत्म-प्रीति, मानव-प्रीति, सज्जन स्नेह, स्वदेशानुराग, पशुओं के प्रति प्रीति तथा दया हिन्दु-शास्त्रों के अनुसार ईश्वर की इसी भक्ति के अन्तर्गत हैं। अतएव सुख का उपादान समझ कर जो लोग किसी के संग लगन लगाते हैं वा किसी पर दया करते हैं वह अधर्म करते हैं। ईश्वर को सर्वभूतमय जान कर सब को प्यार करना, सब के संग अनुराग करना उचित है। इस ज्ञान से यदि तुम किसी को प्यार करते हो तो ईश्वर को प्यार करते हो। इसी प्रकार समझो कि ईश्वर जगन्मय है, जगत् का कार्य्य उसी का कार्य्य है अतएव जिस ने जगत्

का। हित किया उस ने ईश्वरोक्त सत्कर्म किया। इसी से सन्त लोग परहितव्रत साधन करने को उपदेश करते हैं।

जान रक्खो कि तुम और तुम्हारे मानसिक, शारीरिक एवम् सांसारिक अलङ्कार तथा शक्तियां तुम्हारे ही लिये यथार्थ में नहीं हैं। अपने शुभ गुणों को अपने ही लिये नष्ट करने का, इन्हे अपने ही काम में लाने का तुम्हे अधिकार नहीं है; इन्हें केवल अपने ही ऊपर न्योछावर न करो और न अपने को इन पर न्योछावर करो। भगवान् हम लोगों को उसी प्रकार व्यवहार में लाते हैं, जिस प्रकार हम लोग प्रदीप को। प्रदीप को प्रदीप के हितार्थ हम लोग नहीं जलाते। यदि हम लोगों की प्रीति, दयादि, बुद्धि, बल सम्पत्ति दूसरे के काम नहीं आयी; यदि इन का विकाश "मैं" तथा "मेरे" से बाहर नहीं गया, यदि आत्मतुष्टि ही इन का उद्देश्य रहा तो इन का होना और न होना दोनों समान ही है। ईश्वर मनुष्य के गुणों को नहीं देखते वरन् यह देखते हैं कि वह इन्हें व्यवहार में किस प्रकार से लाता है। मनुष्य की शोभा बढ़ाने के लिये मनुष्य को सद्गुण नहीं मिले हैं वरन दूसरे को उपकार पहुंचाने के लिये।

मैं०—मनुष्य क्या मुक्ति पाने के लिये भक्ति करता है?

महा०—कदापि नहीं। भक्ति मुक्ति-प्रदा तो है किन्तु भक्त मुक्ति की भी कामना नहीं करता। भक्त के लिये भक्ति साधन होने पर भी साध्य ही है। यह बात जान रक्खो कि भक्ति कामना के लिये नहीं की जाती। निष्काम प्रेम ही परमभक्ति है। अपने प्रेम पात्र के दर्शन तथा संयोग को छोड़ कर दूसरी कोई वासना प्रेमी के हृदय में नहीं रहती। भक्त भक्ति ही को चाहता है। वह चाहता है कि ईश्वर के प्रति उस की भक्ति अव्यभिचारिणी हो। शरणप्रपत्ति प्रेमी का प्रधान गुण है। सब विहित धर्मों को परित्याग कर भक्त को उचित है कि अपने आराध्य देव की शरण में जाय। उसे सदा यही ध्यान रखना चाहिये कि "जैसा हूं उसी

का हूं। मेरी गति उस के भिन्न दूसरी नहीं है। वह जैसे चाहे वैसे ही रखे क्योंकि मैं उस का हूं, और अपनी वस्तु पर सब का पूर्ण अधिकार रहता है। प्रेम-पात्र (विषयावलम्बन) की रुचि को सर्व श्रेष्ठ मानना, उस की इच्छा को नीति जानना, उस की दिखायी हुई राह पर चलना प्रेमी का कर्तव्य है। प्रेमी केवल प्रेम चाहता है। प्रेम केवल प्रेम ही के लिये किया जाता है। प्रेम का परिणाम प्रेम ही है, प्रेम का पुरस्कार प्रेम ही है, प्रेम का उपहार प्रेम ही है। प्रेमी प्रेम का प्रतिउत्तर नहीं चाहता। प्रणय प्राण की सामग्री है। प्रणय साथी नहीं खोजता, सहारा नहीं खोजता, वह दूसरे की सहानुभूति नहीं चाहता, वह ज्ञान अथवा कर्मों पर निर्भर नहीं है, उस में यथेष्ठ बल आप ही है। अतएव वह किसी अवलम्ब का प्रार्थी नहीं होता। प्रेम विनिमय नहीं है यदि पलटा के लिये प्रेम किया गया तो वह प्रेम नहीं व्यवहार है। अपने प्रेम-पात्र को हृदय सिंहासन पर बिठा कर अन्तरात्मा में छिपा कर आठो पहर पूजा करनी ही विशुद्ध प्रेम है। प्रेमपात्र का सदा ध्यान रहना, भूलने की चेष्टा करने पर भी उसे न भूलना यथार्थ प्रेम वा लगन है। बिहारी जी ने सत्य कहा है कि—

"सोवत जागत रैनदिन रस रिस चैन कुचैन।
सुरत श्याम घन की सुरति बिसराये बिसरैन" ॥

ऐसी विनोदिनी मनोहारिणी तथा विशुद्ध भक्ति की सेवा करनी मनुष्य का एक मात्र कर्तव्य है। निष्काम भक्ति में ही स्थायी सुख है। बस सौ बात की एक बात यही जान लो कि सच्चा भक्त वही है जो अपने प्रेमदेव में "रहता है, सहता है, चलता है, फिरता है और सांस लेता है।"

मैं०—अहा सचमुच प्रेम अत्यन्त सुखद गूढ़ तथा वाञ्छनीय वस्तु है किन्तु आप की बातों से विदित होता है कि इसे गुप्त ही रखना चाहिये।

महा०—बात ऐसी ही है। प्रेम प्रकट करने की वस्तु नहीं है। सच्चे प्रेमी की इच्छा कभी नहीं होती कि उस का प्रेम कोई जान ले। जिसे प्यार किया जाता है उस पर भी इसे प्रकट करने की आवश्यकता नहीं है। यदि प्रेम का पलटा पाने की इच्छा से प्रेम-पात्र पर प्रेम प्रकट किया गया तो वह प्रेम नहीं रह गया व्यवसाय हो गया। यदि स्वार्थ और कामना के लिये प्रेम किया गया तो वह प्रेम नहीं दूकानदारी है। जिस के संग प्रणय किया गया उस पर प्रेम को प्रकट करने का अभिप्राय यही है कि वह पलटा में प्रेम करे। प्रेम को प्रगट करना प्रेम पाने की कान्छा प्रकाश करना है जब वासना और कामना ने घर दबाया, तब प्रेम कहां रहा? प्रेम को प्रकाश करना मानो प्रेम पात्र से यह कहना है कि मैं तुम्हें कुछ देता हूं बदले में तुम भी कुछ दो। पवित्र प्रेम को ले कर दूकानदारी करनी बड़ी लज्जा की बात है। प्रेम बिना वेतन की सेवा है, बिना वर की पूजा है, बिना कामना का कर्म है। प्रेम हृदय में छिपा रखने की वस्तु है, प्रकट करने की नहीं। जैसा कि गोस्वामी जी ने श्री रामचन्द्र जी से कहलाया है कि—

तत्व प्रेम कर मम अरु तोरा।
जानत प्रिया एक मन मोरा॥
सो मन रहत सदा तुम पाहीं।
जानु प्रीति रस इतनहि माहीं॥

मैं०—आप की बातें सुन कर मेरा मन नहीं अघाता। यदि इस का कुछ और भेद हो तो मुझे कृपया बताइये।

महा०—कहने को तो बहुतेरी बातें हैं किन्तु तुम्हें मुख्य मुख्य बता देता हूं। हां! एक बात और याद आयी। ध्यान रखो कि प्रेम में भय नहीं होता। जहां भय है वहां प्रेम नहीं। प्रेम के राज्य में भय कदापि स्थान नहीं पाता। नेहनगर में उसे ठहरने को ठौर नहीं मिलती। प्रेम के द्वारा प्रेमी अपने प्रेम-पात्र को अपनी ओर आकर्षित करता

ह और अन्त में सब अन्तर और बाधा को हटा कर उसे अपने हृदय में लगा लेता है। किन्तु भय मनुष्य को भय-प्रद वस्तु से दूर रखता है। जिस से मनुष्य डरता है, उस के निकट जाने का उसे साहस नहीं होता। भय-प्रद पदार्थ से प्रेम करना तो दूर रहे मनुष्य घृणा करने लगता है। परमेश्वर को दण्ड और पुरस्कार दाता समझ कर जो लोग भक्ति करनी चाहते हैं वे विफल मनोरथ होते हैं, उन का परिश्रम व्यर्थ हो जाता है न्यायकर्त्ता मान कर कोई भगवान की भक्ति नहीं कर सकरता। क्योंकि न्याय के साथ ही साथ भय का सञ्चार हृदय में हो आता है। जब तक मनुषत्र परमात्मा को न्य याधीश जानता है, तबतक वह उन के संग प्रेम नहीं कर सकता। माधुर्य्य तथा सौन्दर्य्य ही पर मुग्ध हो कर भक्त उन से प्रेम करता है। भक्त जन्म भर मरण नरक स्वर्ग से भय नहीं खाता। उस की एकमात्र यही इच्छा रहती है कि जो भाग्य में हो भोगूं किन्तु प्रेम-पात्र का ध्यान हृदय में बंधा अवश्य रहे। विद्यापति ठाकुर ने सत्य कहा है कि "किय मानुष पसु पाखी जे जनमिय अथवा कीट पतङ्ग। करम विपाक गतागत पुन पुन मति रहु तुअ पर सङ्ग।" प्रेमी प्रेम ही का भूखा है अतएव उस के मन में भय शंका आदि स्थान नहीं पाते। यहां तक कि अपने प्रेम-पात्र का रूप संसार मात्र के सब पदार्थों में देख कर वह किसी से भय घृणा शंका वा द्वेष नहीं करता है। जैसा कि श्री गुरु नानक देव ने कहा है कि "भय काहु को देय नहिं, नहीं भय माने आप।" वह सब जगह अपने प्रेमपात्र ही का प्रतिविम्ब देख कर सब की पूजा करने लगता है जिस से अहङ्कार का नाश हो जाता है; और अहङ्कार नहीं रहने के कारण वह मान अपमान स्तुति निन्दा इत्यादि द्वन्दों को समान॰ जानता है। फिर जिस पर इन का प्रभाव ही नहीं पड़ता वह भय ही क्या करेगा। भय के वशीभूत हो कर मनुष्य ईश्वर की पूजा कर सकता है, दूर से उन

पर, फूल चन्दन चढ़ा कर धन, बल विद्या, मोक्ष और स्वर्ग के लिये प्रार्थना कर सकता है, किन्तु वह प्रेमा भक्ति कदापि नहीं कर सकता। प्रेम में तो उपासक और उपास्य में अन्तर ही नहीं रह जाता है। परस्पर आराध्य देव और भक्त दोनों एक ही हो जाते हैं। और जब दोनों एक हो गये तो कौन किस से भय करे। ईश्वर प्रेम-पात्र होने पर भी अपने भक्त के प्रेमी हो जाते हैं। प्रेम तो दोष देखता नहीं। फिर किसी को क्यों कोई दण्ड और क्यों कोई पुरस्कार देगा। और जब दण्ड और पुरस्कार ही नहीं रहा तो फिर भय और त्रास कैसा? इसी से कहा जाता है कि प्रेम भय नहीं जानता।

मैं—भक्ति तथा प्रेम के विषय तो आप ने बहुत कुछ कहा। अब मैं यह जानना चाहता हूं कि भक्त के लिये क्या जटाजूट धारण करना, भस्म रमाना तथा मिट्टी में रंगा हुआ वस्त्र परिधान करना आवश्यक है? क्या वैरागी का भेष धारण किये बिना मनुष्य अनुरागी नहीं हो सकता?

महा—कदापि नहीं। क्या साधुओं के नाना प्रकार के भेषों का तुम ने अर्थ और भाव नहीं समझा है?

मैं—नहीं।

महा—किसी एक सम्प्रदाय का भेष लेकर बिचारो। तब तुम पर विदित हो जायगा कि यह प्रेमियों का रूप है न कि ऐसा रूप धारण करके मनुष्य प्रेमी हो जाता है।

मैं—सो कैसे?

महा—तुम जानते हो कि प्रेम की अन्तिम अवस्था वा वास्तविक भाव उन्माद है। उन्माद ग्रस्त की दशा एकबार बिचारो कि कैसी हो जाती है। बाल बिखरे, वस्त्र फटे और मिट्टी में लोटते रहने के कारण मटीले रहते हैं। नींद नहीं आने के कारण आखें लाल रहती हैं। अपने प्रेम-पात्र के वियोग में वह संसार के सब

सुखों को छोड़ बैठता है, सब से उसे अरुचि हो जाती है। जब यह अवस्था सीमान्त को पहुँचती है तब वह सब वस्तुओं में अपने प्रेमपात्र को देखने लगता है, फिर प्रेमी, प्रेम-पात्र और प्रेम में भेद नहीं रह जाता। इसी के प्रमाण में इतिहास वेत्ताओं ने कहा है कि जब लैली को बांह में नश्तर दी गयी तो मजनू की बांह से खून का फौवारा निकलने लगा।

"खूं रगे मजनू से निकला फस्द लैली की जो ली।"

अतएव कहा जाता है कि भक्ति, भक्त तथा भगवन्त तीनों एक ही हैं। इस दरजे तक पहुचने पर मन से ईर्षा, द्वेष, मान, मोह अहङ्कार लोभ आदि दुर्वासना जाती रहती है, क्योंकि हृदय में अपना सम्पूर्ण और अटल राज्य स्थापित कर भक्ति इन वैरियों को वहां से निकाल देती है। इसी से एक कवि ने कहा है कि :—

"करूं मैं दुश्मनी किस से, कोई दुश्मन भी हो अपना,
मोहब्बतने नहीं दिल में जगह छोड़ी अदावत की।"

ऐसे ही भक्तों के विषय में श्री गोस्वामी जी ने कहा है कि:—

"उमा जे राम चरन रत, विगत काम मद क्रोध।
निज प्रभुमय देखहिं जगत, कासन करहिं विरोध॥"

भला जब जगन्मय जगन्नाथ परमात्मा गोविन्द सर्व भूतमय है तब शत्रु कौन है और मित्र कौन है? अतएव सच्ची प्रीति ही के वशीभूत होकर मनुष्य पराये के लिये अपना आत्म-त्याग करने में प्रवृत्त होता है। प्रेम पात्र के लिये आप को मिटाना ही और उस के आज्ञाधीन रहना ही यथार्थ प्रेम है। प्रेमियों के प्रति विज्ञों का यही उपदेश है कि :—

"तू को इतना मिटा कि तू न रहे।
और तुझ में दुई की बून रहे॥"

पूर्ण वैराग्य की यही अवस्था है। यह अवस्था प्रगाढ़ प्रेम की

पूर्ण विकाश में प्राप्त होता है। किन्तु अब इस की विपरीत रीति हो गयी है। प्रेमियों का अपूर्व और विचित्र भेष बना कर, चाहे उन के हृदय में अनुराग का लेश हो वा नहीं, लोग वैरागी और अनुरागी कहलाना चाहते हैं। श्याम सलोने के अलौकिक रूप-राग से अपने नेत्रों को रञ्जित करने के बदले लोग गांजा आदि मादक द्रव्यों से अपने नयन को लाल बनाते हैं। जिन आंखों में अनुराग की घटा रहनी चाहिये वहां आज नशे का उमङ्ग रहता है। एक आशिक् से किसी ने पूछा कि तुम्हारी आंखें लाल लाल क्यों हो रही हैं क्या तुम ने मद पान किया है, उस ने उत्तर दिया।

" न कभी के बाद परस्त हम , न हमें य शौकशराब है।
लबे यार चूमा था ख़ाब में वही आज मसतिय ख़ाब है॥ "

तुम ने देखा होगा कि उन्मादग्रस्त व्यक्ति के पैरों में जञ्जीर और कमर में रस्सी बांधते हैं। अब उसी की देखादेखी किसी किसी सम्प्रदाय के साधु पैर में ज़ञ्जीर अलङ्कार स्वरूप धारण करते हैं, और कोई कोई कमर में मूंज का डंडा भी पहरते हैं। यह सब बाह्यभेष भूषा तबतक शोभा नहीं पाती जबतक मन अपने आराध्य देव के रङ्ग में नहीं रंगे। महात्मा काष्टजिह्वा स्वामी ने सत्य कहा है कि :—

" मन न रंगाया रंगाया तू कपड़ा। "

परन्तु मेरा आशय यह नहीं कि भेष की कोई आवश्यकता नहीं है, वरन् यह कि भेष के साथ साथ भेषी के यथार्थ गुण भी होने चाहिये।

मैं०—आप की एक एक बात सुन कर मेरा मन यथार्थ ज्ञान को प्राप्त करता जाता है। यह तो हुआ, परन्तु अब यह तो बताइये कि ये लोग जङ्गलों, पहाड़ों और कन्दराओं में क्यों रहा करते हैं ?

महा०—इस में भी बड़ा भेद है। प्रेमी को अनुराग में पागल देख कर लोग प्रायः उस का उपहास करते हैं, एवम् उस के सम्मुख उस के प्रेम-पात्र की निन्दा भी करने लगते हैं, जिस से उस का मन उसे

ओर से फिर जाय। किन्तु प्रेमी को यह बात नहीं भाती। लोगों से घिरे रहने के कारण उसे प्रेमपात्र के विषय में चिन्तन एवम् उस का ध्यान करने में विघ्न तथा बाधा पड़ती है। फिर वह अपने लोगों के साथ रहना नहीं चाहता और अकेले में बैठा अपने प्रेमपात्र के ध्यान में लीन रहता है और किसी का बकवाद तथा उपदेश उसे नहीं भाता। जब लोग उस से अधिक छेड़छाड़ करने लगते हैं तब वह भागकर निर्जन स्थानों में जाने लगता है—फिर अपने को औरों से अलग रखने के हेतु वन और गुफा आदि में प्रवेश कर जाता है। इसी को देखादेखी जो लोग पूरे सन्त तथा त्यागी नहीं हैं वे भी इन्हीं स्थानों में वास करने का अभ्यास करते हैं। किन्तु इतना अवश्य कहूंगा कि इन स्थानों में निवास करने और ऊपर कहे हुए भेष को धारण करने से अभ्यास में बहुत कुछ सहायता मिलती है।

मैं०—इन सब गूढ़ तत्त्वों को मेरे ऐसे अल्प बुद्धि को जो आप ने इतना परिश्रम से बताया, इस हेतु मैं आप को असंख्य धन्यवाद देता हूं। परन्तु दयाकर इस विषय के दो एक तत्त्वों को और भी मुझे बता दीजिये।

महा०—क्या ? पूछो, मैं वह सहर्ष बताऊंगा जो ईश्वर कृपा से बता सकूं।

म०—पहले तो मैं यह जानना चाहता हूं कि नाम जपना क्या है ? और भगवान् का नाम क्यों लिया जाता है ?

महा०—इस का रहस्य यह है, कि जिस के लिये मनुष्य व्याकुल रहता है उसे बहुधा पुकारा करता है। नाम पुकारने से मन में शान्ति आती है, एक अनिर्वचनीय आनन्द मिलता है और इसी से वह बहुत मीठा लगता है। तुम ने देखा होगा कि जो बालक अपनी माता से किसी कारणवश बिछुड़ गया है, यदि उसे माता का ध्यान आया तो उसे देखने के लिये "मा ! मा ! ! मा !!!" की वह रट लगा देता है। कोई उसे लाख क्यों न समझावे वह

किसी को एक भी नहीं मानता वरन् निषेध करने का विपरीत फल होता है, कि वह अधिक चिल्ला चिल्ला कर अपनी माता को पुकारने और विलाप करने लगता है। उसी प्रकार जो कहीं किसी खाद्य वस्तु के लिये मचल जाता है, तो उस के लिये भी वह वही झंझट फैलाता है और उसी का नाम रटते रटते कण्ठ सुखा देता है। और जबतक उस का स्मरण विलुप्त नहीं होता उस को रट नहीं छूटती। इस से यह सिद्ध हुआ कि जो वस्तु मनुष्य चाहता है उस का नाम सुनने अथवा उच्चारण करने में उसे सन्तोष और आनन्द मिलता है, और उस का नाम रटने का स्वभावतः उसे अभ्यास हो जाता है। बुरा न मानना यहां फिर वही लैली और अज़ीज़ मिस्र की बात याद आयी।

" लैली लैली पुकारत बन में।
प्यारी लैली बसे मेरे मन में॥ "

अब यह विचारना रहा कि यह पुकार कैसी होनी चाहिये,— यह पुकार, आरत आतुर वियोग-विरह से दग्ध, मर्मान्तिक-व्यथा से पीड़ित हृदय की पुकार लगातार होनी चाहिये। एक महात्मा ने कहा है कि जब कोई व्यक्ति मन में वा प्रकट उच्च-स्वर से लगातार " कृष्ण! कृष्ण! " पुकारता है और इस नाम पर एकाग्र चित्त हो ध्यान जमाता है तब उस का हृदयसरोवर श्री कृष्ण के प्रेम पीयूष से अवश्य पूर्ण हो जाता है और परमानन्द से एकदम वह मतवाला होकर श्री कृष्ण को साक्षात्, एवम् सब वस्तुओं में प्रत्यक्ष देखने लगता है और अन्त में शरीर त्याग कर गोलोक में निवास करता है। इसी से सन्तों ने कहा है कि नाम " तैल धारा वत् भक्त को सदा रटना चाहिये। " फिर नाम से वस्तु विशेष का ध्यान भी स्मृति-पट पर उदय होता है और जबतक नाम ध्यान में रहता है वह वस्तु विशेष (जिस का वह नाम है) भी ध्यान में रहती है; जिस वस्तु का जितना अधिक ध्यान किया जाता है,

जिस की चिन्ता में जितना रहा जाता है उस को प्रीति उतनी ही अधिक बढ़ती है। अतएव जहां तक हो सके प्रभु का नाम रटा करो, जपा करो वरन् नाम ही में रमा करो चाहे तुम किसी दशा में क्यों न हो, क्योंकि परमेश्वर का मधुर नाम स्वयम् परमेश्वर ही है। इसी से गोस्वामी जी ने कहा है कि :—

" भाव कुभाव अनख आलसहूं। नाम जपत मंगल दिसि दसहूं॥ "

मैं०—सब तो हुआ किन्तु नृत्य तथा गान का क्या रहस्य है?

महा०—मैं कई बार ऊपर कह आया हूं और फिर भी कहता हूँ कि परम भक्ति प्राप्त होने का यही लक्षण है कि मनुष्य पागल हो जाता है। प्रेम में पागल प्रेमी अपने प्रेमपात्र के सामने कह सुन कर जब अपना आनन्द एवम् आन्तरिक भाव भली भांति प्रकट नहीं कर सकता एवम् आनन्द का प्रबल स्रोत फूट कर उसे डुबो देता है और वह आपे से बाहर हो जाता है तब वह उन्मत्त हो उछलने कूदने तथा अपने प्रेमपात्र के सम्मुख नाचने गाने लगता है। गाने का तात्पर्य्य यह है कि गद्य से अधिक भाव पद्य में ग्रथित होते हैं। नाचने गाने का अर्थ यह है कि प्रेमी को उस का वाञ्छित फल प्राप्त हो गया। वर्षा के जल से भर जाने पर जैसे सावन की नदियां हिलती हैं, डोलती हैं, थिरकती हैं, नाचती हैं, तरङ्गित होती हैं और कलकल नाद से गाती हैं, उसी प्रकार हृदय सरोवर जब प्रेम-नीर से पूर्ण हो जाता है तब मन आनन्दित एवम् विस्मृत होकर नाचने और गाने लगता है।

इतना कहते २ महात्मा की आंखों से आंसु की धारा बहने लगी उन का स्वर भङ्ग हो गया, और नयनों को बन्द किये वे बहुत देर तक चुप बैठे रहे। रह रह कर उन का बदन कांप उठता था। उन के रोंगटे खड़े हो जाते थे। देखने से ज्ञात होता था कि मूर्त्तिमान् स्नेह बैठा हो। कुछ देर के बाद उन के लाल लाल नेत्र खुले जो अभी तक प्रेम नीर से छलछला रहे थे।

मैंने चरण छूकर उन्हें बारम्बार प्रणाम किया और कहा कि जैसे कृपाकर आप ने इतना बताया वैसे यह भी कहिये कि लोग भोग क्यों लगाते हैं और विविध वस्तुएं भगवान को समर्पण क्यों करते हैं ?

महा०—इसे तुम सहजही में समझ सकते हो। एक तो यह कि जिसे मनुष्य प्यार करता है उसे प्रसन्न करने की सदा चेष्टा करता है। सुन्दर पदार्थ सब को रुचिकर होते हैं, अतएव जब प्रेमी किसी सुन्दर वस्तु को देखता वा पाता है तो स्वभावत: उस की इच्छा होती है कि उसे अपने प्रेमपात्र के कमनीय चरणाम्बुज में उपहार दें। रुचिर भोजन बना प्रेमी अपने प्रेमपात्र की प्रतिमा के सम्मुख रखता है। जानता है कि उस का परिश्रम सुफल हुआ सुन्दर फूलों को पाकर मनोहर माला गूंथता है और उसे अपने महबूब के गले में डालकर जानता है कि सुमन का जन्म सार्थक हुआ ! जहां सुन्दर रचना देखता है वहीं सीस नवाता है और समझता है कि वह उसी के चरणों पर माथा नवाता है। सच्ची पूजा यही है यथार्थ भक्ति इसी को कहते हैं । ऋषियों ने यह भी कहा है कि जो फूल, फल, दल, जल, भक्तिपूर्वक भगवान को समर्पण किया जाता है इसे भक्ति का उपहार समझ कर परमात्मा सानन्द ग्रहण करते हैं। यहां तुम से यह भी बताना कदाचित् अनुचित नहीं होगा कि इन वाह्य पूजाओं के अतिरिक्त एक मानस पूजा है जिसे मानस भावना भी कहते हैं। यह पूजा ध्यान ही में आठो याम की जाती है।

यह मानस भावना भी दो प्रकार की होती है। एक तो वह कि जिस में उपासक अपने उपास्यदेव के निकट ध्यान में जाकर पूजा तथा सेवा करता है और दूसरा वह कि जिस में साधक अपने हृदय कमल, नाभी कमल वा शतदलकमल पर अपने इष्टदेव को बिठा कर भक्तिपूर्वक उन की सेवा तथा पूजा करने की कल्पना करता है।

अब रही समर्प्पण की बात। इस गूढ़ तत्त्व की व्याख्या जो गीता में है उस से बढ़कर कोई कर नहीं सकता। अपने को मिटा कर प्रेमदेव के संग तन्मय हो जाने का इस से उत्तम उपाय कोई दूसरा हुई नहीं है। जो कुछ मैं करता हूं वह सब कार्य्य उसी अखण्ड ब्रह्माण्ड नायक प्रेमदेव का है, मैं निमित्त कारण मात्र उसे सम्पन्न करता हूं, उन के फलाफल का उत्तरदाता मैं नहीं हूं। उन के बनने बिगड़ने का जिम्मेवार मैं नहीं हूँ। यह विमल बुद्धि जिस की है वह कर्मफल को परित्याग कर अपना सब कर्म उसी प्रेम देव के पादपद्म में समर्पण करता है—और समर्पण कर निश्चिन्त हो जाता है। इसी का नाम कर्मफल त्याग है। कर्मफल त्याग करने का अभ्यास करने से मनुष्य निष्काम प्रेमी हो जाता है क्योंकि अपने को फल का भागी नही समझने से उस की हृदय वाटिका में कर्म बीज और कामना बेली जल जाती है। अतएव वह अपने परम पवित्र प्रेम के द्वारा भगवान् को प्राप्तकर परमानन्द-लाभ करता है।

मैं०—कृपाकर अब यह तो बताइये कि भाव किसे कहते हैं ?

महा०—वासुदेव उर अन्तर में बैठ कर अपने भक्तों को कृपा-नन्द से भिगो देते हैं। ऐसी अवस्था में मानव हृदय में यह वासना आती है कि कोई नाता उस भगवान् के संग आत्मा जोड़े जो ऐसी कृपा कर रहा है, ऐसा आनन्द देरहा है और ऐसा सुन्दर एवम् मनोहर है। उस के रूप गुण तथा माधुर्य्य पर मोहित होकर आत्मा परमात्मा को अपनाना चाहती है। उसे अपना कहना चाहती है। अपना कहने के लिये व्याकुल होकर वह उस के साथ विविध प्रकार का भाव वा नाता जोड़ती है।

यह भाव वा नाता छः प्रकार के होते हैं किन्तु चार इन में प्रधान हैं यथा कान्त, सख्य, वात्सल्य और दास्य। इस में कान्त वा माधुर्य्य भाव सब से उत्कृष्ट है। कान्त भाव में आत्मा अपने को स्त्री

और परमात्मा को पुरुष मानकर दाम्पत्य सुख को अनुभव करती है। सख्य भाव में भक्त अपने इष्ट देव को सखा वा मित्र मानकर उस से प्रीति करता है। इसी प्रकार वात्सल्य में पिता पुत्र वा पुत्र पिता और दास्य में दास स्वामी का नाता जोड़ा जाता है। इन भावों के अनुशीलन से भक्त अपने को अपने इष्ट देव के समीप और सम्मुख अनुभव करता है। फिर अकपट भाव से भगवान् से अपने सुख दुःख और प्रेम वियोग की व्याख्या करता है। फिर प्रेम और प्रेम-पात्र में अन्तर नहीं रह जाता। भगवान् को जो जिस भाव से देखता है उसे भगवान् उसी भाव से देखते हैं। उन से जो जिस नाते को जोड़ता है उस से वह वही नाता निबाहते हैं। जैसा कि उन्हों ने स्वयम् कहा है कि :—

"ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।"

किन्तु यह बात उन की कृपा बिना नहीं होती।

किन्तु यह बात जान रखो कि सब भावों में सेवा सम्मिलित है। भक्ति का प्रधान अङ्ग सप्रेम सेवा है। अपने आराध्य देव की सेवा भक्त का मुख्य धर्म है क्योंकि भक्ति शब्द "भज्" धातु से बना हुआ है जिस का अर्थ "सेवा" है। इस सेवा में भक्त को जो सुख मिलता है उस का उल्लेख कदापि नहीं हो सकता—यह वर्णनातीत है। भक्त को उचित है कि सेवा का पुरस्कार चाहे बिना अपने प्रेम देव की सेवा सदा करता रहे। और सेवा किये बिना उसे रहा भी तो नहीं जाता।

मैं—आप की बातें सुन मेरी बुद्धि की आंखें क्रमशः दिव्य दृष्टि को पाती जाती हैं। अब मुझे केवल यही जानना रहा कि कान्त, सख्य, वात्सल्य और दास्य आदि भावों का अनुभव मनुष्य को क्यों कर होता है?

महा०—तुम्हारी श्रद्धा सराहनीय है कि इन बातों को सुन कर तुम्हारा जी नहीं उकताता वरन् उत्साह बढ़ता ही जाता है।

विविध भाव निरोधों को तुम से व्याख्या करता हूं। तुम ने सुना होगा कि पृथिवी मनुष्य के लिये शिक्षा स्थल है। प्रेम को शिक्षा ही पाने के लिये जीव इस संसार में भेजा गया है। यदि प्रेम का विकाश इस के हृदय में नहीं हुआ, यदि इस में प्रेम प्रौढ़ता को नहीं पहुंचा, यदि मनुष्य जीवन धारण कर प्रेम पवित्र तथा उज्ज्वल तप्त सोने के सदृश नहीं हुआ तो मनुष्य जन्म विफल हुआ। मनुष्य जीवन का कर्त्तव्य केवल प्रेम को शिक्षा प्राप्त करनी है। माता की गोद में यह शिक्षा आरम्भ होती है और ज्यों ज्यों मनुष्य की अवस्था बढ़ती जाती है यह प्रेम भी उज्ज्वल होता जाता है। माता पिता के संग स्वार्थवश स्नेह आरम्भ होता है, रमणी को पा यह स्नेह परस्पर होकर दाम्पत्य प्रणय के रूप में परिवर्तित होता है और जब वह मनुष्य शिशु सन्तान से घिर जाता है तो उस के हृदय में निःस्वार्थ प्रेम का विकास होता है। यदि कहीं कोई सच्चा मन-माना मित्र मिल गया तो हृदय वाटिका में वह अनुराग लतिका कुसुमित होती है जिस का सौरभ दिगन्त में व्याप्त हो जाता है। संसार के इन्हो सम्बन्धों से जो शिक्षा मिलती है इसी के द्वारा हम-लोगों के हृदय में ईश्वर सम्बन्धी विविध भावों को भावना उत्पन्न होती है। अतएव ईश्वर से कोई एक सम्बन्ध जोड़कर हम लोग भगवान् की उपासना करते हैं।

समझलो कि परिवार तथा समाज का विविध बन्धन हम लोगों को इसी लिये दिया गया है कि उन से स्नेह की शिक्षा पाकर मनुष्य जगदाधार के स्नेह में लीन हो जाय। यदि पारिवारिक स्नेह से तुम्हारी आत्मप्रियता लुप्त नहीं हुई, यदि पत्नि-प्रणय से तुम्हारा चित्त मार्ज्जित नहीं हुआ, अपने बन्धु बान्धव तथा परिवार को प्यार करते करते तुम ने मानव जाति को प्यार करने नहीं सीखा, यदि इस शिक्षालय में तुम्हे पर हित साधन की शिक्षा नहीं मिली, यदि तुम्हारे सम्बन्धियों ने तुम्हे भगवान् के संग कोई सम्बन्ध जोड़ने

में सहायता न दी तो मिथ्या तुम संसारी हुए, मिथ्या तुम परिवारी हुए, व्यर्थ तुम ने गार्हस्थाश्रम का अवलम्बन किया। केवल इन्द्रिय परितृप्ति के लिये ये नहीं हैं। यदि विवाह बन्धन से मनुष्यचरित्र का उत्कर्ष साधन नहीं हुआ तो विवाह करने का प्रयोजन ही क्या है? अतएव जान लो कि स्त्री पुत्र आदि केवल प्रेम के शिक्षक हैं।

मैं०—आप ने सब बातें तो कहीं किन्तु विनय वा प्रार्थना के विषय में तो कुछ बताया नहीं।

महा०—मैंने समझा था कि यह विषय तुम जानते होगे किन्तु जब तुम ने पूछा तो सुनो। यह तो तुम अवश्य जानते हो कि अपने मन की बात दूसरे से कहने पर मन से एक बोझ हट जाता है और मनुष्य को आन्तरिक आनन्द मिलता है। बालक को जब किसी वस्तु का अभाव होता है तो वह अपनी मा से बात कहकर निश्चिन्त हो जाता है। जब मनुष्य पर कोई भारी गाढ़ पड़ता है अथवा कोई भेद की बात होती है तो अपने दुःख तथा मनोभाव को अपने किसी सच्चे शुभचिन्तक तथा इष्ट मित्र से कह कर और उन से सहायता की प्रार्थना कर वह सुख पाता है। उसी प्रकार जब किसी के दास वा प्रजा को कोई दुःख पहुंचाता है तो अपनी अवस्था को अपने स्वामी वा राजा से सविनय निवेदन कर वह अपना दुःख भूल जाता है। अब कहो कि भक्त के लिये माता, पिता, मित्र, बन्धु, सखा, स्वामी तथा राजा जो कुछ हैं उस के इष्ट देव हैं; उन से अधिक उस को कौन सहायता कर सकता है। और उस के संग सहानुभूति दिखा सकता है। यदि ऐसा नहीं भी करें तो जब तुम उस की शरण में हो तो, क्या तुम्हारा यह कर्तव्य नहीं है कि उन पर सब बातें प्रकट करदो। यदि उस प्रभु से हम लोग अपने मन की बात नहीं कहेंगे तो किस से कहेंगे? जो अपना है उसी को अपना हृदय चीर कर दिखाया जाता है, जो

अपना है उसी को अपने सुख दुःख का भागी बनाया जाता है और जो अपना है, जिस पर अपना कुछ अधिकार है, उसी से सहायता ली जाती है। वैद्य से रोगी नाना वस्तुओं को खाने के लिये मांगता है। किन्तु वैद्य उस की अवस्था के अनुसार उस के लिये पथ्यापथ्य का विचार करता है। भक्तों को भी यही उचित है कि उस के सब कुछ जानने पर भी अपने इष्टदेव से सब वस्तुओं के लिये प्रार्थना करे, अपने सब अभावों को उसे कह सुनावे और अपना सब दुःख अकपट रूप से उन के सम्मुख प्रकट करे। वह सर्वदर्शीदेव यथोचित व्यवस्था आपही ठीक करलेता है; और जो सर्वोत्तम है वही करता है। कहने का काम मेरा है, करने का उसका। किसी ने ठीक कहा है कि—

"गरजो बेचारे अहौं अरजी कियेई चाहैं मानिबो न मानिबो ये मरजी हजूर की।"

किन्तु कितने भक्त ऐसे भी हैं जो किसी अवस्थामें क्यों न हों परन्तु किसी कामना के लिये कदापि प्रार्थना नहीं करते। इन की रुचि स्वतन्त्र नहीं होती। प्रभु की इच्छा ही में ये अपनी इच्छा लीन कर देते हैं। सारांश यह कि घोर विपद को भी ये सहर्षस्वीकार करते हैं और उसे दुःख भी नहीं मानते। ऐसे भक्त उच्च श्रेणी में गिने जाते हैं। इन की धारणा यह है कि जब मैं भगवान् की शरण में हूं तब जिस अवस्था में वह उचित समझते हैं, उसी अवस्था में रखते हैं, मुझ पर उन का पूर्ण अधिकार है, मेरा क्या साध्य कि इस विषय में कुछ कहूं। अतएव मुझे उचित है कि सब अवस्था में अपने को परम सुखी मान कर सन्तुष्ट रहूं।

मनुष्य की मति भिन्न भिन्न होती है। किन्तु मेरा विचार तो यह है कि प्रार्थना सब प्रकार उपयोगी है। यदि प्रार्थना एवम् स्तुति का उद्देश्य ईश्वर विषयक चिन्ता हो तो वह भी दिव्य प्रेम का उपादान ही है। यहां यह बात स्पष्ट रीति से समझ लेनी उचित है कि जिन्हें उच्च कक्षा की भक्ति प्राप्त नहीं हुई, जिन के

मन से कामना एवम् वासना दूर नहीं हुई, जिन्हों ने प्रभु की इच्छा में अपनी इच्छा लय नहीं कर दी और जिन के हृदय में नाना प्रकार की वस्तुओं की चाह उठा करती हैं, उन्हें अपने इष्ट को अकपट रूप से अपनी सब वासनाओं को सुना देना चाहिये, जिस में कुछ अन्तराल न रहे। यह नहीं कि मन तो अनेक पदार्थों के प्राप्त करने के लिये चञ्चल हो रहा है किन्तु अपने प्रेमदेव से उस की व्याख्या करनी तो दूर रहे वरन् उन्हें उन से छिपाने ही की चेष्टा हो। जो मांगना है तो उसी एक से मांगेंगे नहीं तो नहीं मांगेंगे। इसी से कहा है कि सब से भगवान् को मांगना और सब कुछ भगवान् से मांगना चाहिये। क्योंकि सब और कुछ उस का है और एक वही मेरा है।

सब बात की एक बात, तुम से यही कहता हूं कि भक्त को अनुराग ही के लिये इच्छुक होना चाहिये, क्योंकि पूर्ण अनुराग हो जाने पर विराग आप से आप ही आ जाता है एक कृपण का उदाहरण लो। देखो द्रव्यसञ्चय के लिये वह सब संसार अपने पराये सब को तज देता है। मान, बड़ाई, निन्दा, स्तुति किसी वस्तु की उसे कामना और चिन्ता नहीं रह जाती। मानो जागते स्वप्न में एक अर्थ के सिवा और किसी पदार्थ का उसे ध्यान नहीं रहता। उस के काम क्रोध, लोभ, मोह आदि सब संसारी वासनाओं का एक मात्र लक्ष्य वह द्रव्य ही रहता है। वह अपने प्राण को, शरीर को, कुल परिवार को सब को छोड़ सकता है किन्तु अपने इष्टदेव (द्रव्य) की चिन्ता नहीं छोड़ सकता। एक द्रव्य का अनुरागी होने के कारण वह कैसा विरागी हो जाता है। भक्त को उचित है कि इसी प्रकार अपने प्रेमदेव के अनुराग में लीन हो जाय फिर उसे संसार मात्र से विराग हो जायगा। इसी अभिप्राय को श्री गोस्वामीजी ने इस निम्नलिखित दोहे में प्रकट किया है,—

"कामिहिं नारि पियार जिमि, लोभिहि प्रिय जिमि दाम।
तिमि रघुनाथ निरन्तर, प्रिय लागहु मोहि राम॥"

बात तो बहुत बढ़ गयी, किन्तु एक भेद और बताये बिना मैं इस प्रसङ्ग को छोड़ नहीं सकता। कारण इस का यह है कि कहीं तुम मेरी बातों से भ्रम में न पड़ जाव। मैंने प्रेमशब्द का बहुत व्यवहार किया। कहीं इस प्रेम का अर्थ तुम वह दूषित प्रीति न समझ लो जो संसारी जीवों में दुर्वासना करके प्राय: उत्पन्न हुआ करती है। इस में सन्देह नहीं कि आत्मा की पुष्टि केवल प्रेम ही से होती है, चाहे वह प्रेम क्षणभंगुर संसारी जीवों के संग हो, चाहे परमात्मा के प्रति। परन्तु नीच वासना जनित प्रीति से सच्चे पवित्र प्रेम को सदा अलग मानना चाहिये। इन्द्रियसुख के लिये जो प्रीति होती है उस में और पवित्र प्रेम में नरक और स्वर्ग का अन्तर है। आज कल सच्चा प्रेम बहुत कम पाया जाता है। नष्ट प्रीति पुनीत प्रणय का रूप धारण किये जगतीतल में प्राय: भ्रमण किया करती है। इसी कारण लोग प्राय: सच्चे प्रेमी का भी उपहास करते हैं, उन की भी निन्दा करते हैं और उन पर भी ठट्ठा मारते हैं। बहुत गम्भीर बुद्धिवाले का काम है कि इन दोनों में भेद कर सच्चे प्रेमी का आदर करें और कुपथगामी नीच जीवों का जो प्रेमियों के नाम को कलङ्कित करते हैं तिरस्कार करें। प्रेम ऐसा अमूल्य रत्न कदापि इस हेतु आत्मा के संग संसार में नहीं भेजा गया था कि वह कुपात्रों पर न्योछावर किया जाय। प्रेम की सृष्टि उच्च उद्देश्यों के सिद्ध करने के लिये हुई थी। जिस ने इस का यथार्थ आदर और संयम नहीं किया उस का जीवन विफल गया। प्रेमानल से जिस के हृदय की कुवासना नहीं जली, प्रेम-प्रवाह ने जिस के मन से आत्मगौरव तथा स्वार्थ को बहा न दिया, पुनीत प्रणय ने जिसकी आत्मा को पवित्र तथा उज्ज्वल नहीं बनाया उस का नर योनि में जन्म ग्रहण करना व्यर्थ हुआ।

अब अधिक कहां तक कहूं यह कथा अकथनीय है। हां! इतना जान लो कि प्रेम नहीं करने से प्रेम करके मर मिट जाना अच्छा है। बात करते समय बीतते देर न लगी। सन्ध्या हो आयी। तुम ने यहां अपने आने का कारण अभी तक नहीं कहा। अच्छा फिर दूसरे समय देखा जायगा।

पञ्चम कल्पना ।

सान्त्वना ।

" Be cheerful, wipe thine eyes ;
Some falls are meant the happier to arise. "

Shakespeare.

आधी रात का समय है। चारों ओर अटल निस्तब्धता राज्य कर रही है। कृष्ण पक्ष के कारण चन्द्र देव का अभी तक गगन में आगमन नहीं हुआ। किन्तु असंख्य तारागण नीलोज्ज्वल आकाश में जगमगा रहे हैं। पार्श्ववर्ती वाटिका के कुसुमित एवम् अर्द्ध विकसित पुष्प से सुगन्ध को चुरा कर सर्वत्रगामी शीतल समीर मन्द मन्द गति से चल रहा है। रह रह कर निकटस्थ आम की डालों से कोयल कूक रही है। जिसे सुन कर मेरा चित्त चञ्चल हो जाता है। आधी सृष्टि निद्रा देवी की गोद में सुख से विश्राम कर रही है। कवि, व्यभिचारी, चोर तथा मेरे सदृश बिरही, जिन के बांटे नींद पड़ी ही नहीं है, अपने अपने ध्यान और घात में लगे किसी प्रकार रात्रि-जागरण कर अपना समय बिता रहे हैं।

मैं महात्मा की कुटी में उन की व्याख्या पर आलोचना करता हुआ बैठा था। शाम ही से मैं एक प्रकार अकेला ही था, क्योंकि महात्मा सायं काल की क्रिया से छुट्टी पा सो रहे थे। इस समय उन के निकट प्राय: कोई रहता नहीं है। देखते देखते अपने इष्ट देव का नाम लेते हुए वह उठे बैठे और उन्हों ने मुझे एक बार पुकारा। मैं तो जागता ही था " जो आज्ञा " कह कर सजग हो बैठ गया।

महा०—तबीअत तो नहीं घबड़ाती? क्या अभी तक तुम्हें नींद नहीं आयी?

मैं०—मुझे तो सोये आज महीनों बीत गये। मेरे भाग्य में विश्राम कहां? पतवार हीन नौका सा मेरा मन चिन्तासागर में सदा भटका फिरता है। चिन्तित पुरुषों को नींद का सुख कहां मिलता है। कवि रहीम ने बहुत ठीक कहा है कि;—

"नींद पुरानी गेहिनी, रात न आई हाय।
चिन्ता नव बधु देखि के, झाँकि झांकि चलि जाय॥"

महा०—तुम ने स्पष्ट यह बात नहीं कही कि तुम इतना दुःखी क्यों हो?

मैं०—महाराज! अब क्यों कर कहूं। सब बात तो आप जान ही चुके। कहिये, अब कहने को क्या बाक़ी रहा?

महा०—तुम्हें देखकर मुझे ऐसी प्रतीति होती है कि तुम सौन्दर्यनिधि दयासागर करुणानिधान को जानते हो, तो फिर क्यों एक क्षुद्र रमणी पर मर रहे हो। तुम्हें तो स्त्री है न?

मैं०—स्त्री तो अवश्य है। किन्तु मरने की बात क्या कहूं? इस का उत्तर देने में मैं असमर्थ हूं। मैंने अपने मन को लाख समझाया परन्तु अन्तःकरण से उस रूपसी का चित्र हटता नहीं। आप के निकट तो मैं इसी लिये आज आया हूं कि आप मुझे इस विपद से उद्धार पाने का उपाय बताइये।

महा०—तुम्हारी दशा पर मुझे दया आती है, क्या कहूं? किन्तु एक बात तुम्हें समझा देता हूं कि जिस प्रकार अपना मनोभाव तुम ने मुझ पर प्रकट किया वैसा दूसरे के निकट भी न करना, क्योंकि प्रेमी पर लोग प्रायः हंसा करते हैं। आजकल सभ्य लोगों को प्रगाढ़ गम्भीर, शुद्ध एवम् आन्तरिक सरल प्रेम का अनुभव नहीं है। लोग यह बात समझने में अक्षम हैं कि मनुष्य के अन्तःकरण में स्वार्थरहित प्रेम का विकाश क्यों कर हो सकता है। लोगों को सहानुभूति सच्चे

प्रेमी के भी संग नहीं होती। वरन् अब प्रेम घृणा तथा उपहास का विषय समझा जाता है। सावधान होकर रहो। मेरे उपदेश को बुरा न मानना। मैं तुम्हारा यथार्थ हितचिन्तक हूं।

मैं०—महाराज! आप धन्य हैं। यदि संसार में केवल आपही सरीखे श्रेष्ठ-जीव निवास करते तथा ऐसे ही सच्चे प्रेमियों से हम लोगों को सदा व्यवहार करना पड़ता तो पृथिवी दुःखागार क्यों कही जाती एवम् नश्वर जीव को इतना क्लेश क्यों भोगना पड़ता। मेरा जीवन तो अब मेरे लिये एक असह्य बोझ हो रहा है।

महा०—तुम इतना विह्वल क्यों हो रहे हो? निराशता की कोई बात नहीं है। धैर्य्य धरो। कातर क्यों होते हो? अधीर होना व्यर्थ है।

मैं—आप को पवित्र प्रेम का स्वाद मिला है, इसी से ऐसा कहते हैं। जिस के माथे आप नहीं बीती है, वह दूसरे की पीर क्या जानेगा?

"मरम की पीर न जाने कोय।"

दूसरे के दुःख से दुःखी होने के हेतु हमलोगों को विपद, क्लेश तथा पीड़ा की क्यों आवश्यकता होती है? दूसरे के नेत्रों में केवल आंसू देख कर हमलोगों का हृदय क्यों द्रवीभूत होता है? क्या अनुभवरहित होना ही अच्छा है? क्या स्मृति का लोप होना अच्छा है अथवा यंत्रणा का सहना? मुझे ज्ञात नहीं होता मरना अच्छा है वा प्रेम में पागल होना। क्या ज्ञानहीन, चिन्ताविहीन होकर जीवनस्रोत में मूर्ख जैसा बहता चला जाना अच्छा है वा जान पर खेल कर अपने उद्देश्य को सिद्ध करना एवम् अपने वाञ्छित वस्तु को प्राप्त कर अपनी चिन्ता, व्याकुलता तथा परिश्रान्ति को दूर करना। आलसी सा हाथ पांव तोड़ कर बैठ जाना भला है अथवा जीवनपथ में उत्साहपूर्वक अग्रसर होना।

महा०—प्रेम का रहस्य जानना कठिन है। किन्तु प्रेम ही द्वारा सब उत्तम गुण मनुष्य में आते हैं। प्रेम ही में हमलोगों की सृष्टि हुई थी और हम लोगों के जीवन का उद्देश्य अनन्त तथा अपार प्रेम को प्राप्त करना ही है। परन्तु यह कहना कठिन है कि संसार की यात्रानिर्वाह करने में प्रेम इतना कलुषित क्यों हो जाता है। प्रेम को नहीं जानने के कारण मनुष्य को कितनी हानि उठानी पड़ती है। मनुष्य को प्रेम का जितना ही उच्च अनुभव होता है और जितनी ही उत्तम श्रेणी के प्रेम की वह उपासना और साधना करता है उसे उतना ही उत्तम पुरस्कार मिलता है। प्रेम कहता है कि "तुम ने मुझे नहीं पहिचाना, मुझे पहिचानने की तुम ने कभी चेष्टा भी नहीं की, तुम मुझे पहिचान भी नहीं सकते। मुझे जानने के पहले तुम्हें अपने अन्तःकरण को स्वच्छ बनाना पड़ेगा, उस से कपट एवम् स्वार्थपरता को हटा देना पड़ेगा और उसे शुद्ध तथा सरल करना पड़ेगा। नीचता, क्षुद्रता तथा स्वार्थ मेरे संग वास नहीं करते। मैं मनुष्य को अमरत्व-पद पर पहुँचाता हूं।"

देखो, सच्ची प्रीति का विरोधी आत्मप्रीति है। आत्मप्रीति जहां तक ईश्वर की प्रीति के संग संगत है, वहीं तक उस का विस्तार हमलोगों के हृदय में होना चाहिये। अतएव आत्मप्रीति को उत्तम तथा उन्नतधर्म के द्वारा चिरशासित करना उचित है। किन्तु यहां देखता हूँ कि तुम अपनी ही चिन्ता में व्यस्त हो कर सब को भूले जाते हो। अपने हृदय से संकीर्णता को हटाओ। अपनी प्रीति को सार्वजनिक बनाओ। क्या तुम ने यह उपदेश नहीं सुना है कि :—

"मरना भला है उस का जो अपने लिये जिये।
जीता है वह जो मरचुका इन्सान के लिये॥"

मैं०—आप की बातें मुझे और भी व्याकुल किये देती हैं। अब मैं जान गया कि मेरा मनुष्यजीवन व्यर्थ गया। हाय! विधाता ने नयनपथ में मालती को क्यों खड़ा किया। यदि मैं मालती को

नहीं देखे रहता और उस की अलकावली में मेरा प्राण नहीं उलझा रहता तो आज मैं आप की बातों से कितना सन्तुष्ट और सुखी होता। जिस ने मालती को नहीं देखा वह अनुमान नहीं कर सकता कि वह क्या वस्तु है। प्रेमी की कौन कहे उसे देख कर कवि, चित्रकार एवम् शिल्पी भी अपनी आदर्श-नायिका को भूल जायंगे, यही मेरा अटल विश्वास है। आप मुझे क्षमा कीजिये; मेरा मन मेरे अधीन नहीं है, इस पर मेरा अधिकार नहीं है। जो जी में आता है कह देता हूं। आप का स्वभाव भी तो सराहनीय ही है। आप को देख कर मुझे यह इच्छा होती है कि अपनी सारी कहानी आप से कह सुनाऊं, उसी से यह सब निरर्थक बातें बक रहा हूं। मन में आशा होती है कि आप से मुझे कुछ सहायता मिल सकती है। आप चाहें तो मेरा कष्ट दूर हो सकता है। इसी से आप के आगे दुःख रो रहा हूं।

महा०—हाय! हाय! तुम से मैं अधिक क्या कहूं? सब कुछ तो समझा चुका। क्या अबतक भी तुम ने मनुष्यजीवन का कर्त्तव्य नहीं समझा कि पार्थिवसुख के लिये इतना व्याकुल हो रहे हो। जिस के भेजे इस पृथिवी में आये हो, जिस की दया से यह सुन्दर मनुष्यशरीर पाये हो, जिस की कृपा से जीवन की सब शक्तियों को प्राप्त किये हो, उसी के लाभार्थ चिन्ता, उद्यम एवम् परिश्रम क्यों नहीं करते? पार्थिव सुख समृद्धि के लिये तुम इतना व्याकुल क्यों हो रहे हो? स्वभाव तथा प्रकृति के निर्देशानुसार पवित्र प्रेम की वृद्धि क्यों नहीं करते, जिस में अनन्त जीवन के हेतु उन्नतिसाधन में सहायता मिले। क्या तुम्हें अभी तक ज्ञात नहीं हुआ कि आत्मा का जीवन प्रेम तथा पवित्रता पर निर्भर है। जान रखो, पृथिवी का अतुल धन, रत्न, शरीर का असीम तेजोबल, रतिमानमर्दिनी रूपसी का सहवास किसी प्रकार अन्तःकरण की ज्वाला नहीं बुझा सकते, आत्मा को प्रसन्न रखने में सक्षम नहीं हो सकते। शुद्ध प्रेम को प्राप्त

किये बिना मनुष्य को आनन्द नहीं मिल सकता, प्राण को तृप्ति नहीं हो सकती, जीवन की सर्वाङ्ग उन्नति नहीं हो सकती। जिस प्रकार सलिल के निकट आरोपण की हुई वृक्ष लताएं अपनी श्यामल शोभा, सतेजभाव एवम् सुरसाल सुन्दर फल फूल पत्रादि के भार से अवनत हो नयन, मन तथा प्राण को मोहित तथा सुखी करती हैं, उसी प्रकार जो जीवन उस प्रेममय प्रभु के प्रेम सलिल के निकट रह कर और उस रसद्वारा परिपुष्ट हो कर उन के सौन्दर्य्य, तेज, स्फूर्ति, शक्ति, उन के ज्ञान, स्नेह, अनुराग, लगन. प्रेम, पवित्रता, उन के कार्य्योत्साह तथा सजीव मधुर भाव को ग्रहण करता है, उस का नरजीवन सार्थक होता है, और उस देवानुगृहीत का ऐसा तेज होता है कि वह मृत प्राण में भी जीवनसञ्चार करता है। तुम्हारे साथ मेरी पूर्ण सहानुभूति है। किन्तु क्या करूं। यदि मुझ में शक्ति होती तो ऐसी चेष्टा अवश्य करता कि मालती के साथ तुम्हारा संयोग हो जाय; क्योंकि तुम्हारी यह प्रीति भी शुद्ध प्रेम में परिणत हो जा सकती है। पर क्या करूं, मेरा कुछ बस नहीं है। एक स्त्री के रहते तुम्हारे ससुरालवाले तुम्हें पुन: दारपरिग्रह करने की यथासाध्य आज्ञा भी तो न देंगे। मनुष्य का अपना सोचा सब नहीं होता; नहीं तो यह संसार स्वर्ग से भी अधिक सुखप्रद होता।

मैं॰—आप की सब बातें मैं समझता हूं। किन्तु वह प्रतिमा मेरे हृदयमन्दिर से बाहर नहीं होती। उस की प्रीति मेरे मन से नहीं हटती। क्या करूं?

"मजबूर हूं मैं उस की मुहब्बत नहीं जाती।"

अब मेरा निर्वाह आप ही के हाथ है।

महा॰—देखता हूँ कि तुम विचार से काम नहीं लेते हो। विचार कर देखो कि इस का क्या परिणाम है।

मैं॰—आप क्या यह भूल गये कि प्रीति और विचार में शत्रुता

है। विवेक का वैरी प्रणय है। फिर यह भी तो है कि विचार कोई स्वतन्त्र वस्तु नहीं है। बहुधा मन ही के अधीन रह कर विचार काम करता है और आत्मा के आदेशानुसार काम नहीं करता। अपनी इच्छा के अनुसार मनुष्य अपने विचार को भी अपनी दिखाई हुई राह पर ले चलता है। जो काम उसे अच्छा लगता है उस का विचार भी उसे अच्छा कहता है। फिर कल्पनाशक्ति आशादेवी की सहायता से उसे सुख का पुञ्ज और आनंद का आगार बना देती है। मेरे विचार में तो इस समय यही जँचता है कि मालती के पाये बिना मुझे सुख नहीं है, उस के पाये बिना संसारयात्रा में आनन्द से निर्वाह नहीं कर सकता। आप विचार की दोहाई न दीजिये, कोई ऐसा उपाय बताइये कि मेरा दुःख दूर हो।

व्यर्थ आशा! मूढ़ विचार! नहीं! नहीं! सफलता मेरे बांटे नहीं पड़ी। अपने प्रणय में मैं भी कृतकार्य्य नहीं होऊंगा। अपर व्यक्ति विशेष भाग्यवान् हैं। मुझे अब इस जीवन में सुख नहीं है। इस का ध्यान अब मैं सदा के लिये छोड़ दूंगा। इस पृथिवी में ही मैं नरकयातना अनुभव कर रहा हूं वरन भोग ही रहा हूं। नरक की अग्नि मेरे हृदय में धधक रही है। मालती का अनुपम रूप कदापि भूल नहीं सकता। इस के लिये मैं सब कुछ छोड़ सकता हूं। मुझे ज्ञात होता है कि उस के रूप और स्वभाव में कैसी कुछ स्वर्गीय आभा है, कि उसे देख कर जान पड़ता है मानों वह स्वर्ग से उतरी हो। मुझे अनुभव होता है कि उस के हृदय में शुद्ध पवित्रता राज्य करती है और जितने भाव वहां उदय होते हैं वे सब स्वच्छ उत्तम एवम् सरल हैं। प्रकृति ने ही उसे ऐसा मनोहर बनाया है। अतएव प्रकृति के साथ उसे इतनी सहानुभूति है। सुना है कि अकेले में बैठी वह अनन्त गगन को देखा करती है। चन्द्रदेव की ओर देखती हुई अनन्त सुख पाती है।

मालती! मैं तुझे प्राण से भी अधिक चाहता हूं। किन्तु मेरा

ध्यान तेरे हृदय में नहीं है। मालती! मालती! हाय, मालती! क्या अभी तक तुझे ज्ञात नहीं हुआ कि मैं तेरे लिये मर रहा हूं। मेरे जीवन का ध्रुवतारा, प्रेमक्रीड़ा की सामग्री प्रेममयी मालती तू नहीं जानती कि तेरे लिये मेरी कैसी बुरी दशा हो रही है। जा, जा, व्यर्थ की आशा! यहां से दूर हो। अपनी मोहिनी मूर्त्ति अब मुझे न दिखा। तेरे फंदे में अब मैं नहीं पड़ सकता। तेरे जाल में नहीं आ सकता। कुहुकिनी हट, यहां से दूर हो। प्रेम ऐसी वस्तु है कि जिस से दूसरे को कोई सम्बन्ध नहीं रहता अतएव उसे छेड़छाड़ अच्छी नहीं लगती। आशा अब तेरी सहायता मैं नहीं चाहता। किन्तु यहां आशा तो जाती नहीं। दिन पर दिन चले जाते हैं, कोई आशा तो पूरी नहीं होती; तो भी तो आशा जाती नहीं। अनिद्रा में, दुश्चिन्ता में रात कट जाती है, अत्यन्त क्लेश, कर्महीनता में दिन भी कट जाते हैं किन्तु आशा तो जाती नहीं।

हा विधाता! मेरे बांटे क्या केवल दुःख ही पड़ा है? क्या ऐसे ही चलेगा? किन्तु जो होना था सो तो हो चुका। अब ऐसे ही रहेगा, क्या इस का कोई उपाय नहीं है? मैं यह जानता हूं; यह अनुभव करता हूं कि संसार में अब मेरे लिये कुछ नहीं रहा। यदि मालती मुझे नहीं मिली तो जीना व्यर्थ है। जीवन सर्वस्व मालती का मुख क्या अब मैं नहीं देखूंगा? क्या एक वार भी उस से अब भेंट नहीं होगी? इस निराशा रूपी अन्धकार ही में क्या अब मेरा जीवन समाप्त होगा? क्या मेरे सुख सूर्य्य का अब उदय नहीं होगा? सब आशाओं का क्या यही शेष है? इस निदारुण दुश्चिन्ता से मेरा मन, प्राण तथा देह कैसा अवसन्न हो रहा है। जान पड़ता है कि मेरे अन्तःकरण में आत्मा की मृत्यु हो गयी। अब मैं सुख अनुभव नहीं कर सकता। क्या प्रकृति मालती को यह नहीं बता सकती कि मैं उसे प्राण से भी अधिक चाहता हूं। प्रकृति! मधुर प्रकृति! जड़ प्रकृति! क्या वाह्य शिक्षा तुझ से बढ़ गई?

समाज ने तुझे एकदम निर्बल कर दिया ? आज जो हो किन्तु मुझे पूर्ण आशा है कि एक दिन प्रकृति की विजय अवश्य होगी। एक दिन मालती को अङ्गीकार करना पड़ेगा कि वह मुझे प्यार करती है, मुझ पर आसक्त है। हाय! हाय! महात्मा के सम्मुख बैठ कर मैं क्या प्रलाप बकने लगा ? देखता हूं कि अब मेरा दुःख असह्य हो गया, अब मैं अपने को सम्हाल नहीं सकता। हाय देव! मेरी क्या दशा हो रही है ? मेरी अवस्था कैसी बिगड़ रही है ? अपने आन्तरिक भाव को किसी पर क्योंकर प्रकट करूं ? कोई कैसे समझेगा ? हाय! मालती! मालती!! मालती!!! हा! मनोहर मालती! ... ...!

आगे मैं कुछ कह नहीं सका। मेरा कण्ठ रुद्ध हो गया। आंखों से अविरल अश्रुधारा गिरने लगी। सच कहा है कि प्रबल मनोवेग से वाक्शक्ति निरुद्ध हो जाती है।

महात्मा ने स्नेहपूर्वक कहा कि "रोना अच्छा है। तुम्हें रोने को मैं निषेध नहीं कर सकता। आंसू मन की मलिनता को नाश करता है। किसी ने सच कहा है कि :—

"जिगर की आग बुझ जाती है। दो आंसू बहाने से॥"

रोने से आत्मा पवित्र होती है, हृदय में बल आता है, अन्तःकरण शुद्ध होता है, वियोगयन्त्रणा कम होती है। जो कभी रोदन नहीं करता वह मनुष्यों में अधम है। वह कभी विश्वास करने योग्य नहीं है। ठीक समझो कि संसार के सुखों को उस ने कभी स्वयम् अनुभव नहीं किया। कोई कोई ऐसे आत्मविजयी महात्मा हो सकते हैं जो वारि-बिन्दु-विहीन लोचन से गुरुतर मर्मान्तिक पीड़ा सह लें परन्तु यदि उन्हों ने कभी अकेले में भी एक बिन्दु अश्रुजल से पृथिवी को सिक्त न किया तो वे चित्तजयी श्रेष्ठ महात्मा कहे जा सकते हैं सही किन्तु वे प्रेमी वा प्रेमभाजन के पद को कदापि नहीं पा सकते और न कभी वे प्रेम के अधिकारी कहे जा सकते हैं। अतएव

जान रखो कि रोना बड़े काम की चीज़ है। इस से मनुष्य को बहुत कुछ लाभ पहुंचता है। इसी के सहारे मनुष्य देवत्व को प्राप्त होता है। किन्तु अब विचारो कि तुम्हारा कर्त्तव्य क्या है। मैं उचित समझता हूं कि एकबार जाकर तुम मालती से मिलो। ईश्वर से प्रार्थना करो कि वह तुम्हारी विपत्ति को हटावे। इस दुःख में वह तुम्हारी सहायता करे। मालती के हृदय में पहले ईश्वर की भक्ति को सञ्चालन करो। उसे पहले अपने योग्य बनाओ। चेष्टा करो कि वह रमणी में श्रेष्ठ हो—उस के रूप के अनुकूल उस में गुण आवें। तब उसे भी कहो कि तुम्हारे संग संयोग के लिये वह भी भगवान् से प्रार्थना करे। देखो, भविष्य क्या दिखाता है।

"तुम्हारी बातों से प्रतीति होती है कि मालती का हृदय सरल है और वह सदुपदेशों को ग्रहण कर सकती है। इसी से कहते हैं कि मालती से मिलो। उसे उत्तम उपदेश दो। उसे शुद्ध तथा गम्भीर प्रेम की शिक्षा दो। प्रेम-रहित मनुष्य मनुष्य नहीं है। जब ईश्वर ने सृष्टि की रचना का आरम्भ किया तब उन के विचार में यह बात आयी कि जब तक ऐसे चैतन्य जीवों की उत्पत्ति न हो कि जो प्रेम-पुलकित हृदय से उन की असीम कृपा के हेतु उन्हें धन्यवाद देने में समर्थ हों, तबतक यह वृहत् कार्य्य सम्पन्न नहीं होगा, सृष्टि की शोभा न होगी। सुन्दर असंख्य तारे जो आकाश में भ्रमण करते हैं, चन्द्र एवम् सूर्य्य जो अपनी जीवनप्रद किरणों को पृथिवी के अनन्त विभव पर डालते हैं और जिन की ज्योत्स्ना देख प्रकृति खिलखिला उठती है। फलप्रद पृथिवी जो ऋतुओं की आज्ञा सादर पालन करती और नाना प्रकार का दल फल फूल रूपी वस्त्राभूषणों को परिधान कर एवम् भांति भांति का रूप धारण कर प्रकृति का सौन्दर्य्य बढ़ाती है, स्वर्गीय ओसकण जो कृषिक्षेत्रों की उपज-शक्ति बढ़ाते हैं; पुष्पों को विकशित कर उन का मुँह धो उन्हें मंजुल तथा मनोहर बनाते हैं; अनन्त कमलदल जो तड़ागों में

खिलते हैं और जिन पर मलिन्द प्राण न्यौछावर करते हैं—इन सबों की शोभा असीम हैं सही किन्तु मनुष्यों की विमल तथा उज्ज्वल कान्ति से क्या इन की तुलना हो सकती है। प्रकृति का मधुर लावण्यमय सौन्दर्य्य कैसा ही हृदयहारी क्यों न हो, उच्च गिरिशिखर गम्भीर नदी तथा अतल सागर कैसी ही गौरवपूर्ण सुन्दरता एवम् अलौकिक कारीगरी के उज्ज्वल नमूना क्यों न हों किन्तु क्या ये अपने कर्त्ता की पुकार का प्रत्युत्तर दे सकते हैं? क्या परमात्मा की गम्भीर मोहिनी, मधुर प्रेम-भाषा को समझ सकते हैं? कदापि नहीं। जबतक मानवजाति की सृष्टि नहीं हुई, आत्मा का आविर्भाव संसार में नहीं हुआ; ब्रह्माण्ड में सार्थक भाषा बोलने की शक्ति नहीं आयी; तबतक पवित्र प्रेम का विकाश नहीं हुआ। जड़ पदार्थ अपने कर्त्ता के प्रेम में विह्वल हो आंखों से आंसू नहीं बहाते; पशु पक्षी भी अपने प्रेमाधार जन्मदाता के विरह में व्याकुल हो फूट फूट कर नहीं रोते; देवबाला, किन्नर, अप्सरा आदि की सृष्टि गुणगान के लिये हुई है, प्रेम के लिये नहीं। जिस के चलाये असंख्य तारागण गगन के शून्य मार्ग में परिभ्रमण तथा नृत्य करते हैं एवम् निरवलम्ब टंगे रहते हैं, मनुष्य को छोड़ कर उस अपरिमित बुद्धि को जानने की, पहिचानने की तथा अपनाने की किस ने कब चेष्टा की? मानव आत्मा उस अनन्त आत्मा का अंश है इसी से उसे जान सकता है, पहचान सकता है और जान जाने पर, पहचान लेने पर उस के संग संयोग के लिये व्यग्र होता है। सांसारिक वासना में लिपट कर जब तक मनुष्य अपने को कलुषित नहीं करता और आत्मा का गला नहीं घोंटता ईश्वरीय ज्योति उस के हृदय को प्रकाशित किये रहती है। जब पाप में फंस कर मनुष्य अपने को भुला देता है, उस की आत्मा की शक्ति क्षीण हो जाती है और उस में अप्रेम, निठुरता, कृतघ्नता राज्य करने लगती है। आत्मा एक उज्ज्वल रत्न है किन्तु पाप रूपी कीच में पड़ जाने के कारण

उस का तेज तथा प्रकाश नष्ट हो जाता है। निस्सन्देह मानव-हृदय की सृष्टि प्रेम ही के लिये हुई, प्रेम ही मानवजीवन का उद्देश्य एवम् कर्त्तव्य है; प्रेम ही के उद्रेक से इस की रचना आरम्भ हुई अतएव प्रेम ही में अपना प्राण अर्पण कर इसे उचित है कि अपने जीवन का अन्त करे।

तुम्हारे कहने से विदित होता है कि सर्वगुण-भूषिता होने पर भी मालती के हृदय नगर में प्रेम का राज्य नहीं है, उस के हृदय वाटिका में प्रेमबीज अङ्कुरित नहीं हुआ, और वह प्रेम की भाषा नहीं समझती है। तुम जाकर उसे प्रेम की शिक्षा दो, उस के अन्तःकरण में प्रगाढ़ तथा शुद्ध प्रेम का बीज आरोपित करो। किन्तु सावधान रहना उस प्रेम के साथ अधिक छेड़ छाड़ न करना, नहीं तो धोखा होगा। कितने दुष्ट बालकों का स्वभाव ऐसा होता है कि मिट्टी में बीज जैसे डालते हैं वैसे ही खोद कर देखते हैं कि उस में अंकुर निकला वा नहीं, पत्ते आते अथवा नहीं—जड़ पल्लव हुए ही बिना वे फल फूल तोड़ने की आकांक्षा करते हैं। इसीलिये तुम्हें भी सावधान कर देता हूं कि कहीं प्रेमबीज को रोपते ही तुम भी फल फूल की आशा न करने लगना। क्योंकि :—

" लतायां पूर्व्व लूनायां कुसुमस्यागमः कुतः "

यदि तुम्हारे द्वारा वह अपने कर्त्ता को पहिचान ले तो उस का जन्म सार्थक हो और तुम भी पुण्य के भागी बनो। क्यों ? मुँह पर उदासी की घटा क्यों छा गयी ? देखो, इस विषय में मुझे जो कुछ कहना था तुम्हें कह सुनाया। अन्तिम उपदेश मेरा यही है कि स्वार्थ परित्याग कर मालती को प्रेम की राह पर ले आओ। इसी में तुम्हारा कल्याण है।

मैं०—आप की जो आज्ञा है वही करूंगा। मेरी बुद्धि ठिकाने नहीं है। अपनी क्या राय दूँ। किन्तु इतना जान पड़ता है कि

मालती के निकट जाने से मेरा दुःख कुछ दूर नहीं होगा, वरन मैं अधिक दुःखी हो जाऊंगा।

महा०—तुम्हारा दुःख दूर करने का मैं उपाय नहीं बताता। प्रेम का उपदेश पाने से मालती सुखी होगी। तुम्हें भी मैं उच्चकक्षा की शिक्षा देना चाहता हूं। मालती के सुख से तुम सुखी होना सीखो। दूसरे के सुख से सुखी होना सीख कर मनुष्य देवता हो जाता है। उस के मन से स्वार्थपरता जाती रहती है। तुम मालती को प्यार करते हो इसी से कहता हूँ कि उसे सुखी करने का यत्न करो। उत्तम पुरुष यदि चाहे तो उत्तम शिक्षा दे कर साधारण स्त्री को भी उत्तम राह पर ला सकता है और उस के चरित्र को अनुकरणीय बना सकता है। परोपकार ही परम धर्म है।

मैं०—अच्छा अब मैं मालती की ओर चलता हूँ। आप आशीर्वाद करें कि मेरा मनोरथ और परिश्रम सफल हो।
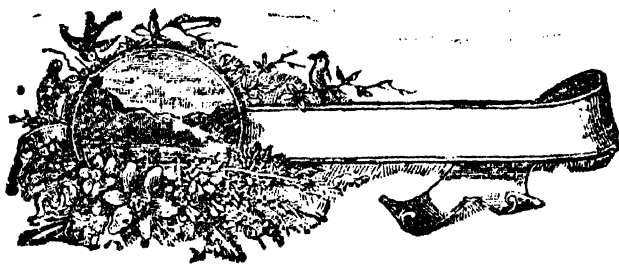
षष्ठ कल्पना।

मिलन।

"Thy love has taught my heart to feel
Those soothing thoughts of heavenly love,
Which e'er the sainted spirits steal
When list'ning to the sphere above."

Moore.

आज शरद् पूनो है। आज की रात वही रात है जिस रात में आनन्दकन्द व्रजचन्द ने श्री वृन्दावन में तरलतरङ्गधारिणी यमुनातट पर श्रीमती राधिका महारानी तथा अन्य गोपियों के संग रास रचा था। अनन्त नील विमल आकाश में कमल-धवल किरणराशि सुधांशु विराज रहे हैं। उन की शोभा आज अकथनीय है। अनिमेषलोचन से चकोर उन की ओर देख रहा है। सुखद समीर सुगन्ध के बोझ से लदा हुआ मन्द मन्द डोल रहा है। जिधर आंखें जाती हैं ज्ञात होता है कि चन्द्रिका का सुथरा बिछावन चारों ओर बिछा हुआ है।

नदीसकत पर कौमुदी हंस रही है। कहीं कहीं आकाश में तारे भी दीख पड़ते हैं। कुश काश की सुगन्धि चारों ओर फैल रही है। चातक भी रह रह कर अलाप उठाता है। नद नाला तथा तड़ाग का जल निर्मल हो रहा है। आज की रात सब मन्दिरों में बड़े समारोह से श्री राधाकृष्ण की शरद् झांकी हो रही है। श्वेत वसन भूषण धारण किये जगमगाते हुए आसन पर युगल जोड़ी विराजमान हैं। श्वेत पुष्पों की ढेरी चारों ओर लगी हुई है। आज की शोभा अनिर्वचनीय है।

आज महात्मा से विलग हुए मुझे चार मास हुए। दो एक दिन से मैं मालती के घर हूं। उसे बहुत कुछ समझा बुझा कर मैं ने भक्ति का पुनीत उपदेश दिया है। वह भगवान् में अब पूरा विश्वास करने लगी है। उज्ज्वल रस का अवलम्बन कर वह श्रीकृष्ण एवम् श्रीमती राधारानी की पूजा भी करने लगी है। उस के पवित्र कोमल हृदय में श्रद्धा भक्ति ने सहज ही में अपना घर कर लिया है। पर हां, अभी तक मुझे यह नहीं ज्ञात हुआ कि वह मुझे चाहती है वा नहीं।

कल रात्रि समय मेरे ध्यान में यह बात आई कि मालती मुझे क्यों चाहेगी? प्राय: स्त्रियां पुरुषों के रूप तथा गुण पर मुग्ध होती हैं। इन दोनों में मुझ में क्या है कि वह अपने प्राणों को, स्नेह को, यौवन, रूप, गुण तथा सोहाग को मेरे ऊपर न्योछावर करेगी। ऐसा ध्यान आते ही मेरा मन बहुत लज्जित और दुःखित हुआ। मैं जानता हूं कि मैं रूपवान् नहीं हूं। कोई कोई मुझे कुरूप भी कह सकते हैं। किन्तु अपने आप को कोई कुरूप नहींसमझता। यदि कोई दूसरा व्यक्ति मेरे ऐसा होता तो उसे सहज ही में मैं कुरूप कह दे सकता था। रूप की तो यह दशा। इधर गुण की ओर ध्यान देने से ज्ञात होता है कि साधारण लोगों से विशेषगुण मुझ में कोई नहीं है। रहा ऐश्वर्य्य एवम् बल, सो इन अलङ्कारों से भी मैं

भूषित नहीं हूं। मन से मैं ने पूछा "तब फिर क्यों तू चाहता है कि मालती तुझे अपनावे ?" उस ने कहा कि रूप, यौवन और ऐश्वर्य्य को देख कर कोई किसी पर मुग्ध नहीं होता। मनुष्य प्रेम ही के द्वारा दूसरे के मन को अपने हाथों में करता है। विचारो तो सही, यदि हमलोग रूप को देख कर मोहित होते तो क्या सूर्य्य और चन्द्र से कोई अधिक सुन्दर है, किसी में अधिक तेज, प्रताप एवम् उज्ज्वलता है ? प्रभात समय सुन्दर बादलोंसे घिरे हुए भास्कर भगवान् के रूप के संग किस के रूप को समता हो सकती है ? शरद् चन्द्र के संग किस चन्द्रवदनी की तुलना हो सकती है ? तब हमलोग इन्हीं के रूप पर मोहित हो कर इन्हीं के साथ प्रीति क्यों नहीं करते ? कारण यह है कि ये जड़ हैं, ये प्रेम का प्रत्युत्तर नहीं दे सकते—प्रेम करने की इन में सामर्थ्य नहीं है। इसी प्रकार यौवन की बात लो। वसन्त सदा युवा रहता है। प्रति वर्ष अपनी तरुणाई की तरङ्गों से उत्थलित हमलोगों के निकट वह अठलाता आता है। रूप की भी उस में कसर नहीं है—फूल फल की छटा ही की ओर एक वार ध्यान दो, सजीवता के सब चिन्ह उस में पाये जाते हैं—समीर की सनसनाहट, कोकिलों का अलाप, भ्रमरों का गुञ्जार, क्या किसी नायिका के मिष्टभाषण से कम मनोहर है। तब फिर वसन्त ही के संग हम लोग प्रणय क्यों नहीं करते ?—इस में भी प्रेम करने की शक्ति नहीं है—इस के शून्य हृदय पर प्रेम का प्रभाव नहीं पड़ता। इसी प्रकार ऐश्वर्य्य का उदाहरण लो। भला, रत्नाकर से अधिक सम्पत्ति किस के पास है ? सागर से प्रबल बलशाली कौन है ? इस से अधिक विस्तृत राज्य किस का है ? तब हम लोग इसी महासागर के संग नेह क्यों नहीं लगाते ? सब प्रकार विविध रत्नों से पूर्ण और आभूषित रहने पर भी इस के निकट दया, सहानुभूति, प्रेम आदि अमूल्यरत्न नहीं हैं। इसी से मनुष्य केवल उन

जीवों के साथ प्रेम करना चाहता है जो इस के प्रेम का प्रत्युत्तर देने में समर्थ हैं।

"इस के अतिरिक्त स्वरूप वा कुरूप तो कोई स्वतन्त्रवस्तु नहीं है। क्या संसार में ऐसा देखने में नहीं आता कि बहुतेरी रूपवती स्त्रियां भी एक कुरूप पुरुष को प्राणों से अधिक प्यार करती हैं? इस का भेद यह है कि मनुष्य अपने ही आन्तरिक विचार, भाव तथा आदर्श को बाहरी जगत् में देखता है। वह रमणी अपने मानसिक आदर्शपुरुष के चित्र को बाहर निकालती है और उसे उस विशेष पुरुष पर डाल कर उस की पूजा करने लगती है। अपनी ही रुचि के अनुसार हम लोग दूसरे को बनाते हैं। अतएव जिसे मैं कुरूप समझता हूं, उसे दूसरा रूपवान् समझ सकता है। अस्तु रूप वा कुरूप पर प्रेम का होना निर्भर नहीं है। प्रेम दोष नहीं देखता, उसे गुण ही गुण दीख पड़ता है। जो मेरे हृदयतंत्री से प्रेम का सुर निकलता है उस के साथ मालती के हृदयतंत्री का सुर क्यों नहीं मिलेगा? यह प्रबल सुर जगत् को अपने में लीन क्यों नहीं करलेगा? और मालती प्रेम की सहायता से मुझे रूप तथा गुण से विभूषित क्यों न समझने लगेगी? मेरे हृदय की प्रेमनदी प्रबलवेग से मालती की ओर बह रही है। मालती को मेरे समान चाहनेवाला दूसरा कौन और कहां मिलेगा? मेरे ऐसा दूसरा कौन उसे प्यार करेगा? दूसरा कौन उस का इतना आदर करेगा? उस के लिये मेरे सदृश कौन प्राणों को हथेली पर लिये फिरेगा? अपने हृदयमन्दिर में उस की मोहिनी प्रतिमा स्थापन कर कौन ऐसी सादर सप्रेम पूजा करेगा? वह अमूल्य धन है। प्राण तथा प्रेम दे कर मैं उसे क्रय करूंगा।"

मन की जीत हुई, मैं हार गया। मेरे मन में यह बात भी आयी कि मालती मुझे प्यार करती है; किन्तु लज्जावश प्रकट मुंह

खोल कर नहीं कहती। सम्भव नहीं कि प्रणय का प्रभाव नहीं पड़े, क्योंकि :—

" तासीर इश्क़ होती है दोनों तरफ़ ज़रूर।
मुमकिन नहीं कि दर्द यहां हो वहां न हो॥ "

उस का स्वभाव सरल, शुद्ध तथा पवित्र है, उस का चित्त कोमल है, हृदय स्वच्छ है, अतएव मेरे प्रेम का प्रभाव उस पर अवश्य पड़ा है। किन्तु लज्जाशीला होने के कारण वह जिह्वा पर यह बात नहीं लाती। मेरे संग बातें करते जो उस के कपोलों पर लालिमा दौड़ जाती है, वह क्या इस बात की साक्षी नहीं देती कि वह मेरे मनोगत भावों को समझती है?

इन्हीं सब बातों को मैं सोच रहा था कि दासी ने आकर कहा " मालती जी आप को जलपान करने के लिये बुलाती हैं। "

मैं उठ कर उस के निकट गया। मुझे सामने देख वह सहम सी गयी; उस के चेहरे पर रङ्ग दौड़ गया और पुतली सी जहां की तहां वह खड़ी रह गयी। मैं एक बिछावन पर जा बैठा। क्षण भर मालती को नख से शीश पर्य्यन्त निरीक्षण कर मैं ने कहा "मालती! अच्छी तो हो न?"

मा०—देखते तो हई हैं। कहिये आप क्या करते थे? यहां आने से किसी काम में कोई बाधा तो नहीं पड़ा?

मैं०—मुझे तुम आप क्यों कहती हो?

मा०—क्यों? तब क्या कहूं? अपने से बड़े को तो आप कहा जाता है।

मैं०—तुम से मैं बड़े छोटे का नाता जोड़ना नहीं चाहता। मुझे तुम पराया समझ कर " आप " कहती हो। हाय! मैं तुम से इतना विनय करता हूं, किन्तु तुम मुझ पर तनिक भी दया नहीं दिखाती।

मा०—मैं यह सब नहीं जानती। दया दिखाना क्या ? क्या आप "गाय ब्राह्मन" हैं कि आप पर दया दिखायी जाय ?

मैं०—मेरी बातों को ठट्ठे में मत उड़ाओ। तुम सब जानती हो। अपने पत्रों में मैं ने तुम्हें क्या नहीं लिखा ? क्या मैं ने तुम्हें अकपट भाव से बारम्बार नहीं समझाया कि मेरा जीवन मरण बस अब तुम्हारे ही हाथों में है। यदि तुम मुझे नहीं अपनाओगी तो मैं किसी काम का न रहूंगा।

मा०—मुझे आप क्या करने को कहते हैं ?

मैं०—अब अधिक न सताओ। जान कर अनजान न बनो। मैं तुम्हारा प्रेम चाहता हूं। प्रेम ही का भिखारी हूं। एक बार प्रेम भरी चितवन से मेरी ओर देखो, नहीं तो मैं पागल हो जाऊंगा। प्यारी मालती ! हृदय-देवी ! मेरी जीवनसर्वस्व कहो, कहो, कृपा कर कहो—मेरे इस कर्ममय, उत्साहमय, उमङ्गमय, आशामय जीवन को इस प्रकार दग्ध करना क्या तुम्हें उचित है ? मुझे चिर दिन लों इस प्रकार मर्म्मपीड़ा से पीड़ित करना क्या तुम्हारा धर्म है ? सुन्दरी ! इस संसार में क्या प्रेम का पुरस्कार नहीं है ? क्या प्रणय का प्रतिदान नहीं है ? जीवन-सर्वस्व-दान का कोई मूल्य नहीं है ?

"कविता तो अच्छी करते हो।" कहती हुई मालती ने मुसकुरा कर मेरी ओर वक्र दृष्टि से देखा। मुझे ज्ञात हुआ कि भावद्वारा मालती ने मुझे अपना मनोगत भाव जताया। उस के मनोहर कटाक्ष को मैं ने उस की स्वीकृति समझी। मेरा वर्षों का दुःख भूल गया। ज्ञात हुआ कि संसार ही में स्वर्गसुख है। मैं ने कहा कोई बात अब छिपी नहीं रही। मैं जान गया कि तुम मुझे प्यार करती हो।

शीश झुका कर मालती बोली "अब क्यों सता रहे हैं। यदि मेरी इच्छा के विरुद्ध मेरी आंखों ने कोई काम कर दिया तो अब उस में मेरा वश क्या है ? जब बात खुल गयी तब अब छिपाने की

चेष्टा व्यर्थ है। आप ने मेरे संयम को नहीं रहने दिया। संयमी का संयम आज भङ्ग हुआ। इसी से आप से मैं इतना डरती थी। बारूद के भीतर आग नहीं छिप सकी। बुद्धि के अंकुश को मदन गयन्द ने नहीं माना। लोचन मीन ने लज्जा के जाल को तोड़ दिया। मैं आप को भली भांति पहचानती थी। उसी दिन से पहचानती थी, जिस दिन आप ने मुझे प्रथम बार देखा था। किन्तु मेरी पूर्ण इच्छा थी, मेरा दृढ़ संकल्प था कि आप को इस पथ पर अग्रसर होने का साहस एवम् उत्साह मैं नहीं दूंगी। आप मुझे प्यार करते हैं, यह देख कर मुझे सुख तो होता था, किन्तु मेरी इच्छा निस्सन्देह यही थी कि आप को इस का प्रत्यक्ष प्रत्युत्तर न दूं। जब आज बात खुल गयी तब छिपा ही कर क्या होगा? सुन लीजिये स्त्रियों को सब से बढ़ कर प्यारा प्रेम होता है। वे प्रेम ही की भूखी होती हैं। जो उन का आदर करता है, जो उन से स्नेह करता है, वे उन्हें सुखी करने की सदा चेष्टा करती हैं। जो उन्हें अपनी समझता है, उस के लिये वे प्राण देने को उद्यत रहती हैं। जो उन का प्रेमी है उन के चरणों में अपने समग्र सुखशान्ति वरन् जीवन तक को उपहार देने को प्रस्तुत रहती हैं। स्त्रियों से बढ़ कर दूसरा कोई सहज में अपने चाहनेवाले को कदापि नहीं पहचान सकता। किन्तु वे साहस तथा लज्जा के सहारे अपना मनोगत भाव भली भांति छिपाने में समर्थ होती हैं। मैं जानती थी कि हमलोगों का संयोग असम्भव है, इसी से मैं इस बात को मुँह पर नहीं लाती थी। जिन भावों को आज मैं कई वर्षों से छिपा कर रख सकी थी— जिस का भेद किसी को मिल नहीं सका था, उन्हें खोल कर आज तुम्हारे सामने मुझे कहना और दिखलाना पड़ता है। मेरी दुर्बलता क्षमा करो।

मैं०—मालती! मालती! मैं नहीं जानता था कि तुम्हारा हृदय ऐसा पवित्र है। मेरी ओर तुम्हारी ऐसी प्रीति थी, यह भी मैं नहीं

जानता था। हाय! क्योंकर जानता? बाहर हंसी भीतर विषाद, आनन पर आनन्द की आभा अन्तःकरण में विरह की यंत्रणा; मुंह से परिहास की वाणी, मन में मर्म्मान्तिक आह; मैं क्या जानता था प्रज्वलित ज्वालामुखी के अङ्गों को सुखद सुन्दर हरीभरी लहलहाती अंगूर की लता में ढांक रखा है। मैं क्या जानता था कि मुखार-विन्द के मुस्कुराहट में हृदय की असाध्य वेदना छिपी हुई है। मैं नहीं समझता था कि आलोक तथा छाया का इस प्रकार तुम में विचित्र संयोग है। मेरे लिये तुम्हें इतना कष्ट हुआ। हाय! यदि मैं जानता तो प्राणों को देकर तुम्हें सुखी करता।

मा०—व्यर्थ को क्या बकते हो। यह सब मुंहदेखी बातें हैं। मेरे लिये तुम क्या मरोगे। दिन आवेगा देखा जायगा। किन्तु आज तुम ने मेरे संयम को भङ्ग कर अच्छा नहीं किया। विरहाग्नि मन्द मन्द सुलग रही थी तुम ने अपनी कातरोक्ति रूपी वायु से फूंक कर उसे एकदम धधका दिया। विचारो तो क्या तुम्हारे साथ मेरा संयोग हो सकता है? क्या बहिन के रहते मैं तुम्हारे काम की हो सकती हूँ? बस! बस! जो तुम कहना चाहते हो उसे मैं ने बिना कहे ही समझ लिया। चाहे तुम राजी हो जाव, चाहे मैं तुम्हारी आज्ञा पालन करूं, किन्तु क्या मा इसे पसन्द करेंगी? इस में क्या उन की अनुमति हो सकती है? ये बातें मैं पहले ही से जानती थी। तुम्हें ज्ञात नहीं होगा, परन्तु इन बातों को जो हमलोग विचारती हैं पुरुषों की बुद्धि में कदापि नहीं आती। यही देखो न वर्षों से मैं ने अपना भाव गुप्त रखा, यहां तक कि तुम पर भी विदित होने नहीं दिया। आज तक कोई स्वप्न में भी नहीं जान सका कि मेरे हृदय पर प्रेम ने अपना अधिकार जमा लिया है। देखो, स्त्रियां कितना सम्हाल सकती हैं? अपने को कितना रोक सकती हैं? मैंने भर-पूर आज तक कभी तुम्हारी ओर देखने का साहस नहीं किया—दर्शन के सुख से भी अपने को वञ्चित रखा। किन्तु तनिक भी परि-

काम की ओर ध्यान नहीं देकर तुम ने एकादम मेरे हृदय के बांध को तोड़ दिया। अब तो मुझे कहते कुछ नहीं बनता, क्या कहूं? परन्तु मेरी आत्मा स्पष्ट कह रही है कि इस का परिणाम अच्छा नहीं होगा।

मैं०—धन्य तुम्हारा प्रेम है! तुम्हारा प्रेम कैसा शुद्ध एवम् मनोहर है! यह तुम्हारा प्रेम अनन्त, असीम एवम् गम्भीर है; जो इतने दिनों तक गुप्त रूप से तुम्हारे हृदय में वर्त्तमान रहा, दिनोंदिन उन्नति के शिखर की ओर बढ़ता गया और जिस की कान्ति नित्य प्रति अधिक उज्ज्वल होती गयी।

मा०—यह कुछ नहीं है। तुम मेरा मनोगत भाव कदापि अनुभव नहीं कर सकते। तुम्हारे अनुमान में भी वह नहीं आ सकता। जब प्रकृति अनुचित रीति से पराजित की जाती है तब विवेक भी अपने स्वाभाविक स्थान पर स्थिर नहीं रहता। नित्य के व्यवहार का अधिकांश तो स्वाभाविक धर्म है, उन में तो परिवर्तन होता नहीं; किन्तु मनोगत भावों को प्रकटित करने का अवसर एवम् स्थल नहीं मिलता। किसी प्रकार नित्य के कर्म तो निबहते जाते हैं परन्तु प्रकृत-जीवन की पुष्टि के लिये सहारा नहीं मिलता, प्रेमप्रवाह के प्रवाहित होने की राह नहीं मिलती—मन की व्यथा मन ही में छिपी रह जाती है। मेरी कोई ऐसी सहेली भी नहीं जिस से कुछ कह सुन कर अपने मन की लहर बुझाऊं। किसी से विशेष आलाप नहीं रहने के कारण मुझे अपनी चिन्ता में आप ही लीन रहना पड़ता है। जब कोई दूसरा नहीं मिलता तब मन आप ही आप बातें करता है। किन्तु इन दोनों में अन्तर यही है कि दूसरे से कहने सुनने पर दुःख का बोझ हलका होता है और मन ही मन चिन्ता करने से दुःख का बोझ अधिक होता जाता है। विरहबोझ से मेरा कलेजा चूर हो रहा था। और अपने हृदय तथा मन से दूर भाग कर मुझे आशादेवी की शरण में विश्राम लेना पड़ता था।

परन्तु आशा की खोज में, शान्ति के अनुसन्धान में मुझे मृत्युलोक छोड़ कर स्वर्ग की ओर दौड़ना पड़ता है। मैं भली भांति जानती हूं कि मुझे इस जीवन में अब सुख नहीं है। कदाचित् तुम यह कहो कि तुम्हारे संयोग एवम् सहवास से तो मैं इस समय सुखी हूं। किन्तु यथार्थ बात ऐसी नहीं है—यह तुम्हारा भ्रम है, भूल है—इस आनन्द को सेमर का फूल जानो, मन कीर को अवश्य पछताना पड़ेगा। वर्त्तमान को धोखे की टट्टी मानो, भविष्य में धोखा अवश्य होगा। इस मरीचिका के मोहिनी रूप पर मैं नहीं भूल सकती। वाह्यजगत् से सम्बन्ध तोड़े आज मुझे वर्ष दिन के लगभग बीत गया। मानसिक दुःख एवम् चिन्ता की विशेषता ने अपने प्रभाव को बाहर भी डाल कर मेरे लिये संसारी पदार्थों में चित्ताकर्षिणी शक्ति नहीं रहने दी। निश्चय जान रखो, मुझ में अनुभवशक्ति अब नहीं रह गयी। असह्य दुःख भोगने के कारण मेरे प्रकृत-जीवन की मृत्यु हो गयी। आज तुम ने मेरे हृदयस्रोत का मुँह फेर दिया। भय साहस, आशा निराशा, हर्ष विषाद, निरुत्साह उत्साह, आनन्द एवम् शोक, जीने की लालसा तथा मृत्यु की इच्छा—सबों ने एक साथ हृदय पर अधिकार जमाया है। किन्तु इन के बीच कुछ दिनों से प्रेम भी अपनी मोहिनी मूर्त्ति दिखा जाता है। अब मुझे ऐसा जान पड़ता है कि थोड़े दिनों में प्रेम सब को पराजित कर देगा।

"हाय! आज मैं पागल तो न हो गयी हूं। घंटों से बक रही हूं। क्या लज्जा ने भी मेरा साथ छोड़ दिया? मुझे जान पड़ता है कि आज तक कभी इतनी देर तक मैं किसी के सामने बकती नहीं थी। यह भी नहीं याद आती कि क्या क्या कह रही हूं। तुम्हें ऐसा उचित नहीं था। तुम ने मेरे हृदय में ऐसा रोग दिया जिस की औषधि तुम्हारे पास भी नहीं है। आज का दिन क्या लेकर उदय हुआ था। मन! तू मेरे हाथों में नहीं है, जो चाहे वही सोच, कोई मना करनेवाला नहीं है।

मैं०—तब क्या, मेरे प्रणय में इतनी शक्ति नहीं है कि तुम्हें सुखी कर सके ? क्या मैं तुम्हारा दुःख दूर नहीं कर सका ? क्या संयोग में भी तुम वियोग ही की यंत्रणा अनुभव कर रही हो ? प्रेम की संजीवनीशक्ति क्या जाती रही ? क्या मैं तुम्हारे सरल पवित्र हृदय को आनन्द नहीं दे सका ? हाय ! मैं कैसा अभागा हूं ! तुम्हारी बातों से विदित होता है कि मेरे कारण तुम्हें बहुत दुःख उठाना पड़ा। ज्ञात होता है कि तुम्हारी लहलहाती आशा लता पर निरानन्द की बिजली टूट पड़ी। तब मेरे ही लिये तुम दुःख भोगती हो। तुम्हारा उपासक ही तुम्हारा घातक हुआ। तुम्हें सुखी करने के लिये जो प्राण अर्पण करने पर बद्धकटि है, उसी के द्वारा तुम्हें दुःख भोगना पड़ा, उसी की प्रेरणा से तुम्हें विपत्ति झेलनी पड़ी। मैं क्या कहूं ? कुछ कहते बन नहीं आता। देखता हूं कि मुझे दुःख ही देने में तुम्हें अधिक आनन्द मिलता है। इस संयोग की घड़ी को भी तुम ने वियोग ही का स्वाद चखाया। कितना साहस कर मैं ने अपने मन के भाव को तुम्हारे सम्मुख प्रकट किया—तुम्हें अपने प्राणों का उपहार दिया—किन्तु तुम ने आज भी प्रेमभरी आशापूर्ण वचनामृत का छींटा दे मेरे मृतप्राय प्राण में बल का संचार नहीं किया। अब कहने में क्या भय है ? तुम स्पष्ट सुन लो कि जिस प्रकार से होगा मैं तुम्हें अपनाऊंगा। तुम्हारी बहिन वा माता कोई इस में बाधा नहीं दे सकती।

मा०—हैं ! हैं ! यह क्या कहा ? क्या तुम बल का प्रयोग करोगे? जान लो मैं स्वतन्त्र नहीं हूं। एक तो अबला नारी-जाति तिस पर मैं——' मानो पागल को वारुणी पिलाई गयी।

मैं०—नहीं ! नहीं ! ऐसा न समझो ! जिस ने तुम्हें देखा है, यह माधुर्य्यमयी-रूपराशि ने जिस के हृदय में घर किया है, जो तुम्हें विधाता की शुभ समय-जात असाधारण सृष्टि समझता है, तुम्हारी पुण्यमय, सर्वगुणाधार मूर्त्ति जिस के अन्तःकरण में अनुपमेय

रूप से प्रतिष्ठित है वह क्या कभी पाप में प्रमत्त हो सकता है ? मेरी उपर्युक्त बातों को सुन कर यह न समझो कि मुझ में आत्मस्मरण की शक्ति नहीं है। जो प्रेम मेरे हृदय में राज्य करता है, उस में स्वार्थपरता मिश्रित नहीं है। मैं कोई काम ऐसा कदापि नहीं कर सकता जिस में तुम्हारी किञ्चित् भी हानि हो। सदा सौमावद्ध बर्त्ताव तुम्हारे साथ मैं करूंगा। अपने प्रेम-प्रतिमा को हस्तगत करने का कोई ऐसा यत्न नहीं कर सकता जो किसी प्रकार दूषणीय हो। मैं तुम्हें अपनी कहना चाहता हूं सही, किन्तु ऐसा करने में मैं तुम्हारे वा अपने ललाट पर कलङ्क की टीका नहीं लगा सकता। अपने सुख से तुम्हारे सुख को कहीं अधिक समझने की चेष्टा करने में मैं अपना पुरुषार्थ समझूंगा और अपने इसी व्यवहार द्वारा तुम्हें अपने प्रेम का परिचय दिया करूंगा। तुम मेरी किसी बात वा काम में अभद्रता वा त्रुटि नहीं पाओगी। इस राह में अनेक विघ्न तो अवश्य हैं किन्तु मुझे आशा होती है कि यदि भगवान् सानुकूल हों और हमलोगों की प्रार्थना स्वीकृत हो तो हमलोगों में चिरसंयोग अवश्य होगा। तुम नारी-रत्न हो, तुम्हें मैं केवल अपना कहना चाहता हूं। इन्द्रिय सुख के लिये नहीं, कलुषित वासना की तृप्ति के लिये नहीं; नित्य के सहवास के लिये नहीं; संसार-धर्मपालन के लिये नहीं। तुम्हारा मैं आदर करूंगा, तुम्हारा अङ्ग स्पर्श न करूंगा, तुम्हारे संग एक शय्या पर शयन तक न करूंगा। मैं केवल यही चाहता हूं कि तुम्हें अपनाऊं। तुम्हें अपनी ही कहने में मुझे सुख है। मैं यही चाहता हूं कि मेरा नयन चकोर सदा तुम्हारे मुखमयङ्क को आलोकन किया करे। मेरा मन तुम्हारी सर्वदा पूजा किया करे। तुम मेरे भाव को समझ सकती हो इसी से कहता हूं। सुनो, दुःख से अनुभवशक्ति तीव्र होती है। हृदय को द्रवीभूत बना कर दुःख अन्तःकरण को शुद्ध करता है। दुःखी मनुष्य भगवान् का शरणापन्न होकर अपने दुःख को भूलना चाहता है। जो दूसरे को

सहायता लेना चाहता है वह दूसरों के संग सहानुभूति भी दिखाता है, और दूसरे के दुःख से दुःखी भी होने लगता है। इस अवस्था को प्राप्त करने पर मनुष्यजीवन का उद्देश्य सिद्ध हो जाता है। सहानुभूति के बन्धन में जगत् बंधा हुआ है, प्रेम ही जगत् का प्रधान नियम है। बड़े लोग अपने स्वार्थ के लिये कदापि दुःखी नहीं होते। अपने दुःख के द्वारा पराये दुःख को अनुभव करने की शक्ति बढ़ती है। संसार के दुःख से अधिक सताये जाने पर प्रायः मनुष्य विरक्त होकर संसारी सुखों का ध्यान छोड़ देता है। अतएव धर्म की ओर उस की प्रवृत्ति हो जाती है। जो संसार में सर्वदा सुख ही भोगा करते हैं उन का हृदय शून्य हो जाता है और मस्तिष्क तथा मन गूढ़ बातों के समझने तथा विचारने में असमर्थ हो जाता है। फिर वे दूसरे का दुःख क्या समझेंगे?

मा०—सहानुभूति सीखने के लिये, परहितव्रत साधन के लिये, आत्मविसर्ज्जन के अनुशीलन के लिये, हमलोगों को दुःख, विपत्ति, यंत्रणा एवम् कष्ट की क्यों आवश्यकता होती है? इन के साहाय्य बिना हम लोगों को इस बात की क्यों शिक्षा नहीं मिलती कि संसार में मेरे अतिरिक्त दूसरा भी है जिस का मैं अपना हूं और जो मेरा है और जिसे सुखी करना मेरा धर्म है। क्या दूसरे के आनन्द से मनुष्य का मन विरक्त वा उदासीन रहता है? अथवा मानव-अनुभव-शक्ति के जगाने के लिये अन्तःकरण के आर्त्तनाद की ही आवश्यकता है?

मैं०—ठीक है, संयोग के दिनों में हमलोग मित्रों का उतना आदर नहीं करते जितना उस के वियोग में झंखते हैं। उसे पाकर उतना नहीं हंसते जितना उसे बिदा करते समय रोते हैं। जब मित्रों में वियोग होने लगता है तब दोनों की हृदय तंत्री बज उठती है। अतएव जिस में प्रेम की मात्रा जितनी अधिक होती है उसे उतनी ही अधिक यंत्रणा सहनी पड़ती है। यही कारण है कि वियोग दुःख

सहे बिना कोई संयोग के सुख का स्वाद ठीक अनुभव नहीं कर सकता। किन्तु इस से क्या कोई यह चाहता है कि उस में अनुभव शक्ति नहीं रहे? नहीं! कदापि नहीं! क्या तुम नहीं जानती कि विपत्ति, दुःख तथा यंत्रणा सहनी उतना दुःखद नहीं है, जितना जानने, बूझने तथा अनुभव करने से असमर्थ होना केवल दुर्बल मनुष्य विपत्ति का सामना करने और दुःख को झेलने से डरते हैं। देखो, मरकर मनुष्य वर्त्तमान दुःखों से दूर भाग सकता है; किन्तु प्राणों के साथ ही साथ सुख भोगने की शक्ति भी जाती रहती है; फिर मानव-जन्म वृथा हो जाता है। यदि दुःख भोगने का हमलोग थोड़ा भी अभ्यास करें तो फिर इसी जीवन में अनन्त सुख भोग सकते हैं। रहस्य-पूर्ण प्रेम का बन्धन आंखों से छिपा रहता है। किन्तु सब सद्‌गुणों का मूल बीज वही है। प्रेम ही में हमलोगों की सृष्टि हुई थी और प्रेम ही हम लोगों का उद्देश्य एवम् कर्त्तव्य है। आज तुम्हारी बातें सुन मुझे बहुत सन्तोष हुआ। अभी तक मैं जानता था कि प्रेम-वारि से तुम्हारा हृदय-घट शून्य है। तुम्हारी हृदय-वाटिका में प्रणय-कुसुम विकसित नहीं हुआ है। तुम क्षुद्र-बुद्धियों सी अपनी ही आप में मग्न रहती हो। किन्तु आज मेरे भ्रम का नाश हुआ, आज मुझे ज्ञात हुआ कि तुम प्रेम एवम् करुणा की मूर्त्ति हो। हा! करुणे! मुझ पर भी करुणा करो।

मा०—तुम जितना कह रहे हो मेरी अल्प बुद्धि में उतना नहीं अंटता। किन्तु यह बात अवश्य समझती हूं कि मैं बहुत दुःखी हूं। भगवान् न करें संसार में कोई इतना दुःखी हो। आज मेरे मन में क्या क्या भाव उदय हो रहे हैं मैं विवरण नहीं कर सकती। परन्तु इतना अवश्य कहूंगी कि, आज से तुम्हें बहुत सावधानी से चलना होगा। तुम जानते हो कि मेरे विवाह के लिये मा अब बहुत व्यग्र हो रही हैं। आज तुम से कहती हूं कि यदि मेरा विवाह किसी दूसरे के साथ हुआ तो मैं कदापि सुखी नहीं होऊंगी। धर्म पर

ध्यान देने से मुझे उचित यही ज्ञात होता है कि मेरे भाग्य में जो दुःख बदा हो उसे सहना ही अवश्य है क्योंकि तुम्हें छोड़ अब मेरा निर्वाह नहीं है। किन्तु इतने पर भी मैं यह नहीं चाहती कि तुम्हारे संग मेरा व्याह हो। अपनी बहिन को किसी प्रकार मैं दुःखी करना नहीं चाहती, उस के सुखतरु का कुठार बनना क्या मुझे उचित है? मैं यह जानती हूं इसीलिये इतने दिनों तक मैं ने अपने मन को सम्हाल रक्खा था। पर हाय, आज सब भेद खुल गया।

मैं०—मेरे संग रहने से तुम्हें क्या कष्ट होगा?

मा०—तुम नहीं जान सकते! सौत का संग असहनीय है। तिस पर भी यदि वह सौत अपनी बहिन हो। इन बातों के विचारने से अब लाभ क्या होगा?

मैं०—कुछ नहीं। तुम भय न करो। इस सम्बन्ध में तुम्हारी विवेचना को बड़ा भ्रम हुआ है। तुम्हारी जैसी गुणवती महिला मेरी स्त्री की संगिनी होगी, इसे जान कर वह बहुत सन्तुष्ट होगी। एक वृन्त में तुम और वह युगल प्रसून एकसंग विकशित हो, यही मेरी आन्तरिक वासना है। एक शोभामय कानन में कितने प्रकार के कुसुम प्रस्फुटित होते हैं; एक पर्वत के हृदय को फाड़ कर कितनी निर्झरिणियां नाचती हैं; एक सागर में कितनी नदियां आ गिरती हैं। इस में क्या हानि है? क्या एक पुष्करणी में अनेक कमल नहीं खिलते। परन्तु तुम एक काम क्यों नहीं करती। जाकर अपनी माता से कहो कि वह तुम्हारा विवाह मेरे संग कर दें। वह तुम्हें बहुत चाहती हैं, मुझे आशा है कि वह तुम्हारी बात न टालेंगी। और यदि तुम्हारी मा राजी हो जायं तो फिर कौन सी बाधा रह जाय।

मा०—जो होना है वह होगा किन्तु मैं ऐसा कभी नहीं कर सकती। किस मुंह से मैं मा से यह बात कहूंगी। तुम जो चाहो

सो करो, किन्तु मैं इस बीच में न पड़ूंगी; मा से इस विषय में मुंह न खोलूंगी। ऐसा करके मैं समाज का नियम उल्लङ्घन न करूंगी। लोक का अपवाद न सहूंगी। अपने को हलकी न करूंगी।

मैं०—तब तो देखता हूँ भारी बखेड़ा खड़ा हुआ। आज यदि तुम्हारी बहिन नहीं रहती तो कैसी सुगमता से यह काम हो जाता। अच्छा! तुम एक काम करो। तुम्हारा चित्त सरल, शुद्ध, स्वच्छ तथा पवित्र है और तुम्हारा चरित्र उन्नत है, अतएव तुम जगदाधार परमात्मा से विनय करो कि हम लोगों के सुख के मार्ग से वे सब कंटकों को हटा दें और हम लोगों के संयोग में कोई अटका या खटका न रह जाय। तुम्हें मैं किसी प्रकार अपनी बनाना चाहता हूं। मन की कितनी सुख दुःख की बात सदा तुम से कहना चाहता हूँ। यदि तुम मेरी हो जाओगी तो कितनी विपदों में मैं तुम से सहायता पाऊंगा; कितनी सम्पद् को तुम्हारे संग भोगकर आनन्द उठाऊंगा। तब क्यों ऐसा कठोर वाक्य कहकर तुम मेरी सब साधों को पद दलित करती हो।

मा०—तब तुम स्वयम् ही प्रार्थना क्यों नहीं करते?

मैं०—मैं तो अबतक नहीं करता था क्योंकि मुझे यह ज्ञात नहीं था कि तुम्हारी रुचि क्या है। किन्तु अब से मैं सदा विनय किया करूंगा, जिस में ईश्वर की दया से हम लोगों के संयोग में कोई बाधा न पड़े और जहां तक शीघ्र हो सके यह कार्य्य सम्पन्न हो जाय।

मा०—देखा जायगा। किन्तु इस समय मुझे जाने दो। अच्छी याद आई, क्या तुम ने सुना नहीं कि मेरे बड़े जीजा भी मुझे बरना चाहते हैं। इस विषय में मा ने उन्हें एक पत्र भी लिखा है। अपने मुँह से यह बात निकालनी मुझे उचित नहीं थी। किन्तु अब तुम से लज्जा ही क्या रही। सुना है कि माता आज तुम से इस विषय में परामर्श करेंगी। यहां और लोगों की तो राय नहीं है,

किन्तु पद्मा उस की ओर है। वह कहते हैं कि वर खोजने में बहुत कष्ट हो रहा है, यह देखा सुना घर वर है यहीं शादी ठीक कर ली जाय'।

मालती की बात सुन कर बिमल मित्र का सुख पर वज्राघात हुआ। नसों में बिजली दौड़ गयी। सारा शरीर सन सन करने लगा। गला बन्द हो गया। कुछ कहते न बना। वहां से उठ कर बाहर चला आया। यहां एकान्त में बैठ फूट फूट कर रोने लगा, क्योंकि मन के भावों का वेग में सम्हाल न सका।

सप्तम कल्पना।

होली रहस्य।

Sweet Helen make me immortal with a kiss.

C. Morlowe.

सचराचर में नया जीवन, बल एवम् उत्साह सञ्चार करनेवाला, चित्त को सरसानेवाला, प्रेम को बढ़ानेवाला, प्रणय-पयोधि को तरङ्गित करनेवाला, भ्रमर को मनमाना फल देनेवाला, पवन को सुगन्धि प्रदान करनेवाला, विटप लतादिकों का कल्पद्रुम, मानिनियों का मान तोड़नेवाला, काम का उत्तेजक, सब ऋतुओं का राजा बसन्त आ गया है। इस के स्वागत के लिये प्रकृति ने कैसी तैयारियां की है। पत्तों ने गिर गिर कर कैसा सुहावना पांवड़ा बिछा दिया है। वायु ने झाड़पोंछ कर हर ओर भूमि को स्वच्छ कर रखा है। वृक्ष सब नये नये कोमल स्निग्ध पत्तों का वस्त्र पहन कर कृत्तार के कृत्तार श्रेणीबद्ध स्वागत के लिये खड़े हैं। आनन्द से मत्त होकर उधर विहङ्ग डालियों के संग वृक्षों पर झूम रहे हैं और शुभागमन सूचक गीत अलाप रहे हैं। इधर "चोबदार चातक विरद बदि

वोके दर दौलत दराज ऋतुराज महराज को"। ऊपर आकाश की नीलिमा मन को वश कर रही है। फिर जहां देखिये वहीं आनन्द ही आनन्द दिखाई दे रहा है। सभी प्रसन्न, सभी गद्‌गद, सभी मत्त, सभी उत्कण्ठित, सभी उत्साहित और सभी उतारू हो रहे हैं। आम्र-लतिका नूतन मंजरियों से सुशोभित हैं। शीतल मन्द सुगन्ध पवन सब के मन को मुग्ध कर रहा है। विशेष कर यह प्रभातसमीर तो सहज में जगत् को चैतन्य कर रहा है।

ऊषा के मनोहर आलोक में प्रकृति ने परम रमणीय भेष धारण किया है। पूर्व दिशा में लालिमा दौड़ आयी है, ज्ञात होता है कि प्रगल्भा रमणी नीलोज्वल घूंघट हटा हटा कर हंस रही हो। आकाश से एक एक कर तारे लोप हो गये। कहीं एक दो उसी प्रकार मन्द मन्द चकमका रहे हैं, मानो कोई क्लान्त पथिक अपने साथियों से बिछुड़ कर इधर उधर ताकता भांकता हो। नव विकशित गुलाब वाटिका में दमक रहे हैं। निवारियां कियारियों में गमक रही हैं। जहां तहां गेंदे तथा मोतियां महक रही हैं। हरे हरे पत्तों में "अधूम अंगार" जैसे अनार एवम् कचनार शोभा पा रहे हैं। जल कण से सुशोभित, तड़ाग की शोभा बढ़ानेवाले और पवन को सुगन्ध के बोझ से लादनेवाले, पङ्कज अपना अधखिला मुख तरुण अरुण को दिखा रहे हैं। इन पर झुंड के झुंड मलिन्द रस पान कर मत्त हो रहे हैं और उन का मधुर गुञ्जार मन को मोह रहा है। सुहावनी सौरभ से विभूषित कुसुम कलियों की विचित्र शोभा है। सघन कुञ्जों से कोकिल का "कुहू" रव सुन कर हृदय सागर में आनन्द की तरङ्गे उठने लगती हैं। इन की सुरीली तथा सुहावनी पुकार सुनकर तन मन की सुधि जाती रहती है। पञ्चवान ऐसे अवसर में अपना घात पा पुष्पबाण से नस नस को बेधता है और अङ्ग हीन होने पर भी अङ्ग अङ्ग में अपना प्रभाव डालता है; क्योंकि संगी तथा सहायक को पाकर किस का बल

नहीं बढ़ता। इधर हरे भरे वृक्ष पत्तों से 'ताली' दे दे कर एक पैर से खड़े अपने कर्त्ता का यश गा रहे हैं। इस समां को देखकर ज्ञात होता है मानो जगदाधार हरि संसार को निरीक्षण करते हुए सृष्टि को नवीन जीवन प्रदान कर रहे हैं। पौ फूटने के आगे जान पड़ता था कि शान्ति तथा पवित्रता, माधुर्य्य तथा शोभा, प्रीति एवम् आनन्द, उज्ज्वलता तथा मधुरता, मानो मूर्त्तिमती हो सर्वत्र विचरण कर रही हो।

रात में होलिका जलाई गयी थी। आज लोग होली मनावेंगे। यह उत्सव भारत वर्ष में बड़े समारोह से मनाया जाता है। आज ही के दिन हिन्दू हिन्दू जैसे ज्ञात होते हैं। क्योंकि उत्सव जाति का जीवन है। जातीय ऐतिहासिक घटनाओं का स्मारक और आन्तरिक भावों का परिचायक है। हजारों वर्ष बीत गये किन्तु आज भी हिन्दू जाति दयामय भक्त वत्सल भगवान् की उस कृपा के लिये जो उन्हों ने अपने प्रिय भक्त पर दिखलाया था, धन्यवाद देने के हेतु यह उत्सव मनाते हैं। होलिका जलाने का मुख्य उद्देश्य यही है। अपने परम भक्त प्रह्लाद की रक्षा अग्नि कोप से कल रात में परमात्मा ने की थी। उसी का आनन्द आज भी आर्य्य हिन्दू मनाते हैं। भारतवर्ष कृषि प्रधान देश है। नया अन्न काट पीट कर भारत वासी अपने घर में ला चुके। आज खेती के काम से किसानों को कुछ दिन के लिये छुट्टी हो गयी। अतएव आज के दिन वे लोग "नवशस्येष्टि" करते हैं। आज ही के दिन प्राचीन काल में बसन्तोत्सव भी होता था, आज ही श्री कामदेव की पूजा भी होती थी। बस सब उत्सव आज मिल गये, सब का आज विचित्र सङ्गम हो गया, अतएव आज के दिन यहां इतना उमङ्ग तथा समारोह होता है। फिर क्या है? सभी आनन्द में मग्न हो आनन्द का सोता बहा रहे हैं। शत्रु मित्र का विचार नहीं रहा। सभी एक भाव से उस सोते में ग़ोते लगा रहे हैं और उस का रस पान कर रहे

हैं। आज बसन्त की अन्तर्गत होली है। आज जहां देखिये वहीं हर्ष, हास्य, परिहास व्यङ्ग आमोद, विनोद, प्रमोद और उछाह हो रहा है। सुबह सेही लोग उमङ्ग में इधर से उधर आ जा रहे हैं। एक दूसरे पर रङ्ग छींट रहे हैं। कोई किसी पर पिचकारी भर कर मार रहा है, कोई झोरी में अबीर गुलाल भरे इधर उधर फिरता हुआ, जिसे पाता है उसी के मुंह में मलता है। चारों ओर गुलाल अबीर तथा अबरख उड़ाया जा रहा है। सब के सब लाल रङ्ग में सराबोर हो रहे हैं। जहां देखिये वहीं रङ्ग। शरीर में रङ्ग, मुख में रङ्ग, आंखों में रङ्ग, प्राणों में रङ्ग, हृदय में रङ्ग, हवा में रङ्ग आकाश में रङ्ग, भीतर बाहर सर्वत्र रङ्ग ही रङ्ग है आज तो—

"लाल लाल आकाश भे दिसा चहूं भइ लाल।
पिय प्यारी सब लाल भे सखि अस उड़त गुलाल॥"

कहीं डफ, ढोल, मृदङ्ग बज रहा है। कहीं कोई काफी, धमार और फाग अलाप रहा है। किसी को जोगीड़े का सुर है और कोई कबीर गा गा कर लोगों को ललकार रहा है। घर घर पकवान बन रहा है, चूल्हे पर कड़ाही गबगबा रही है। कोई खाता है, कोई खिलाता है, कोई रंगता है कोई रंगाता है, कोई नाचता है, कोई नचाता है, कोई हंसता है कोई हंसाता है, कोई भींगता है कोई भिंगोता है। कोई मदिरा तथा अन्य मादक पदार्थों का सेवन कर आपे से बाहर हो रहा है। इस पवित्र भारत भूमि में कुसंस्कार के कारण स्वाभाविक, सरल एवम् आन्तरिक उत्साह, उत्तेजना तथा आनन्द नहीं रहने से लोग मादक पदार्थों का सेवन कर अपने को उत्तेजित करने की चेष्टा करते हैं। नहीं तो इन निन्दनीय द्रव्यों का यहां प्रचार कहां था। किन्तु इन की सहायता से क्या आनन्द मिलता है? निर्मल, आन्तरिक आनन्द तो केवल निष्काम प्रेम से प्राप्त होता है।

सुनते हैं कि ब्रज देश ही इस उत्सव का केन्द्र है और सचिदा-

नन्द आनन्द कन्द व्रजचन्द्र ही इस के प्रधान नायक हैं। जहाँ तहाँ हम लोग " व्रज " ही की होली का वर्णन भी पाते हैं। यथा :—

" लै लै कर झोरी जुरी आयीं इतै गोरी उतै होरी खेलिवे को ग्वाल बाल हूं बनायो कीच। छाय गो छिने में यों गुलाल मेघ माल ऐसो द्विजदेव जासों ना जानायो परै ऊंच नीच। ऐसी भई धूमरी धमार की सो ताही समै, पावस के भोर मोर सोर कै उठै अपीच। घन के समान ज्यों ज्यों दौरे घनस्याम त्यों त्यों संपासी दुरति आली चम्पा घन बन बीच।"

किन्तु हाय, अभी तक मेरा ऐसा सौभाग्य नहीं हुआ कि होली उत्सव के समय व्रज मण्डल का दर्शन पाऊं।

सुनता हूं कि आज के दिन प्रभात समय वहां लोग मिट्टी पानी और गोबर को घोल कर एक दूसरे पर लगाते हैं। इसे "दधिकांदो" कहते हैं। प्राचीन काल में इस देश में इतना अधिक दूध एवम् दधि होती थीं कि लोग उन्हें इतना एक दूसरे पर उत्सवों के दिनों में डालते थे कि बहकर और मिट्टी के संग मिलकर कीच हो जाती थी। हाय! एक दिन वह था और एक दिन आज है कि हम लोगों को खाने पीने के लिये भी ये स्वर्गीय पदार्थ नहीं मिलते, और इसी कारण से यह देश इतना दुर्बल एवम् रोगी हो रहा है। यहां गौओं का आदर इतना था कि स्वयम् श्रीकृष्ण भगवान् गोपाल कहे जाते थे। धन्य व्रज! और धन्य वहां की गौएं।

व्रज की सुधि आते ही मन चञ्चल हो गया। मैं ने व्रजचन्द्र से हार्दिक प्रार्थना की कि वह मुझे होली के अवसर में श्री वृन्दावन का दर्शन करावें और अपने होली रहस्य को देखने का सौभाग्य दें। इसी सोच विचार में कुछ समय बीत गया। देखते देखते दिन ढल गया। दिन ढलते ढलते सन्ध्या हो आयी, आसमान में तारे छिटक आये, गगन में रंग चढ़ गया और अब तो—

" तारे आसमान के गुलालो रंग धारे हैं। "

इष्ट मित्रों से होली खेल कर मैं डेरे पर आया और अपने कमरे में अकेला बैठ गया। निश्चिन्त होने पर नटवर की सुधि आयी। मैं ने कहा कि निकुञ्ज कानन की घनी ओट से निकल आवो। आज मेरी साध पूरी करो। इच्छा होती है कि तुम्हारे संग होली खेलूं। चलो यमुना तट पर बंसी बट के निकट आज होली मचे। हृदय पट पर जो तुम्हारा चित्र अङ्कित है उसी लावण्य मयी मूर्त्ति को देखना चाहता हूं, तुम्हारे उसी मूर्त्ति के संग होली खेलना चाहता हूं। अपनी बांकी सूरत जरा दिखा तो दो। कब तक तरसावोगी ? देखना अकेले न आना श्रीमती को भी साथ लिये आना। नवेली नागरी जिस में नट नागर के साथ रहें। अब लोकललाम श्यामा श्याम की युगल छवि की झाँकी दिखा कर मुझे कृतार्थ करो। रंग भरे आनन को आज दिखा दो। आज रंग से तुम्हारा नख सिख लाल हो रहा है, आवो अपने हृदय राग से भी तुम्हे रञ्जित कर दूं। किन्तु तुमं पर रंग कहां चढ़ेगा, तुम तो श्याम रंग के ठहरे तुम पर दूसरा रंग क्यों कर चढ़ेगा। आज नव घन और सौदामिनी पर भी अरुण की आभा छिटक रही है। अहा ! आज की छवि क्या ही मनोहर है। यह क्या हाथ में पिचकारी है ? अच्छा अपने अनुराग राग से मुझे सराबोर कर दो। लोक रीति के अनुसार भी तो मुझे अपने गालों में तनिकसा रंग लगाने दो। क्या मेरे अपराधों को देख कर मुझ से बदन छुलाते झिचकते हो ? नहीं ! नहीं ! ऐसा न करो। आज इस का दिन नहीं है। आज अलबेली रंग भरी मदमाती अनोखी होली का राज्य है। होली ऊंच नीच का विचार हटा देती है। आज बैरी से भी लोग दिल खोल कर मिलते है। आवो ! आज मुझे मनमाना करने दो। जी चाहता है कि तुम्हे हृदय सिंहासन पर बिठा कर तुम्हारी पूजा करूं। तुम्हारी पूजा में आत्म-विसर्जन करूं तुम्हारी छवि स्वाभाविक ही कैसी सुन्दर, क्या ही अनुपम, क्याही अलौकिक और क्याही मनोहारिणी है। तिस पर

आज यह होली का शृङ्गार मदन का भी मान तोड़ रहा है। सुनता हूं कि प्राचीन काल में लोग आज ही के दिन मदन को भी पूजा करते थे। किन्तु मुझे क्या? मेरे लिये तो कोटि काम की मूर्त्ति तुम्हीं हो—तुम्हें छोड़ कर मदन को कौन पूजा करे? किन्तु प्यारे प्राणाधिक प्रियतम मेरा मन तो स्थिर रहता नहीं। इस की तो मलिनता जाती नहीं। देखो, इस समय तुम्हें सम्मुख रख कर भी, यह मालती का ध्यान कर रहा है। समझ में नहीं आता मालती मेरे लिये क्या है? देखता हूं कि मैं बिना दाम कौड़ी के उस के हाथों बिक गया हूं। यदि तुम हम लोगो को मिला कर आजन्म के लिये इकठ्ठा कर देते तो यह दुःख जाता रहता। अब तो इस में भी सन्देह नहीं रहा कि मालती मुझे चाहती है। तो फिर क्या हम लोगों का संयोग नहीं होगा, क्या मालती मेरी नहीं होगी? वह तो अपनी बहिन को दुःख देना नहीं चाहती। अच्छा, अभी समय तो है देखा जायगा। किन्तु आज मेरा मन इतना चञ्चल क्यों हो रहा है? देखता हूं कि होली ने आज मुझे अधिक व्याकुल कर दिया। मालती की सुधि आते ही नाना प्रकार की चिन्ता की तरङ्गें मेरे हृदयसरोवर में उठने लगीं। वह मेरे हाथों में न रहा।

मेरी पत्नी आज कल अपने पीहर में थी अतएव मैं भी आज यहीं हूं। आनन्द मुझे इसी बात का है कि आज मैं मालती के निकट हूं। ऐसे दिन में अपनी प्रियसी के पास रहने में मनुष्य को कितना सुख मिलता है। कुछ रात बीते मैं मालती के निकट गया। भीतर से दाई आकर मुझे वहां ले गयी।

मालती एक घर में खड़ी मेरी बाट जोह रही थी। अब मालती मुझ से संकोच के साथ नहीं मिलती। मुझे आते देख कर उस ने कहा "होली की बधाई है।"

सामने आंख उठा कर मैंने देखा कि मालती रूप-शिखा से घर को आलोकमय कर रही है। मलमल की गुलाबी सारी पहने जिस

में सिल्क को किनारी टकी थी, वह खड़ी है। सर पर गुलाल का रंग उस की शोभा बढ़ा रहा था। सुगठित वेणी पीठ पर नागिन सी लोट रही थी। स्वर्ण के किंचित् अलङ्कार 'सोने में सुगन्ध हो रहे थे'। अधर ताम्बूलराग से रञ्जित था। कपोल पर भी किसी ने गुलाल मल दिया था; ज्ञात होता था मानो कमलदल पर बीर बधूटी बैठी हो। मालती के उस अनूप रूप को देख कर मैं अपने को सम्हाल न सका। घर में कोई नहीं था। मेरी संज्ञा हत हो गयी आगे बढ़ कर मैं मालती से जा लिपटा और बिना कुछ सोचे समझे मैं ने उस के विद्रुम-विनिन्दक अधरपल्लवों को चूम लिया। मालती मुझे रोक न सकी। ज्ञात हुआ कि उस को ऐसी इच्छा भी न हुई। फिर क्या था? लज्जावश उस का आनन लाल हो आया। "हैं! हैं! यह क्या? यह क्या?" कहती हुई वह कुछ हट गयी। आगे बढ़ कर मैं ने उस का हाथ थाम्ह लिया। मुझे ज्ञात हुआ मेरा जीवन सार्थक हुआ।

पाठक! मेरा अपराध क्षमा करें। मुझे दोष न दें। यह बात विचारें कि ये आलिङ्गन एवम् चुम्बन किस प्रकार के थे। ये सरल एवम् पवित्र चुम्बनालिङ्गन ऐसे मर्मस्पर्शी, प्रगाढ़ तथा शुद्ध प्रेम के उद्रेक से थे कि देवदूत भी इन की निन्दा नहीं कर सकते।

मेरा वर्षों का दुःख भूल गया। आनन्दसरोवर में मैं इस प्रकार गोता खाने लगा कि मुझे अपनी सुधि तक न रही। मुझे चुप देख कर मालती ने अति मृदुल, मधुर तथा मनोहर स्वर से कहा कि अब क्या सोच रहे हैं। आप ने यह अच्छा नहीं किया। विवेक से आप को काम लेना उचित था। इस समय आप का व्यवहार नितान्त अल्पज्ञ सा हुआ। यदि कोई इस समय हम लोगों को देख ले तो क्या हो? क्या अपने को आप इतना भी सम्हाल न सके? सीमा को इस प्रकार उल्लंघन करना क्या आप को उचित था? होली का तो आप ने अच्छा स्वांग दिखाया। मन, प्राण, वचन तो

आप पर न्योछावर कर हो चुकी थी, किन्तु आज आप ने मेरे तन बदन पर भी अपना अधिकार जमा लिया। किन्तु यह ध्यान आते इस सुख की घड़ी में भी मुझे दुःख ही के पयोनिधि में तैरना पड़ता है कि यह गुप्त प्रेम हम लोगों का सफल नहीं होगा। अनेक दिनों तक हम लोगों का संग नहीं निबहेगा। मैं तुम्हारी स्त्री नहीं हो सकती। किन्तु तुम्हें छोड़ कर मेरा कोई दूसरा कान्त भी अब नहीं हो सकता। पुरुष अनेक स्त्रियां ग्रहण करते हैं, किन्तु स्त्रियां तो दो वार नहीं बरतीं। आज से तुम मेरे मरण तथा जीवन के जिम्मेवार हुए। हाय! प्रकृति का क्या नियम है कि जीवन के साथ ही साथ मृत्यु और संयोग के साथ ही साथ वियोग का भय सदा लगा ही रहता है। जो होगा देखा जायगा। आवो, आज तुम्हारे गालों में गुलाल मल दूं।

ऐसा कह कर मालती ने तश्त से गुलाल निकाल कर मेरे कपोलों में लगा दिया। मेरा शरीर रोमाँचित हो गया। ज्ञात हुआ बदन में विद्युत् का प्रवाह हुआ। मालती के हाथ को जो अभी तक मेरे हाथ में था मैं ने ज़ोर से दबाया। झटका से उस ने अपने हाथ को खींच लिया। और पान का तश्त उठा कर मुझे उस ने पान दिया। मैं ने कहा कि "अकेला मैं नहीं खाऊंगा। यदि तुम भी खावो तो मैं खा सकता हूं।"

मालती बोली "नहीं"।

पान ले कर मैं ने उसे खाने के लिये आग्रह किया। उस ने कहा कि अच्छा पहले आप खाइये तो मैं खाती हूं।

अपने हाथ के पान को मैं ने आधा काट लिया और आधा उस के मुंह में दे कर उस का मुंह चूम लिया। मालती ने निषेध करने की चेष्टा की। किन्तु कृतकार्य्य न हुई। मानो हमलोगों के प्रणय पर मोहर पड़ गयी। अब क्या था मैं ने भी उस के कपोलों पर गुलाल मला। उस ने भी मेरे ऊपर रंग डाला। कुछ देर तक होली

खूब मची । अबीर, गुलाल, अबरख, पिचकारी, कुमकुमा और केसर सब के सब काम में लाये गये । होली खेल कर पान तथा मसाला लिया दिया गया । मुझे ज्ञात होता है कि आज तक ऐसा सुख मैं ने कभी अनुभव नहीं किया और जान पड़ता है कि भविष्य में भी नहीं करूंगा ।

इस बार कई दिनों तक मैं वहीं रह गया । बीच बीच में सदा मालती से भेंट हुआ करती थी । प्रेम की अनेक बातें होती रहीं । सुख में दिन कटते गये । किन्तु संसार में कोई सुख चिरस्थायी नहीं होता । अन्त में वियोग का भी दिन आ ही गया । इस बार मालती से बिलग होते जो मुझे दुःख हुआ था वैसा इस के पहले कभी नहीं हुआ था । उस समय नहीं ज्ञात हुआ , किन्तु अब तो यही कहना पड़ता है कि यही संयोग हम लोगों का अन्तिम संयोग था ; यही मिलन अन्तिम मिलन था, यही समागम एक प्रकार से अन्तिम समागम था, और यही सुख अन्तिम सुख था। ऐसे सुख की घड़ी फिर कभी न आयी ! फिर मेरे हृदयगगन में सुखसूर्य्य का उदय नहीं हुआ। मेरे हृदयवाटिका का यही अन्तिम वसन्त हुआ।

पाठक ! जिस में आप लोगों को भ्रम न हो, मैं साफ खुल कर कह देता हूं कि इस संयोग के दिनों में मैं ने कोई निन्दनीय व्यवहार मालती के साथ नहीं किया। कोई ऐसा काम नहीं हुआ जिसे कहते मुझे लज्जा हो अथवा आप लोगों को सुन कर घृणा। हम लोगों का सहवास सराहनीय तथा पवित्र था। हम लोगों का प्रेम निर्दोष था। हम लोगों का मिलन शुद्ध था। हम लोगों का समागम सरल था। और हम लोगों का संयोग प्रशंसनीय था।

अष्टम कल्पना ।

निराशा ।

"......Writhes the mind Remorse hath riven,
Unfit for earth undoomed for Heaven,
Darkness above, despair beneath,
Around it flame, within it Death."

Byron.

देखते ही देखते समय पक्षी ने अपने डेनों पर लाद कर मालती के विवाह का दिन निकट पहुँचा दिया। जैसे जैसे ब्याह का दिन निकट आ रहा था वैसे ही वैसे मेरा मन अधिक व्याकुल होता जाता था। अपनी चिरवाञ्छित आशा पर पानी फिरने की सम्भावना देख कौन व्यग्र नहीं होता? अपनी प्रेम-प्रतिमा को अपने से दूर होते देख, किस का हृदय नहीं दहलता; ? अपने सुख के मार्ग में विघ्न का पहाड़ देख किस का कलेजा नहीं धड़कता? किन्तु मैं क्या करता एकदम बेबस हो रहा था।

• मालती के लिये वर खोजने का भार मेरे माथे पड़ा था। बहुत दिनों तक मैं इधर उधर करता रहा। अपना विश्वास ऐसा था कि घटना के हेर फेर से कभी न कभी उस का व्याह मेरे ही संग अवश्य होगा। कहते लज्जा आती है, किन्तु कहना अवश्य पड़ता है कि इस के लिये मैं ने कई बार श्रीकृष्ण भगवान् से प्रार्थना भी की थी। मनुष्य की विचित्र प्रकृति है कि वह सब बातों के लिये अपने इष्ट-देव को मनाता है। चोर चोरी करने के लिये जब प्रस्थान करता है तब वह अपने इष्टदेव को मनाता है। जुआड़ी जब हाथ में पासा लेता है तब अपने भगवान् को अपने दाँव के लिये पुकारता है। जुआचोर जब किसी को धोखा देने का संकल्प करता है तब वह भी अपने इष्टदेव को अपनी सफलता के लिये आवाहन करता है। तो क्या इन सबों को ईश्वर सहायता देते हैं? कदापि नहीं।

उस समय मेरे मन में उचित अनुचित का विचार नहीं आया। और आता ही कैसे एकबार मैं ने स्वप्न में देखा था मानो भगवान् मुझ से यह कह रहे हैं कि यदि मालती अपनी माता से संकोच छोड़ कर कहे तो तुम दोनों में परस्पर सम्बन्ध अवश्य हो जाय। मैं ने मालती को बहुत कुछ समझाया बुझाया परन्तु उस ने मेरी एक भी नहीं सुनी। वह अपनी मा से इस बात की चर्चा करने पर राज़ी नहीं हुई। वह भगवान् से मेरे साथ विवाह होने के निमित्त प्रार्थना करती थी, किन्तु इस राह के कंटक को हटाने के लिये विनय नहीं करती थी।

इधर मेरे बड़े साढू ने अपनी दाँव घात देख कर कुछ ऐसा रंग जमाया कि मेरा सब परिश्रम व्यर्थ हो गया। वह सब किसी से मेरी निन्दा करने लगे। उन्हों ने क्रमशः सब का कान भर दिया।

जिस में स्वयम् कोई गुण नहीं है प्रायः वही दूसरे की निन्दा करता है। जिसे स्वयम् कुछ हानि उठाने की आशंका नहीं है वह दूसरे को क्यों हानि नहीं पहुंचावेगा? जो दूसरे को मर्मान्तिक

व्यथा से व्यथित करता है वह इस विषय का परिचय अवश्य देता है कि वह शून्य अन्तःकरण का है, उस का हृदय चेतनारहित है, उस के मन में दया माया की छींट भी नहीं है। निन्दनीय स्वभाव की सूचना देती है। बड़े लोग कभी किसी की निन्दा नहीं करते। जिस छल बल एवम् कौशल से उन्हों ने मेरे मनोरथ कमल पर पाला डाला तथा मेरी आशा विफल की, उस का सविस्तार उल्लेख मैं नहीं कर सकता, क्योंकि ऐसा करने से मुझे उन की निन्दा करनी पड़ेगी और निन्दा करनी मुझे उचित प्रतीत नहीं होती।

इधर मालती की ओर मेरा मन अधिक खिंचा जाता था। उस के रूप तथा गुण को देख कर मैं अधिक मुग्ध होता जाता था। अब मुझ पर यह बात भी पूर्ण रूप से प्रकटित हो गयी थी कि मालती मुझे अपना चुकी है। वह मुझे प्यार करती है। वह मुझे सुखी करना चाहती है। परन्तु वही हठ—वही दुर्बलता - वही निष्ठुरता। उस ने कभी अपनी माता से नहीं कहा।

इन दिनों धर्म की ओर उस की अधिक प्रवृत्ति दीख पड़ती थी। कलेजे पर चोट पहुंचने से प्रायः मन धर्म की ओर झुकता है। दुःख की अवस्था में मनुष्य भगवान् को अधिक पुकारता है। संकट पड़ने ही पर मनुष्य संकटमोचन का अनुसंधान करता है। जब सब का अवलम्ब छूट जाता है तब जगदाधार के सहारे मनुष्य खड़ा होता है। सुख ही में समय बितानेवाले बहुधा गूढ़ विषयों को नहीं समझते। जब प्रेम पूर्णता को पहुँचता है तब प्रायः वह दुखद ही हो जाता है। अब प्रत्यक्ष मुझ पर विदित होने लगा कि इस जीवन में हम लोगों को सुख नहीं है। निराशता के झकोरे में पड़ कर मालती का ध्यान पूर्ण रूप से परलोक की ओर झुका। वह कहने लगी कि "प्रेम ही के लिये मेरी सृष्टि हुई थी, परन्तु विषय में पड़ कर यह कलुषित हो गयी। यहां से छुटकारा पाने ही पर अब मेरा निस्तार है। अब उसी लोक में हम लोगों का संयोग

होगा—ऐसा संयोग होगा कि उस में वियोग की आशंका नहीं रहेगी। यहां की आशा अब शेष नहीं रही। ”

कभी अश्रुपूर्ण नेत्रों से आकाश की ओर वह घंटों टकटकी लगाये रह जाती थी। पूछने पर कहती कि मेरे लिये सुख अब यहां नहीं है—वहीं है। वर्त्तमान में नहीं वरन् भविष्य ही में मुझे शान्ति मिलेगी। आज कल मेरे दिन कठिन जांच के हैं। यदि यहां में अपने संकल्प में दृढ़ रह गयी तो वहां मुझे परमानन्द तथा विश्राम अवश्य मिलेगा।

आज कल मालती दिवानिशि भगवान् ही की सेवा में रहती है। वह कहती थी कि मुझे अब गोलोक तथा दिव्य वृन्दावन में वास ही करने का आनन्द मिलता है। सदा मेरा ध्यान उसी ओर झुका रहता है। उसी ओर ‘ लव ’ लग गया है।

मुझे ज्ञात होने लगा कि दुःख ने उसे विह्वल कर छोड़ा है। किन्तु मैं करता क्या ? मेरे हाथ में क्या था ? सब का विश्वास मुझ से उठ गया था। उस के विवाह के विषय में अब कोई मुझ से कुछ परामर्श नहीं करता था। इस बात में मैं भी किसी को कोई राय नहीं देता था।

मेरा दुःख क्रमशः सीमा को पहुंचता गया। देखते देखते मालती का ब्याह मेरे साढ़ू के संग ठीक हो गया। किन्तु मैं जानता था कि इस विवाह से मालती कदापि सुखी नहीं होगी।

क्या किया जाय ? समाज का ऐसा नियम ही हो रहा है। कहिये तो सुख को लक्ष कर आज कल कहां विवाह होता है ? अधिकतर शादी व्यापार के नियमानुसार होती है, जिस में लोगों का विशेष ध्यान केवल लेन देन पर रहता है। अतएव कभी कभी अतीव सुकुमार अबला ललनाओं का ब्याह चिताभिमुख मरणोन्मुख बूढ़े वरों के संग होता है। कहीं लोभ में पड़ कर लोग ऐसा काम कर बैठते हैं कि जिस से आजन्म दुःख ही भोगना पड़ता है। किसी

एक ब्याह ही में अपना सर्वस्व खो बैठते हैं। शादी की खुशी दिल से जाते न जाते लोगों का घर द्वार तक दूसरों के यहां चला जाता है। यहां पर आधुनिक कुरीति का कहां तक विस्तार सुनावें। प्राचीन काल में मेरे यहां विवाह की क्या रीति तथा नियम था सो तो मैं ठीक नहीं कह सकता किन्तु इतना तो अवश्य कहूंगा कि प्रचलित नियम नितान्त दूषित है। अतएव इस का सुधार होना अत्यन्त आवश्यक है। समाज के मुखिया लोगों को उचित है कि इस ओर ध्यान दें और यथा साध्य इस के नियमों को ठीक करें।

किन्तु क्या कहता था क्या कहने लगा। देखता हूं कि पुरानी बातों की याद आने से बुद्धि विचलित हो रही है। कहां कहते थे अपनी विपत्ति कहानी कहां समाज के नियमों की आलोचना करने लगा। अपने भाग्य का दोष नहीं देकर मैं समाज को क्यों दोषी ठहराने लगा? हां! क्या कहता था? मालती के विवाह की बात!

बात बिगड़ती देख कर मैं ने आग्रहपूर्वक पुनः मालती से कहा कि अब दूसरा उपाय नहीं है, तुम यदि अपना तथा मेरा भला चाहो तो अपनी माता से कहो कि यह ब्याह हमें पसन्द नहीं है। तुम मेरे ही संग विवाह करना चाहती हो। परन्तु उस ने साफ कह दिया कि मुझ में आत्माभिमान उच्च श्रेणी का है। जो स्वच्छता तथा प्रेम मेरे हृदय में राज्य करते हैं उन में असभ्यता तथा स्वार्थ मिश्रित नहीं है। मैं आजन्म दुःख भोगना पसन्द करूंगी किन्तु प्रलोभ में पड़ कर अपने वाञ्छितफल को पाने के लिये कोई ऐसा काम न करूंगी, जिस में जगत् का मुझे कलङ्क एवम् उपहास सहना पड़े। तुम्हें मैं अपनाना चाहती हूं परन्तु इस के लिये मैं अपने को सब के सामने हलकी करनी नहीं चाहती। मुझ में इतना बल नहीं है कि कलङ्क का टीका लिये अपने जीवन को धारण करूं। ऐसा करने से मेरा जीवन भार हो जायगा। मेरा बचना कठिन हो जायगा।

" अपने स्वार्थ एवम सुख को विसर्जन करना ही मेरे गाढ़ प्रेम

का अटल प्रमाण होगा। अपने लिये मैं अपनी माता को दुःखी कदापि नहीं करूंगी। तुम जो कहो किन्तु मुँह खोल कर विवाह के सम्बन्ध में मैं किसी से कुछ न कहूंगी। अभी तक तुम ठीक नहीं जानते कि प्रेम क्या है? स्वार्थजनित प्रेम नितान्त दूषनीय है, उस की उपमा केवल सड़े हुए सुन्दर फल के साथ हो सकती है। स्वार्थ के संसर्ग से पुनीत प्रेम भी कलुषित, दूषित तथा निन्दनीय हो जाता है। तुम मेरी बात मान लो, अब मुझे इस संसार में बहुत दिन रहना नहीं है। मेरा दृढ़ संकल्प है कि मैं अपने सुख के लिये किसी को दुःखी नहीं करूंगी। परन्तु तुम यह कह सकते हो कि मेरे व्यवहार से तुम दुःखी हो रहे हो। अपने लिये नहीं तो कम से कम तुम्हारे लिये मुझे ऐसा करना चाहिये। पर नेक ध्यान दे कर तुम इस का उत्तर सुनो। हो सकता है कि इस के बाद फिर मुझे तुम से वार्तालाप मन खोल कर करने का अवसर न मिले, इस हेतु सब बातों को आज स्पष्ट रूप में तुम पर विदित कर देती हूं। तुम्हारे सुख के लिये भी मैं लोकलज्जा को हटा नहीं सकती। जो काम मैं अपने लिये नहीं कर सकती वह कदापि तुम्हारे लिये भी नहीं कर सकती। इस का कारण यह है कि अब मैं तुम में और अपने में कुछ भेद नहीं समझती। हमलोगों में अब कुछ अन्तर न रहा। प्रणय ने हमलोगों को अब एक बना लिया। अपने को अब मैं केवल तुम्हारी छाया मात्र मानती हूं। तुम ज्योति हो मैं प्रतिबिम्ब हूं। तुम आलोक हो मैं छाया हूं। तुम शब्द हो मैं प्रतिध्वनि हूं। तुम पुष्प हो मैं सुगन्ध हूं। तुम गिरा हो मैं भाव हूं। तुम जल हो मैं तरङ्ग हूं। तुम पानी हो मैं बुलबुला हूं। तुम आकाश हो मैं नीलिमा हूं। तुम तंत्री हो मैं सुर हूं। तुम प्राण हो मैं काया हूं। अतएव जो काम मैं अपने लिये नहीं करती वह तुम्हारे लिये क्योंकर करूंगी।

"मेरा अपना जो कुछ था रूप, गुण, यौवन, पवित्रता, प्रणय,

लज्जा, कुलकानि, प्रेम, तन, मन, प्राण सब कुछ तो तुम्हें दे चुकी, अब बाकी क्या है ? तुम्हें छोड़ कर अब मेरा निस्तार नहीं, किन्तु क्या करूं ? अपने लिये दूसरे को दुःखी क्योंकर करूं ? तुम्हारे साथ रहने से मुझे सुख तो अवश्य होगा, किन्तु बहिन की क्या दशा होगी ? नहीं ! नहीं ! विषाद की यंत्रणा मैं भोगूंगी, सब दुःखों को झेलूंगी किन्तु बहिन को दुःखी कदापि नहीं करूंगी। तुम नहीं जानते हो—स्त्रियों का अन्तःकरण अतल है। स्त्रियां सब कुछ सहन कर सकती हैं किन्तु सौत को नहीं। वे नहीं चाहती हैं कि उन के प्रियतम-प्रेम का कोई भाग लेनेवाला हो।

"अच्छा, जो भी, अब तो अपने मनोगत भावों को किसी पर प्रगट न करूंगी। अब मुझे आशा नहीं है कि हमलोगों का संयोग होगा। किन्तु मेरी यह बात मानना कि जिस में इस भेद को कोई जानने न पावे। इस गुप्त प्रेम की बात किसी पर खुलने न पावे। मैं तो अब पराये की अवश्य होऊंगी। किन्तु मेरे तन मन और तुम्हारे ही रहेंगे। आज तुम से मेरी अन्तिम प्रार्थना यही है कि तुम मेरे लिये दुःखी न होना। मुझे भय होता है कि इस दुःख को सह न सकोगे। किन्तु देखना, धीर पुरुषों जैसा इस दुःख को सह लेना। भूल कर भी, स्वप्न में भी कभी इस बात को मन में स्थान न देना कि प्राण देने से यह दुःख दूर होगा। मेरे लिये अपना प्राण गंवाने की चेष्टा कदापि न करना। मेरे इस अनुरोध की रक्षा करना। हो सकता है कि अब हमलोगों में साक्षात्कार न हो। क्योंकि तुम्हारे वियोग की यंत्रणा मैं अधिक दिन सह न सकूंगी।

"बहुत कुछ तुम से कह दिया। अब कुछ कहने को न रहा। इस से अधिक खोल कर मैं नहीं कह सकती। मेरे लिये आप चिन्ता न करें। अपने को भी सम्हालें। इस दुखद विषय की अधिक आलोचना व्यर्थ है। मेरी अन्तरात्मा कह रही है कि मुझे इस संसार

में अंब सुख नहीं है और न मैं अब यहां अधिक दिन ठहर हो सकती। मेरी संसार-यात्रा अब समाप्त हो चली।"

मैं ने कहा कि अपने वाक्य छुरिका से तुम ने मेरे कलेजे को जर्जरित कर दिया। हाय! मैं यह नहीं समझता था कि मुझे सुखी करने के लिये तुम इतना भी नहीं कर सकती। लोकापवाद से तुम इतनी भयभीत क्यों होती हो। मेरा एक अन्तिम विनय तुम मान लो।

मालती ने गम्भीर हो कर उत्तर दिया कि "स्त्रियों के लिये यह उचित नहीं है कि किसी को प्रसन्न करने के हेतु वे अपने मर्य्याद मान को छोड़ कर लोकापवाद सहें और स्वजनों को विषम आलोचना की आंच से दग्ध हों।"

घबड़ा कर मैं ने कहा कि तुम नीति, धर्म तथा विवेक की दोहाई दे कर मुझे पराभूत करना चाहती हो, किन्तु अपने कलेजे पर हाथ रख अनुराग को मध्यस्थ बना कर पूछो, वह क्या कहता है। मैं प्रेम की दोहाई देता हूं। तर्क को छोड़ कर हृदय से पूछो, वह क्या कहता है।

मालती सहम गयी और कानों पर हाथ दे कर बोली "नहीं, नहीं, ऐसा न कहो, ऐसा न कहो। मुझे क्षमा करो। अनुराग को दिखाई हुई राह पर चलने से, प्रेमप्रदर्शित पथ को अवलम्बन करने से मैं बेकाम हो जाऊंगी, मेरा सर्वनाश हो जायगा। सम्प्रति हृदय को मानने पर मेरा निस्तार नहीं होगा। विवेक ही के सहारे मुझे कुछ दूर तक चलने दो। अब मुझे अधिक लोभ न दिखाना। मेरी बुद्धि दुर्बल होती जाती है। साहस मुझे छोड़ता जाता है।"

मैं ने कहा "तुम सब ठीक कहती हो। किन्तु ऐसा उचित नहीं है कि अनुराग को विवेक दबा दे। प्रणय को विचार परास्त कर दे। विवेक एवम् विचार को सीमा के भीतर ही रहना उचित है। उन्हें ऐसा प्रभुत्व देना कदापि न चाहिये कि ये हम लोगों के हृदय को

कठोर बना दें, पवित्र अनुरागलतिका को वहां से उखाड़ कर पददलित कर दें। नीति की दासी प्रीति कदापि नहीं बन सकती। प्रेम अपना नियम आप बनाता है। वह किसी के अधीन नहीं है। अपने तर्क वितर्क एवम् कुतर्क को छोड़ो और मेरी बात मान लो। हठ करने से काम नहीं चलेगा। "नहीं! नहीं! नहीं!" कहती हुई मालती वहां से सवेग चली गयी।

मैं ने समझ लिया कि दुर्दिन निकट आ गये। तब से मैं ने मालती से इस विषय में कभी कुछ नहीं कहा। हम लोगों में प्रायः भेंट हुआ करती थी। किन्तु इस विषय में कोई बातचीत नहीं होती थी। बहुत दिनों तक मैं नाना प्रकार का यत्न करता रहा। परन्तु किसी में सफलता प्राप्त नहीं हुई। फिर देखते देखते मालती का विवाह भी स्थिर हो गया और विवाह का दिन भी निकट आ गया। किन्तु आशा ने अभी तक मेरा पीछा नहीं छोड़ा। अभी तक मेरे मन में ऐसा आता था कि हो सकता है कि हम लोगों के संयोग का कोई सामान हो जाय। अब कभी कभी ऐसा भी सोचता था कि यदि मालती का परलोक हो जाय तो अच्छा है क्योंकि ऐसा होने से उस का धर्म नहीं जायगा और दूसरे की नहीं होगी।

जब मुझ से यह दुःख सहा नहीं गया तब घबड़ा कर मैं ने सब बातें अपनी पत्नी से कहीं। सुन कर वह चिहुक पड़ी। बहुत देर तक चुप रह कर उस ने कहा कि भला यह कौन जानता था कि मालती ऐसी चतुरी है, जो अपनी सहेलियों से बोलते लज्जा करती थी, कौन विश्वास करेगा कि वह अपने लिये एक नायक ढूंढ़ कर प्रेम का खेल खेलेगी। तुम कहते हो इसी से सच मानना पड़ता है, नहीं तो कोई स्वप्न में भी इसे सत्य नहीं मान सकता था। किन्तु तुम्हें ऐसा करना उचित नहीं था। इस राह पर चलते तुम्हें उसे रोकना चाहता था। मेरी समझ में सब दोष तुम्हारा ही है। किन्तु तुम्हें दोषी ठहराने का मुझे क्या अधिकार है? हाय! मालती!

मालती ! मालती ! यह तू ने क्या किया ? तेरा नारी-जन्म व्यर्थ गया। इस पाप के बोझ को तू क्योंकर वहन करेगी। इस से तो तेरा मर जाना अच्छा था। हाय ! मैं क्या करूं ? क्योंकर मा से कहूं ? यदि दूसरे की बात होती तो अवश्य कह देती और उस का कुछ उपाय भी करती। किन्तु क्या हो ? नहीं ! नहीं ! इस में मेरा कुछ वश नहीं है।

"हाय ! तुम ने यह क्या किया ? कहने की इच्छा नहीं रहने पर भी मुझे कहना ही पड़ता है। मालती तो अबोध बालिका है, हानि लाभ का उसे कुछ ज्ञान नहीं है; लोक की रीति वह नहीं जानती; धर्म का उसे विचार नहीं है; अपने कर्त्तव्याकर्त्तव्य को वह नहीं समझ सकती; परन्तु तुम तो विज्ञ हो, लोक परलोक दोनों को जानते हो, सब को राह बतलाते चलते हो, भला तुम्हें तो एक बार विचारना चाहता था कि तुम यह क्या कर रहे हो। सुन्दर चन्द्र में कलङ्क का छाप क्यों देते हो ? कमल रूपी सुकुमार बालिका को प्रलोभ के तवे से क्यों सेंकते हो ? उस के नीलोज्ज्वल सुहाग गगन में अनुचित प्रणय को क्यों जलाते हो ? तुम नहीं जानते कि हम लोगों का मन पुरुषों के सदृश चञ्चल नहीं होता। जो प्रतिमा हम लोगों के हृदयमन्दिर में विराज जाती है वह वहां से हटाये नहीं हटती। जो मूर्ति हम लोगों के हृदयपट पर अङ्कित हो जाती है वह पाषाणअङ्कित चित्र सी चिरस्थायी रह जाती है। नीर पर लिखे हुए अक्षर सा हम लोगों का प्रेम नहीं होता कि तनिक सा पवन स्पर्श से मिट जाय। हम लोगों के प्रणय को बालू की भीत न समझो कि बनते बनते ही लीन हो जाय। हम लोगों का अनुराग दामिनी का दमक नहीं है कि देखते देखते ही अदृश्य हो जाय। हम लोगों का लगन पारिजात पुष्प (शृङ्गारहार का फूल) नहीं है कि विकसित होते ही धरातलशायी हो जाय। मालती अब तुम्हें भूल नहीं सकती और न उस का व्याह हो

तुम्हारे साथ हो सकता है। तुम ने परिणाम पर ध्यान नहीं दिया। हाय! मालती को इस संकट में डालते, इस बला में फँसाते, उसे प्रलोभ दिखाते तुम्हें ग्लानि, लज्जा, भय और सङ्कोच नहीं हुआ? हाय! यदि मा सुन पावेगी तो वह क्या कहेगी। किन्तु मैं क्या बक रही हूँ? आज मैं ने आप को पहचान लिया। आप की पूर्व की एक एक बात और व्यवहार मेरी समझ में आने लगी। जो हो, इस में कुछ आप का दोष नहीं है सब मेरे भाग्य का दोष है। मेरी दशा सांप छुछुन्दर की सी हो गयी। हाय! हाय! यह दुःख क्यों कर सहूंगी?"

इतना कहते कहते मेरी भार्य्या का गला भर आया। वह फूट २ कर रोने लगी। मैं अवाक हो गया। कुछ कहते न बना। सोचने लगा कि इस से क्यों कहा। मुझे अपनी करनी पर पछतावा होने लगा। पहले मैं ने नहीं समझा कि यह सम्बाद सुन कर यह इतना दुःखी होगी।

जिस दिन मैं ने अपनी स्त्री से यह बात कही, उस दिन से उस की अवस्था एकदम और की और हो गयी। उस की कान्ति बदल गयी। उस का आनन पीला पड़ गया और वह दिनोंदिन दुर्बल होने लगी। मुझे ज्ञात हुआ कि उसे मर्मान्तिक पीड़ा हुई और उस के हृदय में असह्य आघात लगा।

हर ओर से निराशा ने मुझे आ घेरा। इधर मालती के व्याह का सब सामान ठीक होने लगा। उधर मेरी भार्य्या का सुखमयङ्क विषाद रवि की ज्योति से मलिन होने लगा। मालती की दशा क्या कहूं? उस में सौन्दर्य्य नहीं रहा। उस की वह लावण्यता जाती रही। शरीर दुर्बल होने लगा। आनन की कान्ति बिगड़ गयी। उस की शोभा हेमन्तकालीन कमल सी हो गयी। इसे देख कर मुझे भय होने लगा। अपने पर मुझे क्रोध भी होने लगा। मैं भली भांति जानता था कि मालती को इस दशा पर मैं ने ही पहुंचाया है।

फिर कहना पड़ता है कि प्रेमी बन कर मैं उस का घातक निकला। अपने सुख के हेतु मैं ने उसे दुखिनी बनाया। अपने स्वार्थ के लिये दूसरे के जीवन को भार किया।

कभी कभी मुझे मालती पर भी क्रोध होता था। सोचता था कि वह अपनी माता से क्यों नहीं कहती? मुझे पूर्ण विश्वास था, मुझे दृढ़ आशा थी और आज भी है कि यदि मालती मुंह खोल कर अपनी मा से कहती तो हम दोनों का संयोग अवश्य हो जाता। परन्तु सब से अधिक मेरा जी अपने साढ़ू पर जला। मैं निश्चय जानता था कि उन्हीं के कारण हम लोगों को इतना कष्ट उठाना पड़ता है। हम लोगों के वर्त्तमान तथा भविष्य विपद के मूल कारण वही हैं। यदि वह चेष्टा नहीं करते, यदि वह मेरी निन्दा नहीं करते, मेरे ऊपर से लोगों का विश्वास अपने उद्योग से हटा नहीं देते, यदि छल कर मालती के चचा और उस की माता को मालती का विवाह अपने साथ करने और मेरी बात न मानने पर राजी नहीं करते, तो आज मुझे इतनी विपत्ति क्यों झेलनी पड़ती। आज मेरी इतने दिनों की आशा पर पानी क्यों फिर जाता? आज मेरा चिर-मनोरथ धूल में क्यों मिल जाता? आज मुझ पर बिना मेघ का वज्रपात क्यों होता? और मेरे गले की माला मालती आज दूसरे के पैरों पर क्यों लोटती? उस का मुख मलीन क्यों होता? उस की पवित्रता में धब्बा क्यों लगता? हम लोगों का सौभाग्यरवि अस्त क्यों होता? दुर्भाग्य रूपी अन्धकार क्यों घिरता?

घृणा, अनुताप, भय, चिन्ता, शोक, ग्लानि तथा निराशा के चपेट में पड़ कर मैं व्याकुल होने लगा। मेरा जीवन मेरे लिये बोझ हो गया। आत्मघात की इच्छा मेरे मन में प्रबल होने लगी। घबड़ा कर मैं ने अपने मित्र के साथ महात्मा के निकट जाने को स्थिर किया। मन में आया कि हो सकता है कि वह कोई उपाय बता दें। आशा अब भी साथ नहीं छोड़ती थी। एक बार ऐसा ध्यान हुआ

कि यदि वह सहायता करें तो अब भी कुछ सफलता प्राप्त हो सकती है—अभी कुछ बिगड़ा नहीं है। यह भी सोचा कि यहां से हट हो जाना उचित है क्योंकि दूर रहने से मालती का विवाह मुझे अपनी आंखों से देखना नहीं पड़ेगा। मैं अपनी आंखों से मालती को पराये की होते नहीं देख सकूंगा।

नवम कल्पना ।

विवाह ।

> *" Death and black fate approach !*
> *'tis I must bleed !*
> *No refuge now, no succour from above."*
>
> *Homer's Iliad.*

चन्द्रदेव उज्ज्वल आकाश में विराजमान हैं। चकोर उन की ओर एक दृष्टि से देख रहा है। ज्योत्स्ना मेरे हृदयताप को बढ़ा रही है। मन्दानिलच्युत मुकुल की सुगन्धि को अपहरण कर मेरे ऊपर न्योछावर कर रहा है। किन्तु कोक कोकनद की दशा मेरे होने के कारण मैं आपे से बाहर हूं। उन के लिये तो शोकनिशा का प्रभात होता है। किन्तु मेरी इस विपत्ति-रात्रि का प्रभात कहां होगा ? संसार मुझे शून्य ज्ञात होता है। चारों ओर से घोर अन्धकार रूपी निराशा ने घेर लिया है। जड़ प्रकृति किसी के दुःख से दुःखी नहीं होती। मेरे दुःख से रजनीपति का आनन किञ्चित् भी मलीन नहीं है। चांदनी वैसे ही खिलखिला रही है। फूल वैसे ही विकसित हैं। समीर वैसा ही स्वच्छन्द बह रहा है। जाह्नवी वैसी

हो लहरा रही है। किन्तु मेरा मन वैसा प्रफुल्लित नहीं है। मेरे हृदय में चिन्तानल धधक रहा है। मेरी इच्छा यही होती है कि किसी प्रकार अपनी जान दे दूं। मुझे ज्ञात होता है कि इस जीवन में अब मुझे सुख नहीं है। मालती अब पराई हो गयी। अब प्राणों को रख कर मैं क्या करूंगा।

आज अपने मित्र के साथ महात्मा के निकट बैठा हूं। मुझे अधिक चिन्तित देख कर मेरे मित्र ने कहा कि तुम ऐसा अधीर क्यों हो रहे हो ? क्या संसार में मनुष्य की सब वासना पूरी होती है ? जिस बात में अपना वश नहीं उस के लिये चिन्ता करनी व्यर्थ है। तुम ने तो इतनी चेष्टा की परन्तु जब इच्छा पूरी नहीं हुई तब सोच करने का क्या फल है ? धैर्य धरो। दुःख को साहस से सह लेना मनुष्य का धर्म है।

मैं—मेरे दुःख का अनुमान तुम नहीं कर सकोगे। क्यों व्यर्थ बक रहे हो ? मालती दूसरे की हो, यह मुझ से कदापि सहा नहीं जायगा। मैं अब यही चाहता हूं कि विवाह के पहले वह मर जाय वा कोई ऐसा विघ्न हो जाय कि उस की शादी इन के संग न हो। यदि उस का ब्याह किसी दूसरे के संग होता तो मैं इतना दुःखी नहीं होता।

मित्र—अनहोनी क्या सोचते हो ? सब तो तुम ने अपनी आंखों से देखा। अब ब्याह होने में क्या बाधा होगी ? मैं समझता हूं कि अब तक उस का ब्याह वहां हो गया होगा। तुम उस का ध्यान अब एकदम छोड़ दो। किसी दूसरी वस्तु में अपना मन लगाओ।

मैं—मेरा मन अब बहलनेवाला नहीं है। इस पर अब अणु-मात्र भी मेरा अधिकार नहीं है। मैं समझता हूं कि अभी तक उस का ब्याह नहीं हुआ है और न होगा।

मित्र—यह तुम्हारी भूल है। मनुष्य जिस काम को नहीं

चाहता उस के हो जाने पर भी समझता है कि वह नहीं हुआ। वह अपनी आंख तथा कान का भी विश्वास नहीं करता। किन्तु यह उस की केवल दुर्बलता है। तुम एक तार भेज कर सम्बाद क्यों नहीं लेते? तुम अपने कलेजे को कड़ा करो, यह आघात तुम्हें सहना ही पड़ेगा। जान रखो कि अब मालती तुम्हारी किसी प्रकार नहीं हो सकती।

मैं—अच्छा तार भेज कर पूछ लेता हूं। परन्तु मेरे मन में अभी तक यही आता है कि किसी न किसी कारण वश मालती का यह विवाह-सम्बन्ध टूट गया।

मित्र—अब क्या व्यर्थ की बातें सोच रहे हो। आशादेवी तुम्हें यह प्रलोभ दिखा रही हैं। आशा की बातों में न भूलो, तुम्हें बहुत दुःख उठाना पड़ेगा। नित्य प्रति नया नया मनोहर रूप दिखा कर यह तुम्हें अपनी ओर आकर्षित करेगी। इस देवी की कृपा से मनुष्य की आंखों में चकचौंध सी लग जाती है, बुद्धि थकित और मन्द हो जाती है, चित्त स्थिर नहीं रहता, सत्य, मिथ्या, अच्छा बुरा, कर्त्तव्या-कर्त्तव्य की विवेचना जाती रहती है। इस के पेच में पड़ कर मनुष्य होनी को अनहोनी और अनहोनी को होनी अनुभव करने लगता है। जभी निराशा के सहारे मनुष्य को अपनी यथार्थ अवस्था का ज्ञान होने लगता है तभी यह पीछे से आकर कान में कोई ऐसी बात कह जाती है और ऐसा ऐसा सुगम रास्ता अपने मनोरथ की सिद्धि का बताने लगती है कि इच्छा नहीं रहने पर भी मनुष्य को विश्वास हो जाता है। उस के मलिन आनन पर नयी कान्ति दौड़ जाती है, उस की मुरझाई हुई हृदयलता बात की बात में लहलहा उठती है और उस के मृतवत् देह में नये जीवन का संचार हो जाता है। जिस के सहारे वैद्य अर्द्ध मृतक रोगी की नाड़ी हाथ में ले कर चन्द्रोदय के व्यवहार का विधान करता है और मन में सोचता है कि यदि आज की रात कटी तो कल रोगी चंगा हो जायगा। जिस

की बातों में भूल कर प्राणदण्ड से दण्डित कैदी सोचता है कि किसी प्रकार मैं सूली से अवश्य बच जाऊंगा। शरदकाल आजाने पर भी जिस के कथनानुसार, प्रलोभ में पड़ कर, सूखता हुआ धान का खेत देख कर कृषक मेघशून्य आकाश की ओर दृष्टि डाल कर सोचता है कि आज नहीं तो कल वृष्टि अवश्य होगी, उसी कुहकिनी, मायाविनी, मोहिनी आशा सुन्दरी की बातों में पड़ कर तुम विचार रहे हो कि मालती का विवाह अभी तक नहीं हुआ है। भविष्य की ही आशा में मनुष्य सुखी रहता है। मनुष्य कभी सुखी नहीं है किन्तु सदा आशा करता है कि वह सुखी होगा। तुम मालती के प्रेम को अभी भी छोड़ दो।

मैं—तुम नहीं जानते हो कि क्या कह रहे हो। अपनी बात तुम भूल गये। अपनी दशा का तुम्हें स्मरण नहीं है। आज के दिन की बात है कि इसी अनुराग के फन्दे में पड़ कर विकल चित्त आठ आठ आंसू रो रहे थे। सामने किताबें खुली रहती थीं और ध्यान उस प्रेयसी की ओर रहता था। घंटों एक ही पृष्ट खुला रहता था। घर में बैठे दिन दिन भर रोया करते थे।

दूसरे को उपदेश देना सहज है, किन्तु उसे व्यवहार में लाना कठिन है। जो तुम कहते हो उसे सभी जानते हैं, किन्तु काम में लाने के समय अवश्य भूल जाते हैं। कहो, अपने सर आ पड़ने से कौन इस के अनुसार काम करता है। कहने वो करने में बड़ा भेद है। अभी तक ऐसा वैज्ञानिक उत्पन्न नहीं हुआ जो अपने दांत की पीड़ा भी शान्त भाव से सहन कर सके। जो शोक से कातर है उसे सांत्वना देने के लिये सभी प्रस्तुत हो जाते हैं। किन्तु ऐसा अभी तक किसी को नहीं पाया जो उसी दुःख को अकातर भाव से आप सह ले। प्रेम को परित्याग करना क्या तुम ने सहज समझ लिया है। तरङ्गित नदी के वेग को बालू के बांध से रोकना, अग्नि की भीषण ज्वाला को मोम के घरौन्दे में बन्द करना, सुमेरु को चलायमान

करना, नक्षत्र की गति को निरोध करना, समय के प्रवाह को अपने इच्छानुसार रोकना सहज हो सकता है, किन्तु दृढ़ प्रतिज्ञा से प्रेम का दमन करना सहज नहीं है। प्रेम करने पर भी ज्ञात होता है कि तुम ने प्रेम के गूढ़ तत्वों को नहीं जाना, इसी से ऐसा कहते हो।

तुम ठहरो, अब अधिक बातें न करो। तुम्हारे कहने से मुझे विश्वास हो रहा है कि मालती अब मेरी नहीं है और न वह मेरी हो सकती। वह दूसरे की हो चुकी। इस जीवन में अब मुझे सुख शान्ति नहीं है; अब मेरा जीना व्यर्थ है। आज जिस प्रकार हो मैं आत्महत्या अवश्य करूँगा। अब यह दुःख सहा नहीं जाता। हाय! हाय! हाय! क्या करूं।

मित्र—हैं! हैं! यह तुम क्या कह रहे हो? यह घोर पाप है। इस ध्यान को एक मुहूर्त्त भी अपने मन में ठहरने न दो।

महात्मा—मैं बहुत देर से तुम लोगों की बातें ध्यानपूर्वक सुन रहा हूं। किन्तु अब बोले बिना रहा नहीं जाता। तुम यह तो कहो कि बिना आज्ञा पाये, बिना अवधि पूरी हुए, तुम्हें अपने कर्त्ता के सम्मुख जाने का क्या अधिकार है? यह घोर भयानक परामर्श सुन कर मेरा हृदय दहल गया। क्या अभी तक तुम्हें अपनी पहली करनी पर पछतावा नहीं होता कि तुम आज ऐसी बातें सोच रहे हो? तुम्हें अपने सुख दुःख का भले ही इतनी चिन्ता न हो किन्तु तुम्हें क्या अधिकार है कि दूसरे के मन को अपने इस अनुचित कार्य्य से दुःखी करो और हम लोगों को विपत्ति में डालो।

मैं—क्या कहूं? कुछ कहते नहीं बनता। परन्तु अब मेरे सब मनोरथ धूल में मिल गये। मेरा कोई यत्न काम में न आया।

"उलटी पड़ गयीं सर्व तदवीरें;
कुछ न यत्न ने काम किया।"

अब तो रह रह कर हृदय में यही प्रश्न उठता है कि क्या करना

मेरा कर्त्तव्य है ? मरूं अथवा बचूं ? अनन्त दुःख को भोगने के लिये अपने प्राणों की रक्षा करूं अथवा आत्महत्या कर अपने इस दुःसह दुःख से अपनी जान छुड़ाऊं ? क्या निठुर प्रारब्ध के तीक्ष्ण वाण तथा कठोर चपेटाघात को मन ही मन शान्त भाव से सह लेना अच्छा है अथवा विकट विपत्ति कटक के विरुद्ध शस्त्र धारण कर सदा के लिये इन्हें पराजित करना ? मरना तो और कुछ नहीं केवल सदा के लिये सुख से सो जाना है। मृत्यु तो एक ऐसी प्रगाढ़ निद्रा है जो कभी भङ्ग नहीं होती। इस निद्रा के अङ्क में विश्राम लेने पर मनुष्य फिर कभी जागता नहीं। इस प्रगाढ़ निद्रा के सेवन करने से हम लोगों की वेदना की इति श्री हो जाती है; विपत्तिसागर के पार हमलोग चले जाते हैं और हमलोगों का अनन्त दुःख दूर हो जाता है। अतएव मैं समझता हूं कि इस सुख की प्राप्ति के लिये मनुष्य को भगवान् से प्रार्थना करनी चाहिये। तब मरना मानो सोना है। किन्तु सोने पर तो मनुष्य स्वप्न देखता है। जिस चिन्ता में रहता है उसी के अनुरूप स्वप्न देखता है। भय, शोक, सन्ताप तो स्वप्न में भी पिण्ड नहीं छोड़ते। तब क्या मृत्यु निद्रा के वशीभूत होने पर भी मनुष्य स्वप्न देखता है ? यहीं तो एक कठिनता दीख पड़ती है। कौन कह सकता है कि मृत्यु-निद्रा की गोद में विश्राम लेने पर कौन सा स्वप्न देखूंगा। यही सोच कर तो अब जी हिचकता है। जब इस नश्वर काया को परित्याग कर प्राण-वायु दूसरे लोक की यात्रा करेगी तो न जाने क्या क्या कष्ट इसे उठाना पड़ेगा। क्या मरने पर प्राण चेतना रहित हो जाता है ? ऐसा तो ज्ञात नहीं होता। जब एक दुःख को छोड़ कर दूसरे का सामना करना पड़ा, तब फिर मरने से क्या लाभ हुआ ? यही कारण है कि मनुष्य आजन्म दुःख झेलता है, किन्तु मरने का नाम नहीं लेता, आत्महत्या नहीं करता। यदि मनुष्य भविष्य को जान लेता तो कब का नहीं मर गया होता। वर्त्तमान दुःख से भविष्य दुःख निस्सन्देह अधिक दुःखद

होता है। यदि छूरा मारने अथवा विष पान करने ही से दुःख दूर हो जाता तो संसार में मनुष्य इतनी यन्त्रणा क्यों सहता ? ज्ञात होता है कि मरना इतना सहज नहीं है। मृत्यु के पश्चात् क्या क्या दुःख भोगने पड़ते हैं, इसे कोई नहीं जानता। इसी से इच्छा होने पर भी मनुष्य मरने से डरता है। उस अज्ञात देश से कोई यात्री फिर कर नहीं आया, जो वहां का यथार्थ सम्वाद दे सके। इसी से तो लोग वहां जाने से डरते हैं। यही विषम व्यापार लोगों को चक्कर में डाल देता है। अतएव मनुष्य अपने वर्तमान सन्ताप, दुःख, विपत्ति एवम् यंत्रणा को दम साध कर कलेजे पर हाथ दिये सह लेता है किन्तु दौड़ कर वहां नहीं चला जाता, जहां ज्ञात नहीं है कि उसे क्या सहना पड़ेगा, और किन किन विपत्तियों का सामना करना पड़ेगा। यही विचार हमलोगों को कादर बना देता है; दृढ़ प्रतिज्ञा का पक्का रंग भी इस शंका तथा सन्देह के सामने फीका पड़ जाता है और बड़े बड़े हौसले इस ध्यान से धूल में मिल जाते हैं; वासना के प्रबल प्रवाह के मुंह को यह पापाण रूपी आशंका मोड़ देती है। तब क्या मैं नहीं मरूं ? क्या आजन्म इस यंत्रणा को भोगा करूं ? देखता हूं कि अब मरने से भी भय होता है। मेरे भाग्य में अब यह सुख भी नहीं है। इधर मरने से डरता हूं उधर जीने का जी नहीं चाहता। हाय ! क्या करूं ?

इसी सब सोच विचार में रात बीत गयी। प्रभात समय देखा कि आकाश मेघ से ढका हुआ है। चारों ओर कुछ अन्धकार छा रहा है। जोर से हवा चल रही है। साधारण वृष्टि भी हो रही है। ज्ञात हुआ मानों मेरे दुःख से दुःखी हो कर, मेरे संग सहानुभूति प्रकट करने के लिये, प्रकृति भी आंसू बहा रही है। देखने से जान पड़ा कि पिछले पहर रात में प्रकृति ने यह रूप धारण किया, क्योंकि आधी रात तक तो चारों ओर चन्द्रिका छिटक रही थी।

पहर दिन चढ़ने पर मैं ने अपने ससुराल से एक कहार के पास

तार भेजा। किन्तु तार भेजने पर भी चित्त स्थिर नहीं हुआ। नाना प्रकार की चिन्ताएं मन में उठती गयीं। मैं ने सोचा कि न जाने तार द्वारा क्या सम्वाद आता है। यदि मालती का विवाह हो गया हो तो क्या करूंगा? मेरा तो बना बनाया सब खेल बिगड़ जायगा। फिर ध्यान में आया कि मालती इतनी जल्दी पराये की कैसे हो जायगी? नहीं! नहीं! मालती कदापि पराये की नहीं होगी। प्रत्युत्तर की आशा में प्राण व्यग्र हो गये। एक एक शब्द पर हृदय धड़कने लगता था। जब मनुष्य चिन्तित एवम् विकल रहता है तो जागरित अवस्था में भी वह कितना स्वप्न देखा करता है, क्योंकि जगे रहने पर भी उस की ज्ञान-इन्द्रियां सुषुप्ति ही की अवस्था में रहती हैं।

कभी सोचता था कि जान पड़ता है अभी तक उस का विवाह नहीं हुआ, न तो उत्तर अब तक अवश्य आ जाता। साथ ही साथ निराशा कहती कि विवाह अवश्य हो गया है, किन्तु मुझे दुःखी करने के डर से वह उत्तर नहीं देते। मैं ने विकल हो कर कहा "अरी! अधम आशा मुझे इतना क्यों सता रही है। तेरी रुचि के विरुद्ध अभी तक मैं ने कोई काम नहीं किया। अनुकूलता से सभी सन्तुष्ट होते हैं, किन्तु तू मुझे इतने पर भी व्यर्थ ही झंझट में डालती रही है। जिसे पूरा करने की तुझ में शक्ति नहीं है, उस के लिये तू वचन क्यों देती है। क्या तू नहीं जानती कि विश्वासघात घोर पाप है? क्या तू ने नहीं सुना है कि:—

"आस दिलाय करे जो निरास तो ऐसे पिसाच के पास न जैये।"

पर देख, इतने पर भी मैं तेरा साथ नहीं छोड़ता। हाय! अब क्या करूं, यदि आशा त्याग करूं तो क्या करूं? क्या निराशा के अधीन रह कर अपना जीवन निर्वाह करूं? नहीं ऐसा नहीं हो सकता, क्योंकि आशा ही जीवन है। जिसे आशा नहीं वह मृतक है। यदि आशा नहीं रहती तो मनुष्य दुःख का सामना क्योंकर कर सकता!

• इसी चिन्ता में था कि पदध्वनि सीढ़ियों पर सुनाई दी और देखते देखते किसी ने द्वार पर कराघात किया। दौड़ कर मैं ने कपाट खोल कर देखा कि सामने तार का हलकारा खड़ा है। मुझे देखते ही उस ने एक निकाल कर मेरा नाम लिया। अब तो काठ का पुतला जैसा मैं चुप खड़ा रह गया। नहीं कह सकता कलेजा धड़कता था वा नहीं, क्योंकि कलेजे पर दम रुक गया था, कुछ देर तक सांस नहीं आती थी। उस समय मैं क्या सोचता था यह भी नहीं कह सकता। देर होते देख हलकारे ने रसीद पर दस्तखत करने को कहा। कलम उठाते हाथ थर थर कांपने लगा। इसी समय मेरे मित्र भी मेरे निकट आ गये। मुझे चुप देख उन्हों ने तार पढ़ने को कहा। तार से आवर्ण उन्हों ने हटा दिया, मैं ने ढाढ़स बांध उसे पढ़ा। हाय! बची बचाई आशा भी जाती रही! देखा कि सर्वनाश हो चुका है। क्या यही सुनने को अभी तक मैं जीता था ?

मुझे अपनी आंखों पर भी विश्वास नहीं होता था, क्योंकि तार में लिखा था कि मालती का विवाह कल रात में हो गया। क्या सम्भव है कि मेरे स्वजन मुझे धोखा दें ? भला मेरे संग वह दग़ा क्यों करेंगे ? हाय! हाय! हाय!

अब क्या था ? धैर्य्य का बांध एकदम टूट गया ; ज्ञात हुआ विपत्ति की बाढ़ मुझे एकदम बहा ले जायगी। मुझे सकता सा हो आया। हृदय में आग सी लग गयी। बदन थर थर कांपने लगा। आंखों से अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी। सिसकते सिसकते हिच-कियां बंध गयीं। मन में क्या क्या विचार आये आज स्मरण नहीं है। मुझे जान पड़ता था कि मेरी बुद्धि ठिकाने नहीं है। मेरी दशा पागल की सी हो गयी थी। कुछ ठीक नहीं कर सका कि क्या करूं। महात्मा के पैरों पर गिर कर मैं अधीर हो रोने लगा। मेरी चारों ओर क्या हो रहा है इस का मुझे ज्ञान नहीं रहा। मस्तिष्क

रूपी आसन पर बुद्धि तलमलाती हुई जान पड़ने लगी। और ऐसा ज्ञात हुआ कि केवल साधारण भी मानसिक झटका लगने से वह अपने स्थान से च्युत होकर उन्मादसागर में निमग्न हो जायगी। क्योंकि मेरा सुख स्वप्न आज भङ्ग हुआ। मेरे जीवन का एकमात्र आलोक आज निर्वाण हुआ।

बहुत देर के बाद जब मुझे कुछ ज्ञान हुआ तब मैं ने व्याकुल हो कर कहा कि "हाय! हाय! यह क्या हुआ? अन्त में मेरे भाग्य में यही बदा था? किससे कहूं? हा विधाता! क्या तुम्हें अन्त में यही करना था? तुम उन कामों को क्यों बिगाड़ते हो जिन के सुधारने में तुम असमर्थ हो? अन्त में क्या यही होना था? किसी ने मेरी सहायता नहीं की। भला अब कौन किस पर विश्वास करेगा! क्या मेरे सुख स्वप्न सब मिथ्या निकले? अब तो जो होना था सब हो चुका। मैं जानता हूं—मैं अनुभव करता हूं—अब संसार मेरे लिये शून्य हो गया। मेरे दुःख की सीमा न रही। करुणा का आजन्म मुझे सहवास रहा। आनन्द को अब मैं अनुभव नहीं कर सकता। मेरे अन्तःकरण के भीतर अब मेरी आत्मा की मृत्यु हो गयी। हाय! मैं क्या करूं? मेरा कर्त्तव्य क्या है? इस संसार में अब मैं अकेला रह गया। मेरी अनुभवशक्ति जाती रही। जिन वस्तुओं का प्रभाव मेरे आसपास के लोगों पर पड़ता है, उन सभों के लिये मैं चेतना-रहित हूं। हाय! हाय! क्या अनुभवरहित होने से भी बढ़ कर इस संसार में कोई दुःख है? मैं अनुमान नहीं कर सकता। जब अनुभव नहीं रहा तो अनुमान ही कैसे हो? भयानक संकट में मैं पड़ा हूं। यह बात तो मैं भली भांति जानता हूं कि अब मेरा निस्तार नहीं है। अनन्त दुःख के सिवाय अब मुझे किसी ओर कुछ दिखाई नहीं देता। मृत्यु! अब मेरी सहायता कर। मेरा दिल हाथों से निकल गया। प्यारे! अब तुम यहां से जाओ। मुझे यहीं छोड़ दो। मैं कहीं चला जाऊंगा। मैं ऐसे स्थान में

जाऊंगा, जहां मेरा पता किसी को न मिले। तुम मेरे घरवालों से कह देना कि वे लोग अब मेरा आसरा न करें। जिस के विचार में जो आवे करे। किसी से अब मुझे कोई सम्बन्ध नहीं रहा। तुम जावो। इसी क्षण मैं यहां से चला।

मित्र—यह क्या कहने लगे? तुम कहां जावोगे? मैं तुम्हारे घर जा कर क्या कहूंगा? तुम्हारे घरवालों को मैं क्या उत्तर दूंगा? तुम मेरे साथ यहां आये हो। यहां से फिर कर तुम घर चलो। वहां से तुम्हारी इच्छा जहां हो वहां जाना। वहां मैं तुम्हें निषेध नहीं करूंगा। किन्तु यहां तुम्हें अकेला छोड़ कर मैं नहीं जा सकता और न तुम्हें कहीं जाने दे सकता। जैसे तुम्हें साथ ले आया हूं वैसे ही तुम्हें तुम्हारे घर तक पहुंचा दूंगा; फिर तुम्हारे जी में जो आवे वही करना। यहां बखेड़ा बढ़ा कर मुझे बखेड़े में न डालो। रात से तुम्हें इतना कह रहा हूं, किन्तु तुम्हारी समझ में क्या हो गया है कि एक बात भी नहीं मानते हो। अब तुम्हें अधिक समझाना व्यर्थ है; समय ही तुम्हें शिक्षा और धैर्य देगा। किन्तु देखता हूं कि शिक्षा का प्रभाव एकदम तुम पर नष्ट हो गया। पढ़ लिख कर तुम ने क्या किया? शिक्षा एवम् बुद्धि को किस दिन काम में लावोगे? इन से अब कब लाभ उठावोगे? तुम से अधिक क्या कहूं? सुनो, जिस की कोई औषधि नहीं उस की चिन्ता व्यर्थ है। जो होना था सो हो गया, अब वृथा सोच क्यों कर रहे हो? अपने मन को सम्हालो। ऐसा करने से काम नहीं चलेगा। मेरी बातें मान लो।

मैं—जिस की आंखें ज्योतिहीन हो गयी हैं वह कदापि नहीं भूल सकता कि नेत्र को खो कर कैसी अमूल्य सम्पत्ति गँवा बैठा है। उस पर कैसा दुःख बीत रहा है इसे दूसरा क्या अनुभव कर सकता है? दूसरे के दुःख को अनुभव करना कठिन है। तुम से क्या कहूं, सब कुछ जान कर भी तुम अनजान हो रहे हो। भाई!

अब मुझे अधिक न सतावो। मुझे छोड़ दो। किसी प्रकार मैं घर पर अब नहीं जा सकता। घर की सुधि आते ही कलेजा धड़कने लगता है। जान पड़ता है, गृह मेरे लिये अब श्मशान है। किस के लिये घर जाऊं? किस सुख के लिये संसार का बोझ अपने माथे पर उठाये फिरूं? किस आशा पर अपने जीवन को धारण करूं? इस से तो यही अच्छा है कि संसार को छोड़ कर विरक्त हो बन बन मारा फिरूं।

मेरे मित्र ने व्याकुल हो कर महात्मा से कहा कि इन को आप रोकिये। इन्हें यहां छोड़ अकेला जा कर मैं इन के घरवालों के सामने कौन सा मुँह दिखलाऊंगा?

महात्मा ने मेरी ओर फिर कर कहा कि "दुःख से इतना कातर क्यों होते हो? मनुष्य का धर्म है कि विपद आने पर धैर्य की सहायता ले। तुम से मैं ने पहले भी कहा था कि दुःख से मनुष्य को कदापि भय करना नहीं चाहिये। सुख दुःख कोई स्वतन्त्र वस्तु नहीं है। संसार-क्षेत्र में मनुष्य को इन का सदा सामना करना पड़ता है। संसार-यात्रा में इन से सर्वदा साथ करना पड़ता है। चिरकाल तक ये किसी के सहचर नहीं रहते। विज्ञ का यही काम है कि इन से पराजित न हो। तुम्हारी विपत्ति के संग मेरी पूरी सहानुभूति है। किन्तु पूर्व-सञ्चित कर्मानुसार दुःख सुख रूपी फल का हमलोगों को स्वाद अवश्य लेना पड़ेगा। भला कहो तो, नर जन्म पा कर, मनुष्यतन धारण कर, किसे दुःख भोगना नहीं पड़ा? देवता भी मनुष्यों के संसर्ग से दुःख झेलते हैं। घर छोड़ कर तुम क्या करोगे? घर छोड़ने से तुम्हें क्या लाभ होगा? अपने स्वजनों को, अपने घरवालों को दुःखी करने के सिवाय तुम क्या लाभ उठावोगे? मनुष्य स्वतन्त्र कहे जाने पर भी यथार्थ में स्वतन्त्र नहीं है। अपने कर्म, अवस्था, कर्त्तव्य तथा देश काल के वह अधीन है। क्या अपने घरवालों की ओर तुम्हारा कोई कर्त्तव्य

नहीं है? क्या उन का आसरा तोड़ना, उन्हें घोर विपत्तिसागर में डुबोना, उन की आशा पर पानी फेरना तुम्हें उचित है? तुम्हें परहित व्रत साधन का उपदेश क्या मैं ने नहीं दिया है। परहित रूपी यज्ञानल में अपनी आत्मा तथा स्वार्थ की आहुति देने का उपदेश हम ने क्या तुम्हें नहीं दिया है? क्या अपने सुख के लिये दूसरे को दुखी करना ही परोपकार है? तुम ने क्या नहीं सुना है कि दान एवम् परोपकार का प्रथम अभ्यास घर ही में आरम्भ होता है?

"गृहस्थ-आश्रम में परहित-व्रत साधन का सुयोग अधिक प्राप्त होने ही के कारण यह आश्रम सब आश्रमों में श्रेष्ठ गिना जाता है। दूसरे का दुःख निवारण करने का यत्न करो। दूसरे के दुःख को अपने हृदय में अनुभूत कर पराये के संग सहानुभूति प्रकट करो। अपने लिये दूसरों को दुःखी करने का उपाय क्यों सोचते हो? अपने घरवालों तथा मित्रों को दुखित करने की चेष्टा कर अपनी मानसिक दुर्बलता का परिचय क्यों देते हो? पहले तुम्हारी इच्छा आत्महत्या की थी किन्तु तब तुम यह नहीं सोचते थे कि कर्म के नियमों पर विश्वास करनेवाली आर्य्य-सन्तान जान दे कर भी अपने कर्म फल को भोगने से अपनी जान क्योंकर बचा सकती है? वरन् ऐसा करने से वह अपनी जान को आगे जन्म में और जोखिम एवम् संकट में डालेगा। जब उस ओर से ध्यान हटा तो अब तुम घर छोड़ कर भागने की ठानते हो। धन्य तुम्हारी बुद्धि! और धन्य तुम्हारी विवेचना तथा विचार है! घर छोड़ कर भागने से क्या तुम अपने से भाग सकोगे? जब तक तुम्हारी बुद्धि, जब तक तुम्हारा मन, जब तक तुम्हारा ज्ञान, और जब तक तुम्हारी अनुभवशक्ति एवम् स्मृति तुम्हारा साथ न छोड़ेगी, तब तक घर छोड़ कर भागने से, अपनी मित्रमण्डली का परित्याग करने से, पर्वत तथा कानन में मुंह लुकाने से क्या लाभ होगा? अपने मन को

दमन करो, अपनी इन्द्रियों को वश करो, अपने कर्त्तव्य के पालन में बद्ध परिकर होवो, परोपकार व्रत अवलम्बन करो। दुःख से बचने का, विपत्ति को तिरस्कार करने का, सुख को बुलाने का तथा परानन्द लाभ करने का यही उपाय है।

"हां! एक बात और कहनी है कि प्रेम बिना मनुष्य रह नहीं सकता। प्रेम के विषय में तो मैं ने तुम से बहुत कुछ कहा है। तुम एक यही कह सकते हो कि प्रेमपात्र के नहीं रहने से, प्रेम का आधार स्वरूप कोई पदार्थ नहीं पाने से प्रेम क्योंकर सजीव रह सकता है;? सो सुनो, मैं इस का दो उत्तर देता हूं। तुम्हारे मन को बहलाने के लिये नहीं, वरन् तुम्हें यथार्थ मार्ग पर लाने के लिये, मैं यह सब कह रहा हूं, सो सुनो प्रथम तो यह कि तुम अपने प्रेम को कुछ अधिक ऊंची श्रेणी का बनाओ। दया प्रेम का ही एक नामान्तर है। सृष्टि का एक अङ्ग अपने को अनुमान करो। सृष्टि मात्र पर दया दिखाओ। अनन्त सृष्टि के अनन्त सुख दुःख के संग अपने सुख दुःख का योग करो। संकीर्णता को अपने हृदय से हटा कर उदारता को वहां स्थान दो। संसारमात्र को अपना प्रेमपात्र बना कर सब के संग प्रीति करो। तुम्हारा प्रेम उज्ज्वल होगा। तुम्हें कभी दुःख और सन्ताप नहीं सहना पड़ेगा। इस प्रेम में वियोग नहीं है। जगत् जैसा विस्तारित, समुद्र जैसा गम्भीर और आकाश जैसा अनन्त है उसी प्रकार अपने प्रेम को विस्तारित, गम्भीर तथा अनन्त करो। फिर देख लेना चिन्ता एवम् अनुताप तुम्हें नहीं सतावेंगे। शोक से विह्वल हो कर तुम्हारा हृदय जर्ज्ज-रित नहीं होगा। दूसरा उपाय यह है कि तुम जगदाधार सच्चिदा-नन्द को जानते ही हो। उन में तुम्हारी श्रद्धा तथा विश्वास हुई है। तो फिर कहो कि उन से अधिक सुन्दर कौन है? वह अविनाशी हैं। उन का सौन्दर्य परिवर्तनशील नहीं है। तुम उन्हीं को अपना प्रेमपात्र बना कर अपना प्रेम प्रौढ़ करो। इस राह में कोई

कण्टक नहीं है। इस प्रेम में वियोग नहीं है। इस में अपवित्रता नहीं है, स्वार्थपरता नहीं है। यह प्रेमबेली सदा लहलहाती रहेगी। इस के आधार का कभी नाश नहीं होगा। इस मार्ग में चलने से तुम्हारा प्रणय ऐसी मधुरता एवम् उज्ज्वलता को प्राप्त करेगा कि देवगण भी तुम्हारे भाग्य को सराहेंगे। अधिक कहां तक कहूं? तुम मेरी बात मानो और अपने मित्र के संग घर जा कर संसार के कामों में अपना मन लगावो। ईश्वर तुम्हारा मङ्गल करेंगे।

जान रक्खो कि जो कुछ दूरदर्शी भगवान् करते हैं हमलोगों की भलाई के लिये ही करते हैं। किन्तु हमलोग अल्पज्ञ हैं, इसी से व्याकुल हो जाते हैं। मनुष्य का धर्म है कि किसी अवस्था में चित्त को चञ्चल कदापि न होने दे। जिस में धैर्य्य नहीं वह मनुष्य नहीं। जिस में दुःख के सहने की शक्ति नहीं वह आदमी नहीं। किसी ने सच कहा है कि—

"अब हो हवा हो धूप हो तूफां का छेड़छाड़।
जङ्गल के पेड़ कब इन्हें लाते हैं ध्यान में॥
गर्दिश से रोज़गार के हिल जाय जिस का दिल।
इन्सान होके कम है दरख्तों से शान में॥"

महात्मा की व्याख्या से मुझे कुछ अवलम्ब मिला। दिल से एक बोझ हटा और हृदय में कुछ बल का सञ्चार हुआ। किन्तु चेष्टा करने पर भी मैं कुछ कह नहीं सका। मेरे कण्ठ से कोई शब्द बाहर नहीं निकला। मौन धारण किये उन्हें प्रणाम कर अपने मित्र के साथ मैं घर की ओर चला। मार्ग में हमलोगों में कुछ विशेष बातचीत नहीं हुई। दोनों अपने ही अपने ध्यान में लीन थे।

संध्या का पवन मन्द मन्द बह रहा था। आकाश साफ था। घटा हट गयी थी। सूर्य्य की अन्तिम सुनहली किरणें वृक्षों की

चोटियों की शोभा बढ़ा रही थीं। निकटस्थ आम की डालों से कोकिला अलाप रही थी। चारो ओर प्रकृति की शोभा मनोहर थी। किन्तु ये मेरा विरह अधिक बढ़ा रहे थे। मनोगत भाव चेष्टा करने पर भी रुक न सके। अकस्मात् आह भर कर मैं ने कहा "हाय! हाय! क्या कहूं? बड़ा धोखा हुआ—

क्या कहूं दिल से मुहब्बत का मज़ा जाता रहा।
ऐसा कुछ देखा के सारा हौसला जाता रहा॥"

दशम कल्पना ।

अन्तिम समागम ।

"I only know we loved in vain—
I only feel—Fare well !—Fare well !
Fare thee well ! and if for ever,
Still for ever fare thee well."

Byron.

मेरे ससुराल में एक अतीव सुन्दर वाटिका है। यहां मैं बहुधा घूमने फिरने जाया करता था। आज संध्या समय मैं वहीं मन बहलाने आया था। यहां की शोभा अतुलनीय एवम् अनिर्वचनीय थी। किन्तु मुझ पर इस शोभा सौन्दर्य्य का उलटा असर पड़ता था। क्या सोहावनी हरी दूबों से भरे हुए मैदान मेरे मन को हरा कर सकते थे? क्या नीलोज्ज्वल लावण्यसागर में निमग्न आकाश मेरे हृदय गगन से शोक की घटा हटा सकते थे? क्या सुमन-सुगन्धि मेरे चित्त को प्रफुल्लित कर सकती थीं? कदापि नहीं! कदापि

नहीं ! दुःखित आत्मा के आर्त्तनाद की कातरध्वनि से हवा भर गयी। इस ध्वनि को डालियों को इधर उधर हिला डुला कर पवन ने पैदा किया था। ज्ञात होता था मानो प्रकृति देवी अपनी एक दुःखी सन्तान के दुःख से दुःखित हो कर विलाप कर रही हो। सघन वृक्षों से हो कर आनेवाला समीर हृदयविदारक रव से यही कह रहा था कि मालती अब मेरी नहीं है। सघन विटपों पर बैठा हुआ पक्षी अपने सायंकालीन रव से यही कह रहा था कि मालती अब मेरी नहीं हो सकती। सरोवर में संध्या-समीर-जनित क्षुद्र-वीचिका-माला उठ उठ कर यही कहती थी कि मालती अब पराये की हो गयी। पवन-आन्दोलित डालियों को हिला हिला कर, झरझर शब्द से द्रुम लतादि कह रहे हैं कि वह आलोक तथा सौन्दर्य्य की मूर्त्ति, वह मधुरता तथा सरलता की प्रतिमा, वह स्नेह लावण्यता, कमनीयता तथा कोमलता की पुतली मेरी नहीं है। वाटिका मध्यवर्त्ती तड़ाग मेरे दग्ध हृदय के ताप को बुझा नहीं सका, नवविकसित पुष्पों का सौरभ मेरे मुर्झाये हुए हृदय को खिला नहीं सका। नाना प्रकार के सामयिक असंख्य सुमन मेरे दुःख को हटा नहीं सके। लाल सुरखी से पीटी हुई सुन्दर वक्र सड़क जो कभी वृक्षों की ओट में छिप जाती थी और कभी आंखों के सामने निकल आती थी, उस व्यक्ति की वक्र गति की सुधि दिलाती थी जिस ने मालती को मुझ से छीन लिया था। जल पक्षियों की क्रीड़ा देख कर मेरा मन बेचैन हो जाता था। हर्षोत्फुल्ल कोकिला का अलाप जले पर लोन छीटता था। यहां की शोभा तो आनन्दप्रद अवश्य थी किन्तु मुझ में तो आनन्द के अनुभव करने की शक्ति अब शेष नहीं रही। मैं तो जीवन-मृतक सा हो रहा था। मुझे ये वस्तुएं क्या सुख दे सकती थीं ?

जिन में कोमलता एवम् प्रेम की प्रबलता होती है वे अपनी शान्ति के विरुद्ध आप शस्त्र धारण किये रहते हैं। अपना वैरी वे आप ही

बने रहते हैं। उन का मन ही उन का प्रबल शत्रु है। प्रेम ही के लिये मेरी सृष्टि हुई थी। केवल प्रेम ही मेरे जीवन का उद्देश्य था। प्रेम के अतिरिक्त किसी वस्तु का मुझ पर प्रभुत्व नहीं था। मेरे जैसे मनुष्यों से संसार का कोई काम नहीं हो सकता। एक आदर्श जगत् को मैं ने अपने ध्यान में सृष्टि की थी जिस को अधिष्ठात्री देवी मालती थी। किन्तु आज वह वहां नहीं है। मेरे हृदय-आकाश का चन्द्र मालती थी। किन्तु दुष्ट राहु ने आज उसे ग्रसित कर लिया। मेरे हृदय-गगन में अन्धकार छा लिया। मेरे मन रूपी नन्दन कानन का पारिजात पुष्प मालती थी। किन्तु दैत्य विशेष ने उसे अपहरण किया। मेरे नन्दनवन की शोभा जाती रही। कोमल पत्रों को पवित्र पवन में प्रसारित करने और सौन्दर्य्य तथा सुगन्ध परिमल को सूर्य्य के सम्मुख समर्पण करने के पहले जिस प्रकार किसी रुचिर सुन्दर कली को दुष्ट कीट ध्वंस कर देता है; उसी प्रकार मालती की पवित्रता, प्रीति तथा रूप को उन में प्रेम का पूर्ण विकाश होने के पहले ही उस दुष्ट ने नष्ट कर दिया। मैं नहीं कह सकता कि मालती के हृदयहीन देह, प्रणयहीन मञ्जु मुख, आसक्तिहीन लावण्य्य को ले कर वह क्या करेगा?

मन में ऐसा ध्यान आते ही मैं व्याकुल हो गया। अपने को सम्हाल नहीं सका और रोने लगा। जो आंसू मेरी आंखों से गिरे वे अन्तःकरण से निकले हुए थे। मर्मान्तिक वेदना उन की उत्पत्ति का कारण थी। ऐसी वेदना इस संसार में विरले ही कोई अनुभूत करते हैं। मनुष्य प्रायः उस प्रेम को नहीं जानता जो मालती के लिये सहज ही में मैं अनुभव करता था। मुझे पागल करनेवाली प्रतिमा मालती है; नहीं! नहीं! अब कहां है? पहले थी। वह मालती अब नहीं है। मालती में अब वह पवित्रता नहीं है। उस का वह रूप नहीं है, उस में वे गुण अब नहीं हैं। पहले की सी आदर की वस्तु अब वह नहीं रही। सुगन्धि निकल गयी,

पुष्प पड़ा है; सुमन तोड़ लिया गया, विटप खड़ा है ; ज्योति जाती रही, सूर्य्य मण्डल में कलाधर विराजमान हैं ; आत्मा पयान कर गयी, शरीर पड़ा है; चिड़िया उड़गयी, पींजड़ा सूना पड़ा है; अनाज निकाल लिया गया, भूसे की ढेरी पड़ी रह गयी।

बहुधा हमलोगों की चतुराई ही हमलोगों का काल हो जाती है। अपने ज्ञान का परिचय देने ही में हमलोग मूर्ख बन जाते हैं। सचाई केवल सरलता में है। प्रेम ही सत्य है और सब निश्चय मिथ्या है। किन्तु सच्चे प्रेम का प्रेम-पात्र कहां है ? यही जानना तो कठिन है। ईश्वर ही प्रेम का कर्त्ता है। ईश्वर ही प्रेम हैं। महात्मा ने यही कहा था। किन्तु इसे मैं काम में नहीं ला सका। इस बात को समझने में हम ने भूल की। सच्चे प्रेम-पात्र को छोड़ कर मैं ने मालती से प्रेम किया, यही मेरे दुःख का कारण हुआ। सत्य और मिथ्या में मैं भेद नहीं कर सका। प्रेम लतिका को मालती ने विटप का सहारा दिया, यही मेरी भूल है। किन्तु इस में मेरा दोष क्या है ? हमलोगों की इन्द्रियों पर कोई एक वस्तु का प्रभाव नहीं पड़ता; वरन्, अनेक वस्तुएं इकट्ठी हो कर हमलोगों की अनुभव शक्ति को जागरित करती हैं। मनुष्य की बुद्धि अपरिमित है; किन्तु हमलोगों को यह भी सोचना चाहिये कि मानवबुद्धि के कर्त्ता की बुद्धि कैसी अनन्त एवम् अपरिमित है। उस के सामने हमलोगों की बुद्धि अति क्षुद्र एवम् अत्यन्त परिमित है। उस अनन्त सर्वदर्शी बुद्धि की समता में मेरी बुद्धि क्या है ? सागर में एक विन्दु—ब्रह्माण्ड में एक रेणु। ऐसे ईश्वर पर भरोसा नहीं कर मैं ने अपनी बुद्धि पर भरोसा क्यों किया ? किन्तु मुझे तो ज्ञात होता था कि इस राह पर चलने में वे भी मेरी सहायता कर रहे हैं। आगे भी भगवान् से सहायता मिलती। किन्तु मालती ने मेरी बात न मानी। उसी का परिणाम यह हुआ। ईश्वर की सहायता बिना

मानव बुद्धि भी सहायता न करती। दूरदर्शी नहीं होने के कारण यह अपनी आसपास की चीज़ों का आसरा लेती है। अतएव जिसे यह सुखद जानती है अन्त में वही दुखद निकल जाता है। जिसे यह मित्र जानती है वही शत्रु ठहर जाता है।

किन्तु इन सब विषयों की आलोचना कर अब क्या होगा। अब तो केवल ईश्वर ही पर मुझे भरोसा करना है। अब ज्ञात होता है कि यथार्थ प्रेम उसी का प्रेम है। अतएव जब कर्त्ता सत्य है, तब प्रेम भी अवश्य ही सत्य है। अब प्रेम ही की उपासना करूंगा। इस विचार के आते ही मन में साहस तथा बल आता हुआ ज्ञात हुआ। मैं ने समझा कि सच ही प्रेम आत्मा को पुष्ट करता है। घृणा से प्रकृति जीवन की मृत्यु होती है। प्रतिज्ञा किया कि अब मैं किसी की निन्दा नहीं करूंगा। किन्तु क्या है अपने साहू को भी क्षमा करदूं? क्या वह भी मेरे क्षमा का पात्र है? क्या उस के अपराधों को भी भूल जाऊं? पर क्या मैं उन्हें भूल सकता हूं? क्या उस से पलटा लेना उचित नहीं है?

क्या पलटा लेना प्रकृति का नियम नहीं है? कहां? ऐसा तो ज्ञात नहीं होता। जो कुठार चन्दन के अङ्ग को छेदता है उस कुठार को भी तो चन्दन गन्ध प्रदान करता है। फलदायक वृक्ष पर जो पाषाण फेंकता है वह भी फल पाता है। जो कुसुम को पद दलित करता है, उसे भी सुगन्ध कुसुम प्रदान करता है। जो आम के कोमल कलेजे में छुरी को बेधता है, उसे भी आम सुस्वाद ही देता है। जो ऊख को काटता और पेरता है वह भी मधुर ही रस पाता है। जो कोकिला को पिञ्जरबद्ध करता है, उसे भी कोकिला मनोहर ही अलाप सुनाती है। पवन पात्रापात्र का विचार नहीं करती, सब को बराबरही सुख देता है। किन्तु भले काम का बुरा फल भी तो मिलता है? नहीं! नहीं! सुकर्म सुकर्म ही है और

कुकर्म कुकर्म ही। यहां नहीं तो परलोक में सुकर्म का अच्छा फल अवश्य मिलता है। इस जन्म में नहीं तो उस जन्म में भले कर्मों का उत्तम फल अवश्य मिलता है। अतएव मुझे भी अब यही उचित है कि अपने भाई के अपराधों को क्षमा कर दूं। उस का कर्म उस के साथ और मेरा कर्म मेरे साथ।

किसी के नहीं देखने पर, किसी के नहीं जानने पर, किसी के पर्वाह नहीं करने पर भी असंख्य तारागण जिस प्रकार संसार को लाभ पहुंचाते हैं और अपने जीवन का कर्त्तव्य पालन करते हैं, उसी प्रकार दूसरे की ओर नहीं देख कर मुझे भी अपना कर्त्तव्य करना चाहिये। बन में सुन्दर सुमन क्यों विकसित होते हैं? कानन में पक्षी क्यों बोलते हैं? कितने सुन्दर मनोहर कुसुम जो अपने प्रस्फुटित मुख को स्वर्ग से ओसकण पाने की आशा में ऊपर उठाये रहते हैं, उन्हें मानव-नेत्र देखते नहीं, उन के रूप पर कोई मोहित नहीं होता, उन की स्थिति का हाल कोई जानता भी नहीं। तब प्रश्न हो सकता है, कि उन की सृष्टि क्यों हुई? परन्तु जिस हेतु हमलोगों की सृष्टि हुई है, उसी लिये उन की भी सृष्टि हुई है। सब अपने धर्म का पालन करते हैं, मैं भी अपने धर्म का पालन करूंगा। दूसरे की ओर नहीं देख कर मैं अब अपने धर्म को पालन करूंगा। आज मुझे ज्ञात हुआ कि संसार में सब की सृष्टि संसार के मङ्गल के लिये हुई है। यदि हमलोग किसी को दुःखी करते हैं, किसी का कुछ अमङ्गल करते हैं तो अपने धर्म में चूकते हैं। किसी का अलक्षित साधन करने की चेष्टा कर हमलोग अपने जीवन के उद्देश्य को सिद्ध नहीं करते, अपने जन्म को विफल करते हैं। इस सुन्दर वसुन्धरा को नष्ट भ्रष्ट करते हैं, इस के सौन्दर्य्य को विनाश करते हैं और अनन्त सुख का बीज आरोपण करने के बदले संसाररूपी वाटिका पर दुःख पाला डालते हैं।

अच्छा उस का तो अब नाम नहीं लूंगा। आज से उस के संग कोई सम्बन्ध नहीं रखूंगा। उस के हित अनहित का कुछ विचार नहीं करूंगा। उस के लिये मानो मैंने इस संसार ही को छोड़ दिया। मेरे लिये मानो वह मर गया। उस का नाम तक ध्यान में न लाऊंगा, उस का अमङ्गल करना तो दूर रहे।

किन्तु मालती के सम्बन्ध में अब क्या करूं? वह तो भुलाये भी न भूलती। अब उस की ओर में देख नहीं सकता। वह पराये की स्त्री हुई। वह परनारी हो गयी। किन्तु उस का प्रेम! इस प्रेम को अपने हृदय से क्योंकर हटाऊं? मेरे आदर का धन वह नहीं रही। मेरे योग्य अब वह नहीं है। किन्तु जब तक वह इस संसार में है तब तक तो उसे भूल नहीं सकता। क्या मरने पर उसे भूल जाऊंगा? ऐसा भी तो नहीं जान पड़ता। तब क्या करूं? आज दो दिन यहां आये हो गये। उस के सम्मुख जाने का तो साहस नहीं हुआ। किन्तु एक वार उसे देखूंगा। एक वार उसे अवश्य देखूंगा। जन्मान्तर के लिये उस से एक वार बिदाई मांगूंगा। हाय! हाय! कलेजा फट रहा है। प्राण मुंह को आ रहे हैं। किन्तु धैर्य्य पर भार दे कर एक वार उस से मिलूं। एक वार उस की ओर निश्चय देखना पड़ेगा। यदि हृदय विदीर्ण हो जाय तौभी उसे अपने मन की बातें कहनी होंगी। इस बोझ को मेरा अन्तःकरण ढो नहीं सकता—उस से कह कर इस बोझ को हलका करना पड़ेगा। अब मुझे सुख दुःख क्या है? अब मुझे भय संकोच क्या है? अब मुझे मान अपमान कहां है?

वाटिका में बैठे बैठे बहुत बिलम्ब हो गया। चारों ओर अन्धकार का अमल हो गया। घोर सन्नाटा राज्य करने लगा। तब वहां से उठ कर मैं ससुराल में फिर आया। आकाश में तारे हंस रहे थे। ठंढी हवा चल रही थी।

यहां आने पर और अपनी सास के बहुत आग्रह करने पर मैं मालती के पास गया। उस के विवाह के बाद आज प्रथम वार मैं उस के निकट गया। मेरे अन्तःकरण का भाव मेरे पाठक सहज ही में अनुमान कर सकते हैं। इस समय जो जो भाव मेरे मन में आते थे उन का उल्लेख सहज नहीं है।

घर में जा कर देखा कि मालती एक स्थान पर खड़ी है। सुन्दर सुरङ्ग सारी परिधान किये, विवाह के अलङ्कारों से भूषिता और नख शिख शृङ्गार से सुसज्जिता मालती चित्रवत् खड़ी थी। सावन की भरी नदी की भांति उस का सर्वाङ्ग यौवन तथा रूप सलिल से परिपूर्ण था। लावण्यता ने वहां अपना निकेत बना लिया था। किन्तु उस के सजल नीलेन्दीवर लोचन से संकोच की आभा प्रतिफलित होती थी। एक वार ध्यान पूर्वक उसे मैं ने सर से पांव तक देखा। भाल पर सिन्दूर देख कर मेरे हृदय में आग सी लग गयी, ज्ञात हुआ मानो चन्द्र में कलङ्क का छाप पड़ा हो। जगन्मोहिनी प्रदीपालोक में खड़ी अत्यन्त सुन्दर दीख पड़ती थी।

ललाट पर सोहाग का चिन्ह देख कर मुझे याद आया कि अब यह मेरी नहीं है। यदि आज यह मेरी रहती तो इस की लावण्यता पर मैं जगत् को न्योछावर करता। इस की मूर्त्ति जो आज मेरे सामने खड़ी थी उस की यावज्जीवन पूजा करता। किन्तु अब क्या? बहुत रोकने पर भी मन का आवेग रुक न सका। बलात्कार दो चार अश्रु-बिन्दु मेरे नयन कोन से कपोल पर गिर गये। अपने मनोगत भाव को प्रकटित करने के लिये मैं भाषा की सहायता ढूँढ़ने लगा, किन्तु अनेक चेष्टा करने पर भी कुछ बोल न सका। रह रह कर मन में यही आता था कि पिछली बातों को भूल कर एक वार और उसे अंग में लगा लूं। अपने मन के वेग को रोकने में मुझे कितना कष्ट हुआ, यह कहना बाहुल्य है।

अब मेरा सब यत्न विफल होता हुआ दीख पड़ा और यह सन्देह हुआ कि इस अवस्था में बहुत देर तक खड़ा रहने से हो सकता है कि मैं कुछ अनुचित व्यवहार कर बैठूं, तब मैं कलेजे पर पत्थर बांध कर अपने को बिलकुल विस्मरण कर रुकती हुई आवाज से कहने लगा कि "मालती ! हा ! मालती ! अब तू पराये की हो गयी। किन्तु अब भी तुम्हारे सम्मुख होने पर मैं अपने को सम्हाल नहीं सकता। मेरा सारा संयम व्यर्थ होता हुआ दीखता है। तुम से मिलने में तुम्हारा और हमारा दोनों का अनिष्ट है। अच्छा यही है कि तुम अब मेरे सामने न आना। जब तक हम लोग इस संसार में रहें, जिस में एक दूसरे को न देख सकें। सावधान, जिस में अब मैं तुम्हारी छाया भी न छू सकूं। पिछली बातों को भुला दो। जान लो हम लोगों में कभी परिचय नहीं हुआ। समझ लो तुम्हारे लिये मेरी मृत्यु हो गयी। अनुभूत नामी मेरे नाम का कोई व्यक्ति इस संसार में कभी नहीं था। तुम्हारे नेत्रों से आंसू निकलता है, किन्तु मुझ में अब यह सामर्थ्य नहीं है कि उसे पोछ सकूं। जिस प्रकार गुलाब पुष्प अपनी डाली से तोड़ लिये जाने पर सर्वदा के लिये उस से अलग हो जाता है उसी प्रकार तुम मुझ से अलग हो गयी—अब इस जन्म में हम लोग जुट नहीं सकते। इस जन्म में हम लोगों का संयोग कदापि नहीं हो सकता। ऐसा होना अब नितान्त असम्भव है। किन्तु तुम क्यों रो रही हो ? तुम्हें तो संसार में सुख, सोहाग है, आशा है। तुम्हें चाहने वाला है, तुम्हारा आदर करने वाला है। तुम्हें रूप है, गुण है, यौवन है, सौन्दर्य है, भला फिर तुम क्यों रो रही हो ? किन्तु मैं यह व्यर्थ क्या बक रहा हूं ? ऐसा कहने का मेरा अधिकार क्या है ? अपने मनोभाव को तुम पर क्यों प्रकट करता हूं ? मैं ऐसा करने वाला कौन ? जो पराये की है उस पर अपना दुःख क्यों प्रकट करूं ? जिसे सुनने का अधिकार नहीं है उस के सामने क्यों रोऊं ? अपने

दुःख से उसे दुःखी क्यों करूं ? कुछ नहीं। तुम से अब मेरा अनुरोध यही है कि मेरे सामने अब कभी न आना। आशीर्वाद देना कि मेरे में इस विपत्ति के सहन करने के योग्य बल आवे। किन्तु ऐसा विनय भी तुम से क्यों करता हूं ? इस की भी अब आवश्यकता न रही। बस अब यही अन्तिम प्रार्थना है कि तुम मेरे निकट न आना। जान लो यही हम दोनों का अन्तिम समागम है। अब से मुझे देख कर तुम मुंह फेर लेना। मुझे सामने देख कर अपनी आंखें बन्द कर लेना।

मैं आशीर्वाद करता हूं कि धर्म की ओर तुम्हारी रुचि रहे। अपने स्वामी को देवता तुल्य तुम समझो, उस की सेवा में कभी त्रुटि न करो, स्वामी में तुम्हारी अचल भक्ति हो। जन्म में, मरण में, चिन्ता में, स्वप्न में, जिस में तुम चिर पतिव्रता रहो। मैं तुम्हारे प्राणों और प्रणय का अब ग्राहक बनना नहीं चाहता। किन्तु अब मैं क्या करूंगा ? इस के कहने की आवश्यकता नहीं है। तुम यह जान कर क्या करोगी ? अच्छा सुनो, रजनी, चन्द्र तारे, आकाश एवम् पाताल और सम्मुख यह प्रज्ज्वलित दीप इस के साक्षी हैं कि मेरा प्रेम तुम्हारी ओर स्वार्थ से सना नहीं था। किन्तु यह भी कहना व्यर्थ ही है। तुम इन सब बातों को जान ही कर क्या करोगी ? अच्छा, अब जाता हूं। मेरा मन ठिकाने नहीं है। मैं पागल हो रहा हूं। क्या कहने को चाहता हूं और क्या मुंह से निकलता है। अपनी दुर्बलता मैं जानता हूं। अनेक क्षण तुम्हारे निकट रहने से मैं अपने मन को सम्हाल नहीं सकूंगा। मेरा कलेजा चूर चूर हुआ जा रहा है। हाय ! विधाता ! किस को दोष दूं ? किस की निन्दा करूं ? मालती ! मालती ! हाय, मालती ! तुम ने मेरी बात न मानी ... ”

आगे मुझ से कुछ कहा नहीं गया। कलेजा भर आया। कण्ठ रुद्ध हो गया। शरीर थरथराने लगा। पृथिवी मेरे पैरों के नीचे

धमनी सी ज्ञात हुई। आंखें तिरमिराने लगीं। जान पड़ा मेरी चारों ओर की चीज़ें नाच रही हैं। मेरा सिर घूम गया। हर ओर अंधेरी छा गयी। फिर मेरे नयन चकोर उसके मुख चन्द्रको नहीं देख सके। अतएव मैं नहीं कह सकता कि मेरी बातों का असर मालती पर कैसा पड़ा। मेरे वाक्य-बाण ने उस के हृदय लक्ष पर चोट पहुंचाया था नहीं।

एकादश कल्पना।

स्वप्न।

"I had dream, which was not all a dream."

Byron.

अपने दल बल के साथ बड़े धूमधाम से पावस चढ़ आया है। नील नभमण्डल की लावण्यता जाती रही। आज उस में चारों ओर से घोर घनघमंड छा रहा है, जिस के अङ्क में चञ्चला बार बार चमक रही है। रह रह कर दामिनी दमक उठती है और मेघ का प्रबल नाद सुन पड़ता है। हर ओर वृक्षों पर जुगनू चमचमा रहे हैं।

आज संध्या समय से जो वृष्टि हो रही है। आकाश से ले कर पृथिवी तक अन्धकार छा रहा है। रिमझिम रिमझिम की ध्वनि सुनाई दे रही है। दादुर तथा झिल्लियां भी अपनी स्वाभाविक बोली से लोगों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर रही हैं। पपीहों का

अलौकिक रव सुन मन हाथों से बाहर हो रहा है। विरह-संतापित व्यक्ति पर जैसा इन की बोली का प्रभाव पड़ता है, वैसा किसी वस्तु का नहीं पड़ता। बोध होता है कि एक एक पुकार में ये प्राण को हाथ से निकाल लेते हैं।

आज किसी से बातचीत करने का अवसर नहीं मिला कि कुछ जी भी बहले। कीच तथा फिसलो के कारण मैं कहीं गया नहीं, और न कोई मेरे ही निकट आया। अकेला रहने के कारण मन अधिक चञ्चल हो रहा था। इच्छा नहीं होने पर भी रह रह कर ध्यान मालती की ओर चला जाता था।

आज कई दिनों से मैं अपने घर ही पर हूं। अब चिर वियोग रूपी हिम ने मेरे प्रणय कुसुम को ढांक लिया। जब हम दोनों चक्रवाकों के लिये अनन्त विछोह रूपी निशा का आगम हो गया, तब ससुराल रूपी सरोवर के कूल पर मैं मालती के पास कैसे ठहर सकता था। मेरे मन भृङ्ग के लिये मालती जब चम्पा का फूल हो गयी तब फिर उस वाटिका में जहां वह शोभा पाती थी मैं किस हेतु ठहरता? जब कलाधर को राहु ने ग्रसा, चकोर वहां से हट गया।

इधर उधर आकर मैं ने जो अपनी प्यारी स्त्री को दशा देखी, उस से मेरा हृदय और भी चूर चूर हो गया। वह रुग्ना हो रही थी। उस का शरीर नितान्त दुर्बल हो गया था। उस में पहले की कान्ति अब नहीं थी। प्रत्यक्ष रोग तो कुछ नहीं दीख पड़ा, किन्तु उस की अवस्था अत्यन्त सोचनीय हो गयी थी। ज्ञात होता था कि उसे कोई असाध्य मानसिक पीड़ा है। किसी प्रकार का आघात उसके हृदय में लग गया है। वह प्रफुल्ल चित्त से इधर मुझ से सम्भाषण भी नहीं करती थी। आज कल मेरा दुःख इस कारण से और भी बढ़ गया था। अब कोई ऐसा व्यक्ति भी न रहा जिस से अपने मन

का हाल कहूं। पीछे मुझे ज्ञात हुआ कि जो मैं ने उस से मालती के साथ अपने अनुराग का सम्वाद दिया था, उसी से वह इतनी दुःखी हो गयी थी। इस दुःख को सहने की अब उस में शक्ति न रही। दिनों दिन उस की अवस्था बिगड़ती गयी।

क्रमशः रात अधिक बीत गयी। वृष्टि का वेग कम नहीं हुआ। बैठे बैठे मन ऊब गया। विश्राम करने के लिये शय्या पर मैं ने पीठ दी। किन्तु मेरे जैसे अभागे को सहज में नींद कहां आवे? कभी इधर मन खिंच जाता, कभी उधर की चिन्ता हो आती। कभी मालती की सुध आ जाती, कभी गृहिणी की चिन्ता हो आती, कभी महात्मा का उपदेश चित्त पर चढ़ आता और कभी अपने प्रेमदेव का स्मरण हो आता था। इसी बीच धीरे धीरे आंखें झिपने लगीं। कुछ देर के बाद निद्रा ने आ घेरा। विधु-मुखी विनोदिनी स्वप्नदेवी पास ही खड़ी थी। सुयोग्य पा वह भी मेरे मस्तिष्क में प्रवेश कर गयी। अब क्या था एक नयी दुनियां की मैं सैर करने लगा।

जिस प्रकार नदी के मुहाने से निकलने पर नौका धीरे धीरे चलती है, फिर जब बीच धारे में पहुंच जाती है तो विद्युत-वेग से परिधावित होती है, उसी प्रकार पहले तो अस्पष्ट एक दो चित्र स्मृति पट पर अङ्कित होने लगे फिर स्वप्न के प्रबल वेग से घटनाओं की विचित्र सृष्टि होने लगी। अपने स्वप्न का वर्णन करते इस समय मेरा कलेजा फटता है। किन्तु क्या करूं? जब सब बातें खोल कर लिख रहा हूं तो उन्हें क्योंकर छिपाऊं। इस परिच्छेद को पढ़ कर कितने पाठक मुझे पागल समझेंगे, कितने मेरी बातों पर विश्वास भी नहीं करेंगे और कितने अचम्भे में आ जायंगे। जो हो, अब तो जो जैसे हुआ उसे लिखना ही पड़ता है।

मैं ने देखा कि एक विस्तृत मैदान में मैं संध्या समय अकेला खड़ा हूं। चारों ओर कहीं कोई दिखाई नहीं देता। पश्चिम ओर

डूबते हुए सूर्य की लालिमा सामने के पर्वत के ऊंचे शिखर से छिप रही है। सामने सघन पहाड़ी वन है। मैं जहां खड़ा हूं वह पहाड़ की अञ्चल है। कुछ देर तक इधर उधर देख भाल कर मैं एक पगडंडी से ऊपर की ओर चढ़ा। ऊपर चढ़ते चढ़ते क्रमशः रजनी का राज्य हुआ। हर ओर अन्धकार छा गया। असंख्य तारे अपनी अनन्त क्षीण ज्योति पृथ्वी पर डालने लगा। किन्तु इन के राजा का अभी तक गगनाङ्गन में आगमन नहीं हुआ था। वन में हिंसक जन्तुओं का विकट रव सुनाई पड़ने लगा। मेरा शरीर थर-थरा गया। कलेजा कांपने लगा। अब अपने में इतनी शक्ति न रही कि किसी ओर अग्रसर हो सकूं। हताश हो आंखें बन्द कर मैं वहीं बैठ गया और अपने प्रेमदेव को अत्यन्त कातर हो गुहराने लगा।

कुछ देर के बाद मैं ने जब आंखें खोलीं तो कुछ दूर पर अग्नि-ज्योति दृष्टिगोचर हुई। साहस कर मैं आगे की ओर बढ़ा। मुझे आशा हुई कि इस निर्जन स्थान में जब अग्नि प्रज्ज्वलित हो रही है तो मनुष्य भी वहां अवश्य ही होगा। विकट राह को क्षीण नक्षत्रालोक के सहारे तय कर अपने अङ्ग को कांटों से छिन्न भिन्न करता हुआ पग पग पर पाषाण खण्डों से ठोकरें खाता हुआ मैं वहां पहुंचा जहां आग की धूई एक गुफा के मुंह पर जल रही थी। गुफा के द्वार पर मैं ने कई बार पुकारा, किन्तु कुछ उत्तर नहीं मिलने के कारण मैं व्याकुल हो गया। किन्तु करता क्या? कोई उपाय नहीं देख कर मैं गुफा में प्रवेश कर गया, क्योंकि मन में सोचा कि जब यहां मनुष्य के रहने का चिन्ह है तो अवश्य वह मनुष्य इसी गुफा में होगा। किन्तु वहां की दशा देख कर मेरी आत्मा कांप कर गयी। चित्त ठिकाने न रहा। ज्ञात हुआ मेरे नस २ में रुधिर के बदले बिजुली दौड़ गयी। रोंगटे खड़े हो गये। ललाट पर श्रम बिन्दु निकल पड़े और आंखों से आंसू।

देखा कि सामने एक आसन पर भस्म रमाये गौर वर्ण मूर्त्तिमान् शान्ति विराजमान् है। सुनहरी जटा धरती पर लोट रही है। मुख मण्डल शुभ्र मयङ्कवत् बर रहा है। लाल लाल विशाल नयनों की ज्योति देख कर हृदय में शान्ति तथा भक्ति का आवेश हुआ। ज्ञात हुआ कि योगी के भेष में कोई देवता इस पर्वतारण्य में विराजमान् हैं। किन्तु इन के सम्मुख ये कौन खड़ी हैं? इस शांतिप्रद गुफा में रूप की तरङ्ग कैसी! क्या शुकदेव के आगे रम्भा खड़ी है? नहीं! नहीं! झुक कर देखा कि यह वही मेरी हृदयहारिणी मालती है। मैं ने उसे देखा किन्तु वह मुझे नहीं देख सकी। मन में नाना प्रश्न आने लगे। यहां यह क्योंकर आयी! क्यों आयी? इस के पास यह एक दूसरी कौन खड़ी है? इसे तो अभी तक कहीं में न देखा नहीं! क्या यह इसी आश्रम में रहती है? भला यह योगीराज ही कौन हैं? उन से मालती को क्या सम्बन्ध है? मैं ही यहां क्यों आया?

इस दृश्य को देख कर मैं आश्चर्य में आ गया।

कुछ देर तक सब के सब नीरव थे। तत्पश्चात् निस्तब्धता को भङ्ग करती हुई मालती ने कहा "त्राहि! त्राहि! आप मेरी रक्षा करें! किसी प्रकार आप मुझे इस के हाथों से छुड़ा दें। यह मुझे असह्ययंत्रणा दे रही है। सदा यह मेरे साथ लगी रहती है। मेरे सब कामों में बाधा डालती है। मेरी एक भी वासना पूरी होने नहीं देती। इस के मारे मेरा सब मनोरथ खंखे पड़ते जाते हैं। इस ने मुझे मेरे प्रीतम से छुड़ाया। इस ने बलपूर्वक मेरा विवाह एक ऐसे व्यक्ति से कराया, जिसे मैं घृणा की दृष्टि से देखती हूं। इस ने मेरे नारि-जन्म को वृथा किया। इस ने मुझे अपवित्र किया। मुझे कुलटा बनाया। मुझे पद-दलित किया। मेरे हृदय वाटिका से प्रेम कुसुम को तोड़ कर छिन्न भिन्न कर दिया। मेरे हृदय सरोवर

के प्रणय सलिल को सुखा दिया। मेरे सौभाग्य चक्र को दुर्भाग्य रवि की ओर फेर दिया। मेरे सुख-सूर्य के लिये यह राहु है। मेरे सुहाग को यह बैरिन है। मेरे विश्राम तरुवर की शिशिर है। मेरे शान्ति कमल के लिये हिम है। मेरे मन हंस के लिये पावस है। मेरा सब कुछ इस ने लूट लिया। मुझे इस ने बड़ा धोखा दिया। तब भी यह मेरा पीछा नहीं छोड़ती। इस से लुक छिप कर मैं आप की शरण में आयी थी। किन्तु न जाने यह यहां भी कैसे पहुंच गयी। मेरा निस्तार अब आप ही के हाथों में है। प्रभो! मुझे बचाइये। मेरी रक्षा कीजिये। मेरा सब सहारा टूट गया है। मेरा भाग्य फूट गया है। यदि आप मुझे नहीं उबारियेगा तो मैं असहाय दुःख समुद्र में डूब जाऊंगी।"

ऐसा कहते कहते मालती अधीर हो रोने लगी। इच्छा हुई, किन्तु मुझे साहस नहीं हुआ कि उसे सांत्वना दूं। वहां का समा देख कर मैं आपे से बाहर हो गया। मेरी तो प्रतिज्ञा थी कि फिर मालती से न मिलूंगा। किन्तु इस विचित्र संयोग को, इस दैविक घटना को क्या करता? इस में मेरा वश ही क्या था?

मालती को रोदन करते देख उस की सहचरी ने योगीराज से कहा कि "महाराज आप इस की बातों में न आइये। इस के जाल में आप कदापि न पड़िये। मेरे माथे पर यह व्यर्थ दोषारोपण करती है। इसे मैं सदा सदुपदेश ही देती हूं, इसे सदा उचित ही परामर्श देती हूँ। किन्तु अपने हठ से यह मेरी बातें नहीं मानती। कभी मैं ने इस का कुछ नहीं बिगाड़ा। इस के प्रपञ्च में आप न पड़िये। यह मिथ्यावादिनी है। मैं कुछ नहीं करती। अपने किये का यह केवल फल भोग रही है। मुझे आज्ञा दीजिये मैं इसे अपने साथ ले जाऊं। अपने घर वालों से बिना कहे सुने यह यहां चली आयी है। इसे आश्रय देने से आप की भी निन्दा होगी। आप त्रिकालदर्शी हैं। विचार कर देखिये आप को सब ज्ञात

हो जायगा। कितनों को इस ने छला। आज आप को भी धोखा देने आयी है। यह परम चतुरा है, मायाविनी है। इस के कपट अश्रु पर आप ध्यान न दीजिये। इस का पूरा वृत्तान्त मैं आप से क्या कहूं? आप इसे अपने पास से हटाइये। जब तक यह आप के निकट रहेगी, व्यर्थ आप को कष्ट देगी।

योगीराज ने कहा कि यह तो हुआ, किन्तु मुझे बतावो कि तुम दोनों में सम्बन्ध क्या है?

सहचरी बोली " मैं इस की प्रारब्ध हूं। इस के पूर्व कर्मों का मूर्तिमान् फल हूं। मुझ से छुटकारा पाने को यह चेष्टा करती है। किन्तु कब सम्भव है? आप ज्ञानी हैं, तत्ववेत्ता हैं, भूत, भविष्य तथा वर्तमान के ज्ञाता हैं। आप इसे समझा दीजिये कि मुझ से यह भाग नहीं सकती, मुझ से अपनी जान छुड़ा नहीं सकती। इतना मैं अवश्य कहूंगी कि जो कुछ मैं करती हूं, इस के भले ही के लिये करती हूँ। अब बहुत विलम्ब हो रहा है आप आज्ञा दें कि मैं इसे अपने साथ ले कर यहां से प्रस्थान करूं।

योगीराज बहुत देर तक चुप रहे। फिर आप ने कहा कि यह तो कहो कि यह इतना दुःखी क्यों है? क्या मैं इस का कुछ उपकार कर सकता हूं? यदि मेरे किये उस की विपत्ति हटे तो मैं उस का उपाय अवश्य करूंगा।

मेरी ओर इङ्गित मालती की सहचरी ने कहा कि इस का विशेष कारण आप इन्हीं से सुन लीजियेगा। इसी लिये मैं इन्हें भी यहां तक लाई हूं, मेरे कुछ कहने की आवश्यता नहीं है। मैं इतनी बात कहे देती हूं कि इन दोनों में प्रगाढ़ प्रेम था और इन्हीं के लिये यह ऐसी व्याकुल हो रही है। किन्तु इतना आप जान रखिये कि इतनी प्रीति होने पर भी इस ने अपने प्रियतम की बात नहीं मानी और इस की विपत्ति एवम् अमङ्गल का मूल यही अवज्ञा है।

योगीराज बोले "देवी ! मैं तुम्हें प्रणाम करता हूं। किसी का सामर्थ्य नहीं है कि तुम्हें टाल सके। तुम सदा सब के सम्मुख हो। तुम्हारी आज्ञा सब को शिरोधार्य्य है। तुम्हारी रुचि के विरुद्ध मनुष्य क्या देवगण भी कुछ नहीं कर सकते। तुम जिस के संग जो चाहो वही करो, तुम्हारा कोई हाथ रोक नहीं सकता। किन्तु क्या तुम मुझे एक दो बातें इस बालिका से कहने नहीं दोगी? मैं चाहता हूं कि अपने सदुपदेशों से इस की चिन्ता दूर करूं। इस की शोचनीय अवस्था देख कर मुझे दया आती है। देखो न, यह कैसी चिन्ता में निमग्न सीस झुकाये खड़ी है, इधर उधर देखती तक नहीं।"

प्रारब्धि ने कहा "इस में कोई हानि नहीं। आप इसे शिक्षा दे सकते हैं। यदि आप की बात मान कर यह सुमार्ग पर चले तो मुझे भी सुख हो। परोपकार आप का धर्म है। मैं आप के कर्तव्य-पालन में बाधा नहीं दे सकती।"

मालती की ओर देख कर योगीराज सादर बोले कि "पुत्री! तू ऐसी अधीर क्यों हो रही है? तुझे मैं जानता नहीं, किन्तु तुझे देख कर मेरे हृदय में दया का सञ्चार होता है, अतएव तुझ से मैं पूछता हूं, अकपट भाव से कह कि तू इतनी दुःखी क्यों है?

मालती—मेरी दुर्बलता, क्षमा हो। मैं आप से सब कहूंगी और इसी लिये यहां आई भी हूं। किन्तु यदि आप मेरी आत्म कहानी सुन कर मुझ से घृणा न करें तो कहूं।

योगीराज—कुछ चिन्ता नहीं। तू कह। किन्तु यह (मेरी ओर देख कर) भी तेरे साथ ही आये हैं क्या? यह कौन हैं?

योगीराज की बात सुन मालती ने फिर कर मेरी ओर देखा। अब क्या था, बचा बचाया साहस भी उस का जाता रहा।

"तुम कहां? तुम कहां? तुम कहां? ऐसी चिन्ता तो हुई अपने माथे पर हाथ दे वह बैठ गयी।

योगीराज का आश्चर्य और भी बढ़ गया। कुछ देर तक आंख मूंद कर सोचने के बाद उन्हों ने कहा कि "अब समझ गया। बात ऐसी है। अच्छा, यह तो कहो……?"

उन के भाव को समझ कर मैं ने कहा "देवात् आप जब सब जान हो गये तब आप से छिपा हो कर अब क्या होगा। मैं ने जब से प्रतिज्ञा की थी कि मालती को अब नहीं देखूंगा तब से मेरा मन बहुत व्याकुल रहता था। किसी काम में जी नहीं लगता था। इसी से इधर सैर को निकल आया। किन्तु मैं यह नहीं कह सकता कि मालती यहां क्योंकर आयी।"

योगीराज के बहुत आग्रह करने पर मालती बोली कि संसार में अब मुझे कुछ सुख नहीं रहा, कोई सहायक नहीं रहा, कोई आशा न रही। चिन्ता के कारण दुःख दिनों दिन बढ़ रहा है। आज अपने को मैं सम्हाल नहीं सकी। अतएव इस ओर आने की इच्छा हुई। बचपन में मैं ने यह बात सुनी थी कि पर्वतारण्य में सन्त महात्मा तथा देवगण वास करते हैं। जब स्वार्थी संसार में मुझे सहाय्य न मिला तो मैं ने अनुमान किया कि हो सकता है कि यहां किसी ऐसे महात्मा का दर्शन मिल जाय जो मेरे सन्तप्त हृदय को शान्ति प्रदान कर सके। बस भूलती भटकती मैं इधर आ निकली। आगे जो बीता सो तो आप जानते ही हैं।

योगीराज—अच्छा हुआ, तुम दोनों एक साथ ही यहां आ गये। मुझे अधिक कुछ कहना नहीं है। मालती! मैं पहले तुम से कहता हूं। ध्यान देकर सुनो। मेरी बातें सुन कर तुम अधीर न होना। यह पुरुष तुम्हारा गुरु स्वरूप इस संसार में आया है। इस ने तुम्हें

प्रेम की शिक्षा मन वचन तथा कर्म से दी। कष्ट के और कर के इन ने तुम्हें सिखा दिया कि प्रेम क्या है। इसे देखकर तुम्हारे हृदय में प्रेम अङ्कुरित हुआ और इस के उपदेश से वह प्रेम प्रौढ़ता को प्राप्त हुआ। अब इस का सहवास तुम्हें लाभदायक नहीं होगा। यदि तुम्हारे साथ अब यह अधिक दिन तक रहेगा तो तुम्हारा मन संसारी सुखों में लीन हो जायगा और तुम्हारे जीवन का उद्देश्य सिद्ध नहीं होगा, अतएव तुम से यह छुटा लिया गया। एक भेद तुम्हें और बताता हूं, ध्यान दे कर सुनो। कर्म का बीज नाश नहीं होता। कर्मफल भोगना ही पड़ता है। अभी कई जन्म तक तुम्हें दुःख भोगना था। किन्तु तुम पर ईश्वर ने कृपा कर कई जन्मों का दुःख एक जन्म में भोगा दिया। दूसरे जन्म में तुम्हारा इसी व्यक्ति से विवाह होने वाला था जिस से यह व्याह हुआ है। अतएव विवाह के दिन से तुम्हारा नया जन्म आरम्भ हुआ। शरीर वही रहा किन्तु मन बुद्धि तथा प्राण दूसरे हो गये। तुम समझ लो कि यह जन्म भी तुम्हारा अल्प ही दिन का है। थोड़े ही दिनों में इस कष्ट से भी छुटकारा पाकर तुम अपने लोक में जावोगी। अब तुम अपने मन को संसार के सुखों से हटा कर परलोक तथा परमात्मा की ओर लगावो। अपने शेष जीवन को परमार्थ की चिन्ता में बितावो। श्रीकृष्ण भगवान् के साथ तुम ने जो सम्बन्ध स्थिर किया है उसे दृढ़ करो। तुम्हारा मङ्गल होगा। यहां अधिक देर ठहरने से कुछ लाभ नहीं होगा।" अपने घर को लौट जावो। जब तक बची रहो ईश्वर की भक्ति करो।

मेरी ओर देख कर योगीराज ने कहा कि "वत्स! अपने मन को स्थिर करो। हृदय में ग्लानि को स्थान न दो। परमेश्वर को याद करो। उस की महिमा अपार है। वह जो कुछ करता है जीव के मङ्गल ही के लिये करता है। मालती का ध्यान अब तुम छोड़ दो। यह अपने धाम को अब शीघ्र ही जायगी। अपने पूर्व पाप के प्रायश्चित स्वरूप इसे कुछ दिन ऐसे व्यक्ति के साथ रहना पड़ेगा

जिस से यह घृणा करती है। कहो तो, जब तुम ने भगवान् की अनन्त कृपा को अनुभव किया और उन के सुन्दर शक्ति रूप को इन आंखों से देख कर अपने जीवन को सुफल किया, तब फिर मानवी प्रेम के जाल में क्या फंसे हो? उस मोहिनी मूर्त्ति को देख कर भी तुम्हें दूसरे के देखने की काङ्क्षा रह गयी। उस लावण्य को अनुभव करके भी तुम विनाश होनेवाले चित्र को देखने के लिये व्यग्र हो। जब उस ने तुम्हारी ओर अपना उज्ज्वल मधुर विद्युच्चकित कटाक्ष विक्षिप्त किया तब फिर तुम दूसरे की कृपा कटाक्ष के लिये क्यों मर रहे हो? अब तो तुम्हारा संकल्प ऐसा होना चाहिये कि—

'तुम्हें देखा तो फिर औरों को किन आंखों से हम देखें? ये आंखें फूट जायें गर्चे इन आंखों से हम देखें।' अपनी वासना को दमन करो। भक्ति तथा प्रेम का तुम्हें यथोचित उपदेश मिल चुका है। मुझे इस विषय में तुम से कुछ अधिक कहने की आवश्यकता नहीं है। मुझे इस विषय में यही कहना है कि जो कुछ तुम सीख चुके हो उसे काम में लावो। मालती से नहीं मिलने की प्रतिज्ञा कर तुम ने अच्छा किया। वह तुम्हारे लिये नहीं है। यदि वह तुम्हारे साथ सदा के लिये रहती तो तुम अपना कर्तव्य पालन नहीं कर सकते। इस संसार में अभी तुम को बहुत कुछ करना है। यदि तुम इस प्रकार अपने को चञ्चल रखोगे तो कुछ नहीं कर सकोगे। तुम्हारा नर-जन्म व्यर्थ हो जायगा। स्वार्थ को परित्याग करो। तुम्हारे लिये मेरा यही अन्तिम उपदेश है। ईश्वर पर भरोसा रखो, मन में साहस रखो, हृदय में धैर्य्य को स्थान दो। बांके बिहारी तुम्हारा मङ्गल करेंगे।"

ऐसा कह योगीराज ने मेरे सीस पर अपना हाथ फेरा। इच्छा नहीं रहने पर भी (ज्ञात हुआ) खींच कर किसी ने मुझे उस गुफा के बाहर कर दिया। मैं वहीं चित्रवत् खड़ा रह गया। कुछ देर

के बाद देखा कि मालती किसी दूसरे मार्ग से दूसरी ओर आगे बढ़ रही है। अब चन्द्रालोक चारों ओर फैल आया। उस पर्वत प्रदेश में चांदनी बड़ी सुहावनी लगती थी। आज तक मैं ने ऐसा सुन्दर, भयावना एवम् बीहड़ स्थान कभी नहीं देखा था। मालती को दूसरी ओर जाते देख मैं भयभीत हुआ। उसे पुकारा, किन्तु वह सुन न सकी। उस के निकट जाने की चेष्टा की, किन्तु जा न सका।

देखा मालती धीरे धीरे जा रही है और उस के पीछे वही देवी लगी हुई हैं। वे इधर उधर नहीं देखती थीं। अतएव उन का ध्यान उस ओर नहीं गया। किन्तु मैं ने देखा कि उन की बायीं ओर एक सघन कुञ्ज की ओट में एक विकट भयङ्कर जन्तु खड़ा लाल लाल आंखे किये उन की ओर देख रहा है। उसे देख कर मेरी व्याकुलता बढ़ी। किन्तु कर क्या सकता था। देखते देखते उस के निकट मालती पहुंच गयी। अपनी घात में झपट कर वह मालती पर टूट पड़ा। चीख मार कर मालती बेसुध हो गई। वह उसे घसीट कर सघन बन में ले चला। उस की सहचरी मेरी ओर फिर कर देखती हुई और अपनी उंगली से मालती की ओर दिखाती हुई जोर से हंसने लगी।

थोड़ी देर में मालती, उस की सहचरी तथा अलौकिक जन्तु मेरी आंखों की ओट हो गये। उन्हें आगे मैं नहीं देख सका। लाचार आगे की ओर बढ़ा तो क्या देखता हूं कि पर्वत प्रदेश से मर्मर पाषाण की बनी हुई अनेक सीढ़ियां ऊपर को गयी हैं, जो हरी भरी लतागुल्म से दोनों ओर आच्छादित हैं। चारों ओर गगनस्पर्शी वृक्ष शैलावृत खड़े हैं। इन सीढ़ियों के सहारे मैं आगे बढ़ा। ऊपर जा कर देखा कि एक अत्यन्त सुन्दर रत्न-खचित देव मन्दिर है। निकट जाते ही मन्दिर का द्वार खुल गया। डरते डरते मैं भीतर गया तो क्या देखता हूं कि रत्नसिंहासन पर श्रीराधाकृष्ण जी की अनुपम मूर्त्ति विराजमान है। अङ्ग प्रत्यङ्ग से अपूर्व सौन्दर्य

झलक रहा है। गले में मनोहर बन पुष्प तथा रत्न की माला शोभा दे रही है। श्री कृष्ण जी के कानों में मकराकृत कुण्डल और सीस पर कीट मुकुट जगमगा रहे हैं। पीतबसन परिधान किये हाथों में लकुटि लिये और अधर पर बंसी धरे हुए आप अपनी सुन्दरता बढ़ा रहे हैं। लावण्यनिधि की मधुर मोहनी मूर्त्ति आंखों में समा गयी। अब श्री मति की ओर नेत्र फिरे। कोटि रवि सी सीस चन्द्रिका चमक रही है। नील बसन और उज्ज्वल अलङ्कार की शोभा कहते नहीं बनती। मन्दिर के बीच में रजत दीपदान पर मणि के अनेक प्रदीप जल रहे थे। पुष्पदान से रुचिर सुमनों की सुगन्धि घ्राणेन्द्रिय को पवित्र तथा सुखी कर रही थी। मुझे वहां उपस्थित देख कर मूर्त्तियों के कमलवत् मुख मण्डल पर हर्ष की आभा आ गई। ऐसे विचित्र मनोहर तथा पुनीत स्थान में अपने को पाकर मैं बहुत विस्मित हुआ। ज्ञात होता था कि गोलोक यही है। मानों अभी मुस्कुराते हुए विद्रुमवत् अधरों से प्रेम की भाषा निकली चाहती है। वहां कितनी देर खड़ा खड़ा मैं इस आनन्द को अनुभूत करता रहा, इस का उल्लेख अब कठिन है। मेरी इच्छा होती थी कि इन से कुछ बातें करता और मेरी बातों का ये प्रति उत्तर देते। किन्तु मेरी वासना पूर्ण नहीं हुई। उन्हें नीरव देख कर मैं उन के सामने अपना दुःख रोने लगा। कितना विनय किया, कितनी प्रार्थना की, कितना धन्यवाद दिया, कितना आंसू गिराया, उन का विवरण अब क्या करूं। इसी अवस्था में मैं वहाँ खड़ा था कि किसी का आर्तनाद मेरे कानों में पड़ा। मैं चिहुक पड़ा और दौड़ कर बाहर आया। वहां देखा कि कोई नहीं है। रोने की आवाज़ कहीं दूर से आ रही है। दौड़कर आगे बढ़ा। किन्तु ठोकर लगने के कारण बीच ही में गिर गया।

इसी बीच मेरी आंखें खुल गयीं। देखा कि न वह पर्वत है, न अरण्य है, न योगीराज हैं और न मेरी मालती है, न वह मन्दिर है और न वह युगल मनोहर मूर्त्ति। कलेजा धड़ धड़ करने लगा।

शरीर में बल नहीं रहा। बहुत देर तक तो सुधि नहीं रही। किन्तु क्रमशः चैतन्यता आने लगी। ज्ञात हुआ प्रभात हो चला है। वृष्टि थंभ गयी है। बाहर पपीहा बोल रहा है। पर्यङ्क पर मैं उठ बैठा और अपने स्वप्न की एक एक बात को क्रम से ध्यान में लाने लगा। इन सब विषयों को किसी से कहने का मुझे साहस नहीं हुआ। मन ही मन बहुत चिन्तित, दुःखित और व्याकुल हुआ।

मेरे ध्यान में आया कि क्या यह स्वप्न है वा अमङ्गल-सूचक भविष्य दृश्य ? स्वप्न का तो कोई चिन्ह नहीं देखता ? स्वप्न होने का तो कुछ प्रमाण नहीं मिलता ? मेरे चञ्चल मन ने क्या एक भ्रम की टट्टी बनाई थी ? क्या यह घटना एकदम निर्मूल ही थी ? क्या मेरे दुर्बल मस्तिष्क की यह व्यर्थ की रचना थी ? ऐसा तो ज्ञात नहीं होता। यदि स्वप्न भी हो तो यह कल्पना देवी का निरर्थक रूपक नहीं है। क्या इस का कुछ अर्थ नहीं है ? दूसरे के लिये न हो, किन्तु मेरे लिये तो मानों मेरे आगे से भविष्य का आवरण उठा दिया गया। क्या मन्द मन्द विचरती हुई वायु हमलोगों से कुछ नहीं कहती ? क्या उस की नैसर्गिक भाषा नहीं है ? क्या अर्द्ध-निशा की घोर अँधियारी पुण्यात्मा और अपराधी से समान ही वार्त्तालाप करती है ? क्या आधी रात को निविड़ कानन में योगी तथा घातक बराबर ही स्वच्छन्द भ्रमण करते हैं ? क्या उन पर उस दृश्य का एक ही समान प्रभाव पड़ता है ? इन सब प्रश्नों का उत्तर पाने के लिये हमलोगों को प्रत्येक मनुष्य की आत्मा एवम् हृदय की ओर देखना होगा। सुन्दर चन्द्रदेव तथा नक्षत्र जब अपनी ज्योत्स्नामयी किरणों को किसी निष्ठुर भयानक एवम् घृणास्पद कुकर्मी पर डालते हैं, तो क्या उन की ज्योति का प्रभाव उस पापी चाण्डाल पर, जिस का अन्तःकरण ईर्षा, द्वेष तथा घृणा से परिपूर्ण है तथा जिस के कलुषित कर ने गर्हित कार्य्य को किया है और उस व्यक्ति पर जिस का हृदय दया, प्रेम, पवित्रता और

करुणा से भरा हुआ है, समान हो पड़ता है ? कदापि नहीं। ऐसा होना असम्भव है। प्रकृति का यह नियम नहीं है और प्रकृति अपने नियमों के विरुद्ध कदापि नहीं चलती। सलिल का कलकल रव शून्य गुफा की प्रतिध्वनि, पवन की सनमनाहट सब की एक स्वतन्त्र भाषा है और इन की ध्वनि अच्छे तथा बुरे के कर्णेन्द्रिय को समान सुखद नहीं होती। क्या यह प्रकृति थी जिस ने मेरे संग सहानुभूति प्रकट की थी, और जब मैं अपने पर्यङ्क पर बेसुध पड़ा था मुझे भविष्य का चित्र स्पष्ट दिखला दिया है ? यह आगे के परिच्छेद को पढ़ कर पाठकों को ज्ञात होगा।

भविष्य की झांकी कैसी अस्पष्ट एवम् मोहनी होती है ! जिस प्रकार बालक अपनी पुतलियों के संग खेलते हैं, यह वैसही हमलोगों को ले कर क्रोड़ा किया करती है। और केवल कभी कभी हमलोगों को अपनी रहस्य पूर्ण भूलभुलैया की किञ्चित् झलक दिखा देती है। किन्तु क्या मनुष्य इस से सुखी होता है ? नहीं ! नहीं ! कदापि नहीं ! आशा के ही भरोसे पर मनुष्य सुखी रहता है। नहीं तो यथार्थ में कब कौन सुखी हुआ है। प्रत्येक जीव पर हमलोगों को दया, करुणा तथा सहानुभूति दिखाना चाहिये ; क्योंकि कौन जानता है कि आगे उस पर क्या बीतेगा। कौन सी विपत्ति धीरे धीरे अलक्षित भाव से उस की ओर अग्रसर हो रही है ? मनुष्य को तो पग पग पर विपत्ति की आशंका है । क्या जल, क्या थल, क्या आकाश, क्या पाताल सब स्थानों में मनुष्य के काल विद्यमान हैं । यह तो हुई दूसरे की बात, परन्तु इन सबों से अधिक दुःख तो हमलोग अपने ही जातिवर्ग से पाते है ; अपनी ही जाति निठुरता, दुष्टता तथा अपवित्रता से कितना सताये जाते हैं। दुष्टों के षट्चक्र से जो हानि उठानी पड़ती है वह तो अलग रही, धूर्तों के पेंच में पड़ कर हमलोग क्या नहीं खोते। मित्रों से वियोग का दुःख तो असह्य अवश्य ही है, किन्तु जो कहीं

अपने प्रेम-पात्र की मृत्यु हो गयी तब दुःख तथा सन्ताप कल्पनातीत हो जाते हैं। अतएव सब को उचित है कि किसी को दुःखी देख कर उपहास न करें, वरन् उस के साथ अपनी सहानुभूति प्रकट करें। किन्तु मेरी दशा पर दया करनेवाला अब कोई नहीं है। यथार्थ में मेरे साथ किसी की सहानुभूति नहीं है।

घंटों बैठे बैठे अपने स्वप्न के विषय में सोचता रहा। रह रह कर प्राण व्याकुल हो जाता था। दिल हाथों उछल पड़ता था और चेष्टा करने पर भी हाथ में नहीं आता था। इस विषय में मेरी बुद्धि नहीं चली और अपने मित्र से भी कहने का साहस नहीं हुआ। भय हुआ कि मेरी बातें सुन वह कहीं मुझे पागल न समझें। अपनी रत्न्ना से भी भेंट करते मुझे भय होता था। मेरा अब दृढ़ विश्वास हो गया था कि मेरे प्रेम की बातें जानने के कारण वह इतना दुःखी हो गया है। क्या कह कर उसे समझाऊं? मेरी इच्छा होती थी कि यदि वह आज सन हा मन मुझ से रुष्ट नहीं रहता तो मैं कुछ अधिक सुखी होता। किन्तु क्या करूं? प्रेम का विषम परिणाम जो मुझे भोगना पड़ा, देखता हूं कि आज तक किसी को वैसा भोगना नहीं पड़ा है। प्रेम में संयोग तथा वियोग दोनों रहते हैं। किन्तु मेरे बांटे केवल वियोग ही पड़ा था। स्वप्न को याद कर कभी मन में आता था मालती को एक पत्र लिखूं। किन्तु अनेक चेष्टा कर मैं ने अपने मन को रोका।

ऐसे ही अनेक विषयों पर तर्क वितर्क करते दिन बहुत चढ़ आया। मेघ के नहीं रहने के कारण आकाश निर्मल हो रहा था। वातायन से देखा कि बालरवि अपनी सुखद सुनहरी किरणों को पृथिवी पर सानन्द विकिरण कर रहे हैं। मन को बहलाने के लिये मैं अपने मित्र के निकट चला गया।
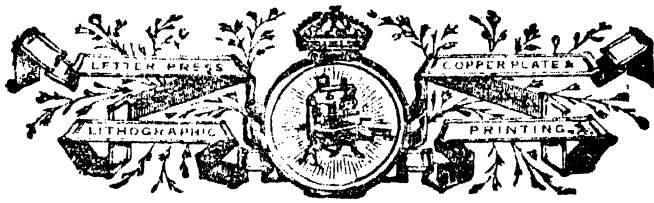
द्वादश कल्पना।

मृत्यु।

" *And she was lost—and yet I breathed,*
But not the breath of human life,
A serpent round my heart was wreathed,
And stung my ev'ry thought to strife."

Byron.

आधी रात का समय है। हर ओर निस्तब्धता छा रही है। संसारी जीव नित्य के परिश्रम से छुटकारा पाकर सुख की नींद सो रहे हैं किन्तु मेरे जैसे अभागे को नींद कहां? मैं एक रोगी की शय्या के पास बैठा हुआ रात काट रहा था। रोगी की अवस्था शोचनीय थी। वैद्य रोगी की सहायता एक सीमा तक कर सकता है, किन्तु जब रोग सीमातीत हो जाता है, तब फिर वैद्य की भी बुद्धि काम नहीं करती। जिस की सेवा शुश्रूषा के लिये यहां बैठा मैं निशा जागरण कर रहा हूं, उसे वैद्य अब सहायता देने में असमर्थ है। यदि भगवान् स्वयम् सहायता करें तो उसे निरोग्यता प्राप्त हो सकता है, नहीं तो अब दूसरी आशा नहीं है। किन्तु यह है कौन? पाठक! कहते मेरा हृदय फटता है। कलेजा मुंह को आता है। यह मेरी स्नेहमयी भार्य्या है, जो आज मृत्यु-शय्या पर पड़ी है। अब इस के जीवन की कोई आशा नहीं है।

आज कई दिनों से इस की अवस्था अधिक बिगड़ रही है। इस का एक कारण यह भी था कि इस की भगिनी, हां! हां! वही मालती जो एक दिन मेरी प्रेयसी थी और जिस की अपूर्व मूर्त्ति आज भी मेरे हृदय पट पर अङ्कित है, इस संसार में नहीं है। मालती नहीं है। वह यहां से चल बसी। अपने स्वामी के सहवास को वह सहन न कर सकी। कोमल कालिका उस के उष्ण स्वांस वायु से मुरझा गयी। मनोहर नलनी को मत्त गजेन्द्र ने छिन्न भिन्न कर दिया। अपने स्वामी के सङ्ग ससुराल में जाते ही वह पीड़िता हुई। दिनों दिन उस का रोग शोक बढ़ता गया। कोई उसे बचा न सका। भला, बचावे क्योंकर? प्रेम का परित्याग कर क्या कोई जीवित रह सकता है? प्रेम प्रतिमा का विसर्जन जिस के हृदय-मन्दिर से हो जाय, वह क्या कभी बच सकता है? मालती की आशा पूरी नहीं हुई, उस का विवाह मेरे संग नहीं हुआ, उस का पावन चरित्र अपवित्र हुआ, उस की लालसा अपूर्ण रही, उस की प्रेमाकांक्षा अलस ही रही, उस के हृदयाकाश से सुख सूर्य अस्त हो गया, दुःखरूपी अन्धकार ने उसे आ घेरा, उस का कोमल कलेजा सन्ताप नहीं सह सका, अतएव दुःख ने उसे दबा दिया। दुःख का बोझ वह सह न सकी। फिर क्या था? उस का स्वास्थ्य बिगड़ गया। ऐसा जीव कब तक जी सकता है। शोक, रोग, सन्ताप एवम् दुःख के अधिक हो जाने के कारण उस की मृत्यु हो गयी।

एक बार मैं ने सुना था कि राजयक्ष्मा से मालती पीड़िता है। यह भी सुना कि दिनों दिन उस का रोग बढ़ रहा है। एक दो बार इच्छा हुई कि जा कर उसे देख आऊं। उस के निकट जा कर क्षमा मांगूं, क्योंकि मैं जानता था कि मेरे ही कारण आज उस की जान जा रही है। यदि मैं उसे प्रेम का मार्ग नहीं दिखाता, यदि मैं उसे प्रीति करने को नहीं सिखाता, यदि मैं उसे प्रणय का उपदेश

नहीं देता, यदि उस के हृदय मन्दिर में मैं प्रेम का प्रदीप प्रज्वलित नहीं करता, यदि उस की हृदय-वाटिका में प्रीति-बल्ली आरोपित नहीं करता तो आज उस की यह दशा नहीं होती। उस का प्रेमी कहला कर मैं ने उसे मार डाला। हां! मैं उस का घातक अवश्य कहा जाऊंगा। विफल मनोरथ होने से उसे ऐसा व्याघात लगा कि वह उसे सह न सकी। मैं अपना अपराध पूर्णरूप से समझता था। मैं भली भांति जानता था कि मालती मेरे ही कारण मर रही है। उस की मृत्यु का कारण मैं ही ठहरूंगा। इसी से इच्छा हुई कि एक बार जाकर उस से भेंट कर आऊं। किन्तु फिर मैं ने सोचा कि हो सकता है कि मुझे देख कर उस का दुःख अधिक बढ़ जाय और मेरा संयम भङ्ग हो जाय। मैं ने प्रतिज्ञा की है कि उस से अब न मिलूंगा। वहां जाने से मेरी मानसिक दुर्बलता प्रकटित होगी। मेरी प्रतिज्ञा भङ्ग होगी।

इसी सोच विचार में कुछ दिन बीत गये। एक दिन अचानक सम्वाद आया कि मालती ने अपनी मानव-लीला को सम्वरण किया। मेरी हृदयेश्वरी इस लोक से चल बसी। जान पड़ा मेरा कलेजा किसी ने निकाल लिया। जगत् शून्य प्रतीत हुआ। मेरी व्याकुलता की सीमा न रही। मुझे स्पष्ट ज्ञान पड़ा कि इच्छा नहीं रहने पर भी मैं मालती को प्राणों से अधिक चाहता था। जो मैं ने उस से नहीं मिलने की प्रतिज्ञा की थी वह मेरे प्रेम ही का उल्लास था। अब ज्ञान हुआ कि उसे बहुत चाहता था, इसी से उस पर इतना रुष्ट हुआ। जो जिसे जितना चाहता है, उस पर उतना ही क्रुद्ध होता है। जिस पर जितना रीझता है, उस पर उतना ही खीझता है। मैं कहता था कि मालती से न मिलूंगा, उस का मुंह न देखूंगा, किन्तु उस का ध्यान तो नहीं छूटता था। जागते, सोते, स्वप्न में जहां देखो वहीं तो वह मेरे पास बनी आती थी। वरन् यह कहो कि जितना ही मैं उसे भूलना चाहता था उतना ही

अधिक वह याद आती थी ; उस से जितना ही दूर होना चाहता था उतना ही वह निकट आया करती। मैं तो ऐसा कह कर कि तुम से न मिलूंगा, मालती से दूर भाग आया था ; किन्तु क्या हुआ ? मैं तो भाग आया पर प्राण तो वहीं रह गया। मैं ने तो उसे परित्याग किया पर साथ ही साथ मन को भी तो वहीं छोड़ आया। मालती को नहीं परित्याग किया था वरन् अपने मन को बेगाना बनाया था। मुझे जान पड़ा कि मालती के प्रेम के अधीन ही मेरा प्राण है। जब से यह सम्वाद सुना, ज्ञात हुआ कि किसी ने कलेजे में आग लगा दी है। विरहाग्नि सुलग सुलग कर मेरे सारे शरीर को दग्ध करने लगी। वियोगानल तो धीमा धीमा सुलग ही रहा था, इस सम्वाद ने उसे फूंक कर धँधका दिया।

अब मुझे भली भांति ज्ञात हो गया कि मनुष्य अपने को भी ठगता है, अपने आप को भी धोखा देता है और अपना सब से प्रबल शत्रु आप ही है। यह जान कर, मन में यह धारणा कर कि मैं अब मालती से घृणा करता हूं, उस के प्रति अपने प्रेम को मैं ने दमन कर लिया। मैं ने अपने को धोखा दिया था जब मैं समझता था कि मालती की ओर मेरी प्रीति घटती जाती है, तब यथार्थ में वह बढ़ती जाती थी और उन्नति के शिखर की ओर दौड़ती जाती थी। चिरविछोह का सम्वाद सुन कर प्रेम-पयोनिधि उमड़ चला और प्रण का बांध टूट गया। मालती को देखने की इच्छा प्रबल होने लगी। अपने पर क्रोध हुआ, उस के स्वामी पर, उस के घरवालों पर, जी जला। सब की निन्दा करने लगा। संसार मेरा बैरी हो गया। समाज का नियम दूषित प्रतीत होने लगा। जी में आया जा कर एक बार उस के मृत-मुख को देख आऊं। श्मशान में जा कर उस की चिता का भस्म अपने ललाट में लगाऊं।

यह सम्वाद सुन कर मेरी अवस्था ठीक उन्माद-ग्रस्त की भी हो गयी। इस समय याद नहीं है। किन्तु उस समय में विधाता को

कितनी गालियां देता था। भगवान् के सर कितना दोषारोपण करता था। मैं ने कहा था कि दयामय तुम में दया नहीं है, माया नहीं है, करुणा नहीं है। जब तुम में करुणा नहीं है तो फिर तुम करुणासिन्धु कैसे कहे जाते हो? मुझे इतना परिताप देने से तुम्हें क्या परितोष हुआ? दूसरे को दुःखी करने में तुम्हें क्या सुख मिलता है? तुम सर्व शक्तिमान् कहे जाते हो सही, किन्तु क्या तुम मालती को फिर गढ़ सकते हो? जिस मनोहर प्रतिमा का तुम ने आज विसर्जन किया है, उसे क्या फिर मेरे हृदय-मन्दिर में, इस मृत्यु भुवन में स्थापित कर सकते हो? मैं जानता हूं कभी नहीं। तो फिर तुम ने क्यों विसर्जन किया? जिस का सिर्जन नहीं कर सकते, उसे विसर्जन करने का तुम्हारा क्या अधिकार है? जो तुम ने मुझ से आज लिया है, उसे कभी दे नहीं सकते हो। मेरा आज जो गया है उसे मैं पा नहीं सकता। जिस रमणीयता, कमनीयता, लावण्यता, पवित्रता एवम् मधुरता की पुतली मेरे हृदय-घरौंदे से तुम ने निकाल ली है, उसे क्या फिर वहां रख सकते हो? गया हुआ धन किस का कब मिला है? जब तुम्हारे पास औषधि नहीं थी, तब तुम ने मुझे उत्पीड़ित क्यों किया? जिस के पास मरहम नहीं है, उसे नश्तर देने का क्या अधिकार है? तुम ने जो आज मेरे कलेजे में नश्तर दिया उस पर क्या तुम मरहम लगा सकते हो? यदि तुम में शक्ति हो भी तौभी तुम नहीं कर सकते, क्योंकि तुम्हारा यह नियम नहीं है। दुःखी को तुम और दुःख देते हो, पीड़ित को अधिक उत्पीड़ित करते हो, मरे को और मारते हो, जले को और जलाते हो, कटे पर लोन छिड़कते हो। तुम से कोई क्या आशा करेगा? तुम क्या किसी की कुछ सुनते हो? तुम्हारे कर्मचारी बड़े कट्टर एवम् निष्ठुर हैं। इन्हीं की बातों में पड़ कर तुम संसार में स्वार्थपरता, अपवित्रता, शोक, रोग, सन्ताप आदि अवगुणों को भेजते हो। तुम जीवों को इतनी मर्मान्तिक यातना क्यों देते

हो ? यदि तुम चाहते तो क्या ऐसी सृष्टि की रचना नहीं कर सकते, जिस में रोग, शोक, पाप, ताप, स्वार्थ, मलिनता, अप्रेम, कृतघ्नता, घृणा एवम् अपवित्रता का राज न हो ? ऐसे प्रेम की सृष्टि नहीं करते जिस में वियोग न हो ? प्रणय को ऐसा नहीं बना सकते जिस में बिछोह न हो ? क्या प्रीतिवल्लरी को संयोग-सलिल से तुम सदा सींच नहीं सकते ? क्या विरह-लूह से उसे जलाये बिना तुम्हारी सृष्टि का काम नहीं चलता ? संसार को तुम ने सुखागार क्यों नहीं बनाया ? इस संसार में तुम ने दुःख एवम् सन्ताप को नियम और सुखानन्द को उस का अपवाद क्यों किया ? मुझ से तुम ने आज मेरा सर्वस्व क्यों छीन लिया ? मेरे अमूल्य रत्न को मुझ से अपहरण क्यों किया ? जब तुम ने मालती को लिया तब सब लेलो। जब तुम ने प्रेम का आधार ले लिया तब प्रेम को क्यों छोड़ते हो ? प्रेम भी ले लो ! प्रेम लो, माया लो, जीवन लो, प्राण लो, पूर्व स्मृति लो, अनुभव-शक्ति लो। मेरे अन्तःकरण से अनुराग लो, मेरी आंखों से आंसू लो। मेरे हृदय को शून्य करो, मेरे कलेजे पर पाषाण रखो। परिमल लेकर पुष्प को छोड़ते हो ? मोती लेकर सीप क्यों छोड़ते हो ? अकस्मात् मेरे माथे पर तुम ने वज्राघात क्यों किया ? तुम मुझे पददलित क्यों करते हो ?

"क्या इसी में तुम्हारी बड़ाई है ? क्या मुझे दुःखी करने ही में तुम्हारा महत्व है ? देखो, मेरा सत्यानाश हो गया। अब सब वस्तुओं से मेरी उदासीनता हो गयी, सब पर मेरा अविश्वास हो गया। अश्रद्धा की मात्रा मुझ में बहुत बढ़ गयी। मेरी हृदय वाटिका की अनुराग लतिका मुरझा गयी। प्रणय का स्रोत सूख गया। जीवन भार हो गया। अब किस सुख के लिये तुम ने मुझे बचा रखा है ? कब तुम ने मुझे इतना हंसाया था कि जिस के विनिमय में आज मुझे इतना रुला रहे हो ? कब तुम ने मुझे इतना सुख दिया था, कि जिस के बदले में आज इतना दुःख दे

रहे हो? किन्तु मैं लाख कहूं तुम कब सुनने लगे? तुम तो निर्लेप ठहरे, दूसरे की बातों का तुम पर प्रभाव हो कहां पड़ता है? अपने कार्यों की सार्थकता तुम्हो जानते हो। जो चाहते हो वही करते हो। कोई रोक टोक भी तो करनेवाला नहीं है। तुम तो सृष्टि के स्वामी ठहरे, जब तक सब को दुःख नहीं दोगे तब तक स्वामी कैसे कहे जाओगे। स्वामी का तो यह धर्म ही ठहरा। क्यों? क्या कहोगे कि यह तो नियम ही है। यही सही किन्तु इस नियम का बनानेवाला कौन है? ऐसा नियम बनाने को तुम्हें किस ने कहा? क्या इस नियम को तुम बदल नहीं सकते हो? तो फिर तुम्हें लोग सर्वशक्तिमान् क्यों कहते हैं? जिस के जी में जो आवे कहे किन्तु मैं यही कहूंगा कि पराये के दुःख से तुम दुःखी कदापि नहीं होते, दूसरे के रुलाने ही में तुम्हें आनन्द मिलता है। किन्तु रुदन के सिवाय अब मेरी दूसरी भाषा भी तो नहीं है, जिस के द्वारा अपना आन्तरिक भाव तुम पर प्रकट करूं। हाय! हाय! क्या करूं? मैं क्या करूं? क्या मनुष्य में अब मेरी गणना हो सकती है? विपद रूपी अन्धकार में पड़ कर मैं अबोध बालक ऐसा रो रहा हूं। आलोक का प्यासा शिशु ऐसा मैं बिलख बिलख कर रो रहा हूं। अच्छा! कहो तो रोऊं नहीं तो और क्या करूं? जो सब प्रकार निर्बल है उस का प्रधान बल रोदन ही है। तिस पर यदि तुम्हारे निकट न रोऊंगा तो किस के समीप रोऊंगा। मनुष्य जब अपने मन का आदमी पाता है तब उस के सामने अवश्य रोता है। मुझे ज्ञात होता है कि निश्चय तुम कोई मेरे अपने हो। क्योंकि तुम्हें "तुम" कहने में, तुम्हारे निकट रोने में, तुम्हारी निन्दा करने में मुझे सुख मिलता है। पराये को कोई कभी 'तुम' नहीं कहता है। उस के मुंह पर उस की निन्दा नहीं करता। उस के सामने कभी रो कर अपनी दुर्बलता प्रकाश नहीं करता। किन्तु मैं लाख रोऊं, तुम सुनोगे कहां। तुम तो किसी के साथ

सहानुभूति प्रकट नहीं करते। किसी के रोने धोने का प्रभाव तुम पर कभी नहीं पड़ता, पराये के दुःख में दुःखी होना तुम तो जानते ही नहीं। तब लोग तुम्हें दीनबन्धु, करुणानिधि, दयासागर, दीन-हितकारी क्यों कहते हैं? इस का उत्तर मैं क्योंकर दूं। मेरे लिये तो तुम ने विपरीत ही गुण धारण किया है। किन्तु मैं किस से बक रहा हूं? यहां सुननेवाला कौन है? और मेरे कहने का प्रभाव ही तुम पर क्या पड़ता है।"

बहुत देर तक इसी प्रकार बक झक कर और बहुत रो गा कर मैं ने अपने अन्तःपुर में सम्वाद भेजा। वहां जो मेरी स्त्री की दशा हुई, उस का उल्लेख करना कठिन है। मैं जानता था कि यह मालती को अपने प्राणों से अधिक चाहती थी। यह सम्वाद सुनते ही वह फूट फूट कर रोने लगी। किसी के सम्हाले न सम्हलती थी। मैं ने उसे समझाने की बहुत चेष्टा की। किन्तु सब परिश्रम विफल गया। पहले ही से उस का स्वास्थ्य बिगड़ा हुआ था, इस दुःख में वह अधिक कातर हो गयी। और उस की पीड़ा बढ़ गयी। शरीर पीत वर्ण हो गया। मुख की कान्ति म्लान तथा विवर्ण हो गयी। दो ही दिन में वह शय्या ग्रस्त हो गयी। फिर कोई औषधि काम न आयी।

आज कई दिनों से उस की अवस्था बहुत बुरी है। वहीं उस की सेज के पास इस रात्रि काल में बैठा हुआ हूं, और अपनी वर्तमान तथा भूत पूर्व अवस्था पर झंख रहा हूं। इधर भविष्य भी अन्धकार ही दीखता है। उस का आनन काला तथा शोहत हो गया है। नयन कोरक धस गये हैं। शरीर नितान्त दुर्बल हो गया है। अब उस के बचने की कोई आशा नहीं है।

उस ने अपने दुःख एवम् रोग को कभी किसी पर प्रकट नहीं किया। इस गोपन ने उस के कपोल का रङ्ग इस प्रकार चूस लिया और विवर्ण कर दिया था, जिस प्रकार कीट भीतर ही भीतर

कोमल कली को नष्ट कर देता है। चिन्ता ने अलक्षित भाव से उस के जीवन तरु का जड़ एकदम विनाश कर दिया। उस की शोभा तथा सौन्दर्य्य को विकृत एवम् विरूप कर दिया। अपने शोक के संग वह ऐसी गर्विता बन बैठी मानो शान्ति मूर्त्तिमान् निश्चिन्त भाव से उच्च शिखर पर बैठी दुःख एवम् सन्ताप पर हंसती हो। अतएव देखते देखते उस की अवस्था एक बार ही बिगड़ गयी।

मुझे अब ज्ञात नहीं होता था कि मेरे भाग्य में क्या बदा है। चारों ओर से विपत्ति समूह ने मुझे आ घेरा। जान पड़ता था कि दुःख तथा सन्ताप की बाढ़ आयी है; और मुझे जन्मान्तर के लिये डुबाये बिना यह न छोड़गी। पर अब करता क्या? कुछ उपाय नहीं सूझता था। कोई अपना ऐसा सहायक भी नहीं था, जिसे अपना दुःख कहूं। अब एक भरोसा भगवान् ही का शेष था किन्तु उन्हें इतना अवकाश कहां कि किसी की बात सुनें। तिस पर उन्हें विश्व ब्रह्माण्ड का प्रबन्ध करना ठहरा। एक मेरे लिये अपने सब प्रबन्ध में वह उलट फेर कहां करने वाले हैं। अपने कर्मचारियों की सम्मति बिना वह कुछ करते ही नहीं। इधर ये लोग तो दया माया का नाम ही नहीं जानते। फिर कहिये इन द्वारा से क्या आसरा हो सकता है।

मैं इसी सोच विचार में था कि धीमी आवाज़ से रोगी ने कहा "कोई है? मुझे प्यास लगी है।"

मैं ने उठ कर एक पात्र में तृष्णा बुझानेवाली औषधि ले कर उसे दिया। पी कर वह कुछ स्थिर हुई। ललाट पर हाथ रखने पर ज्ञात हुआ कि ज्वर बढ़ रहा है। मुख पुण्डरीक पर लालिमा दौड़ रही है। आनन तमतमाया हुआ दीखता है। मैं डर गया। वैद्यों ने कहा था कि यदि आज रात में ज्वर नहीं बढ़ा तो अच्छा है, नहीं तो फिर रोग एकदम असाध्य हो जायगा। ज्वर का बढ़ना देख मैं थर्रा गया। मुझे सचिन्तित देख कर वह बोली

कि "तुम भयभीत क्यों होते हो? डरने को कोई बात नहीं है। और दिनों से तो आज मैं अच्छी हूं। अभी थोड़ी सी नींद भी आ गयी थी। शरीर हलका है। मन भी प्रसन्न है। आप क्या अभी तक सोये नहीं? कुछ चिन्ता नहीं है। आप जा कर सो रहिये।"

मैं—तुम क्या कह रही हो, नहीं जानती हो। इस समय अपने मनोगत भावों को तुम पर क्या प्रकट करूं? इतना ही कहना बहुत है कि अब मुझे इस संसार में सुख नहीं है। मेरे नयन को अब सुख नींद से संयोग नहीं होगा। जिन लोगों को मैं प्यार करता था, जिन के सुखार्थ संसारी-बोझ को अपने कांधे पर सानन्द ढोता फिरता था, जिन का मुंह देख कर इस दुखद जीवन का भार सहर्ष वहन करता था, जो इस संसाररूपी जल-यात्रा के मेरे लिये ध्रुव तारा थे, वे एक एक कर यहां से उठे जा रहे हैं। संसार-यात्रा के मेरे सहचर एक एक कर अपना कर्त्तव्य पालन कर अग्रसर हुए जा रहे हैं। तुम मुझे दिलासा क्या देती हो? मैं सब देख रहा हूं, सब समझ रहा हूं। हाय! आज मेरे प्रेम का शेष सहारा टूटा चाहता है। पर मैं यह क्या कह रहा हूं? अपने दुःख से तुम्हें दुःखी क्यों करता हूं? अच्छा, तुम थोड़ी सी दवा खा लो।

मेरी स्त्री—इस को अब आवश्यकता तो नहीं है। अच्छा, जैसी आप की रुचि। किन्तु आप को देख ही कर मुझे बहुत आनन्द होता है। क्या कहूं? आप सुखी रहें।

मेरा दिल भर आया। अपने को सम्हाल न सका और उस के पास खाट पर बैठ गया। वहां धीरे से उस के मलीन मुख को चूम लिया। उस के कपोल पर अधिक लाली दौड़ आयी। अपने भाव को अब वह रोक न सकी। उस की आंखों से आंसू ढरक गया। ज्ञात हुआ मानो "नोकदार भयनन सों निकसि नदी चली।" गदगद स्वर में उस ने कहा कि "हाय! यह आप ने क्या किया? मैं! सब जानती हूं, मुझ से अब कुछ छिपी नहीं है। मैं भली

भांति जानती हूं कि अब अधिक दिन में नहीं बच सकती। मेरे जीवन के दिन अब पूरे हो गये। मैं जानती हूं कि तुम मुझे प्यार करते हो, मेरा आदर करते हो। तुम्हारे पास मुझे किसी बात का दुःख नहीं था। किसी वस्तु का अभाव नहीं था। पूर्व जन्म के सञ्चित पुण्य फल के बल से मैं ने तुम्हें पाया था। किन्तु मेरा पुण्य ऐसा प्रबल नहीं था कि तुम्हारे सहवास का सुख अधिक दिन भोग सकूं। तुम एक बात कदाचित् नहीं जानते हो। लो, आज तुम्हें सिखाती हूं। किन्तु सिखाना शब्द प्रयोग करते हंसी आती है। क्षमा करना। तुम ने अनेक बातें मुझे सिखाई है। यह तुम्हारा धर्म भी था। क्योंकि शास्त्रों में "पति परम गुरु" ऐसा वाक्य आया है। तुम ने मुझे क्या नहीं सिखाया। रस, केलि, शृङ्गार, ज्ञान, भक्ति, संयम, नियम, धर्म, पुण्य, प्रेम सभी तो तुम ने मुझे सिखाया। किन्तु अन्त में मुझे ज्ञात हुआ कि प्रेम के एक अति गूढ़ तत्त्व को तुम नहीं जानते। कई वार मेरी इच्छा हुई कि इस विषय में तुम से कुछ कहूं, कई वार मन में आया कि अपने भाव को तुम पर प्रकट करूं। किन्तु हर अवसर पर लज्जा ने आ घेरा और गले को रोक दिया। अब सम्भव है कि तुम से फिर वार्तालाप करने का सौभाग्य न प्राप्त हो। अतएव आज सब कुछ अकपट भाव से संकोच छोड़ कर तुम से कह देती हूं। क्षमा करना। तुम मेरे अपने हो, तुम पर अपना कुछ अधिकार है, इसी से कहती हूं, बुरा न मानना। तुम्हारे नम्र स्वभाव को जानती हूं। इसी से कहने का साहस होता है। अन्त समय तुम्हें दुःखी करने के अभिप्राय से मैं नहीं कहती। इसी से तुम्हारी क्षमा की प्रार्थी हूं। सुनो, जिसे जो प्यार करता है वह चाहता है कि उस का प्रेमपात्र अपना प्रेम किसी दूसरे को न दे। उस की सदा यही इच्छा रहती है कि जिसे प्यार करता हूँ वह मुझी को प्यार करे, दूसरा कोई उस के हृदय में स्थान न पावे। दो प्रेमप्रतिमा एक संग एक सम्बन्ध से किसी के हृदय मन्दिर में

निवास नहीं कर सकती। प्रेम का यह एक नियम है। मैं तुम्हें अपने प्राणों से अधिक प्यार करती थी। अतएव मेरी इच्छा थी कि तुम किसी दूसरे को अपना प्रेम तथा मन न दो। मुझे ऐसा विश्वास था, वरन् भ्रम था कि तुम मुझे छोड़ कर किसी दूसरी स्त्री को प्यार नहीं करते हो। किन्तु जब मैं ने तुम्हारे मुंह से सुना कि तुम्हारा स्नेहभाजन मालती है, तब मेरा कलेजा चूर चूर हो गया। यह दुसह दुःख मुझ से सहा नहीं गया। यदि कोई दूसरा इस बात को कहता तो मैं कभी विश्वास नहीं करती। किन्तु जब तुम ने स्वयम् कहा तो फिर इस में सन्देह को कहां जगह रही। इस दुखद सम्बाद को सुन कर मैं पागल सी हो गयी। तब से मेरी यही इच्छा होने लगी कि अब मैं मर जाती तो अच्छा होता।

मेरे सब मनोरथ धूल में मिल गये। तुम पुरुष हो, तुम स्त्रियों के स्वभाव तथा मन को क्या जानोगे? तुम क्या जानोगे कि अपने प्रियतम के प्रेम से वञ्चित हो जाने पर ललनाओं को कैसी यंत्रणा होती है? तुम नहीं जान सकते कि प्रेम एवम् आदर में न्यूनता हो जाने पर, इन को कैसा क्लेश होता है। स्त्रियों को प्रेम ही एक मात्र अवलम्बन है। ललनाओं के लिये प्रेम ही जीवन है। परन्तु पुरुषों को तो ऐसा नहीं है। उन्हें तो अनेक आशा, अनेक अभिलाषा, अनेक भरोसा और अनेक महत् उद्देश्य हैं। किन्तु अब तुम्हें समझाही कर क्या होगा? तुम्हारे मुखमण्डल पर मैं विषाद का चिन्ह देखती हूं। किन्तु अब पछताही कर क्या होगा? नदी का जल जब एक बार चला जाता है, किसी प्रकार फिर कर नहीं आता। घाव छूटता है, किन्तु दाग रह ही जाता है। जो हो, परन्तु अब मुझे कुछ दुःख नहीं है। तुम देखो, अब मेरे आनन पर रोग, शोक, ईर्षा अथवा कष्ट का लेश मात्र भी दिखाई नहीं देता। अब मेरे मुखमण्डल में चिन्ता का चिन्ह लुप्त हो गया। अपने मन की बात मैं ने तुम्हें सुना दी। अब मेरे

हृदय से एक बोझ हट गया। मेरे अन्तःकरण में अब शान्ति राज्य करने लगी। अब मैं सुख से मरूंगी। अन्त में तुम्हारा प्रेम एवम् आदर पाकर मैं प्रफुल्लित हुई। तुम्हारे अङ्क में अपने नश्वर शरीर को छोड़ कर मैं अपने नारिजन्म को सुफल करूंगी। मुझे पूर्ण आशा है कि मेरी आत्मा गोलोक में शान्ति पावेगी। इसे श्रीकृष्ण भगवान् अपना लेंगे। मेरे लिये अब तुम चिन्ता न करो। मेरे लिये रोना भी नहीं। किन्तु मेरे अपराधों को क्षमा अवश्य करना।

"आज कौन सा दिन है?"

मैं ने कहा "अब मङ्गल उदय होगा। सब के लिये मङ्गल, किन्तु मेरे लिये यह दिन प्रायः अमङ्गल ही सूचक है। इसी दिन मेरे प्रथम पत्नी की मृत्यु हुई। इसी दिन मालती से मेरी आंखें लड़ीं। इसी दिन मालती का घृणित विवाह और इसी दिन उस का देहान्त हुआ और आज इसी दिन तुम्हारी यह दशा भी देख रहा हूं। हाय!"

इतना कहते कहते मेरे नेत्रों से अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी। मैं अपने को सम्हाल न सका। किन्तु मुझे समझा बुझा कर मेरी स्त्री ने पूछा कि "क्या आज शुक्ल पक्ष है? क्या चन्द्रदेव आकाश में विराजमान् हैं?"

मैं ने कहा कि "आज कृष्ण दशमी है। किन्तु चन्द्रदेव का आगमन आकाश में हो चुका है। अब रात भी बीत चली है।"

उस ने कहा कि "कृपा कर तुम खिड़की खोल दो। आज मैं मयङ्क का तुम्हारे संग दर्शन करूंगी। मैं नहीं जानती कि जिस लोक को मैं यात्रा कर रही हूं, वहां चन्द्रदेव हैं वा नहीं। आज मुझे इन का दर्शन करने दो और इन से बिदा मांगने दो। मेरे इस अन्तिम अनुरोध का पालन करो।"

जब मेरे बहुत समझाने पर उस ने न माना तब हार कर

मैं ने खिड़की खोल दी। आकाश में मेघ नहीं था। नीलोज्ज्वल गगन में चन्द्रदेव हंस रहे थे। नील नभमण्डल मधुरता के सागर में निमग्न हो रहा था। ज्योत्स्नामयी रात्रि में सुखद दक्षिणी समीर सानन्द डोल रहा था। निकटस्थ आम की डाली से हर्षोत्फुल्ल चातक बोल रहा था। कुमुदिनी सी प्रकृति प्रफुल्लित थी। ये कभी किसी के दुःख से दुःखी नहीं होते। संसारी जीवों के संग इन की सहानुभूति नहीं है। ये जड़ प्रकृति के दास हैं। इन के हृदय में दया माया नहीं है।

खिड़की खुलते ही रजतमय चन्द्रालोक घर में चमचमा उठा। मेरी भामिनी का सुहाग भरा म्लान मुखमण्डल मधुर, कोमल एवम् सुखद चन्द्रिका के पड़ने से देदीप्यमान हो गया। उस के शरीर रूपी सरोवर में चन्द्रिका पड़ने से उस की मुख रूपी कुमुदिनी विकसित हो गयी। चन्द्रिका की छटा देख कर वह विहंस उठी, ज्ञात हुआ मानो चन्द्रालोक में दामिनी दमक पड़ी। जिस प्रकार बुझने के पहले दीप शिखा लहक उठती है। उसी प्रकार उस का मुखमण्डल प्रफुल्लित हो गया। उस ने कहा "मुझे एक बार अपनी गोद में बिठावो। मैं बैठ कर मयङ्क को एक बार प्रणाम करूंगी। तुम्हारे इष्टदेव के यह पूर्व पुरुष हैं। चलते समय इन्हें प्रणाम करना मेरा धर्म है।"

मैं ने ऐसा ही किया और मन ही मन कहा कि "हे नेत्र! अब अन्तिम बार इस सौन्दर्य्य को देख ले; और हे भुजा! तू भी अन्तिम बार इस सुकुमार आकार को आलिङ्गन करले। यही अन्तिम समागम है; फिर तेरी साथ न पूजेगी।"

बहुत देर तक बैठी हुई वह शशि की ओर देखती रही। अन्त में ऊषा की आते देख कर मैं ने उसे शय्या पर लेटा दिया। और वहां से उठ कर मैं बाहर आया।

बाहर आते समय मेरे मन में आया कि शिशिर-सिक्त कमलिनी ऐसी, मेघाच्छन्न शशधर ऐसी, वृन्त च्युत कुसुम ऐसी, रविकर क्लिष्ट किसलय ऐसी, म्लान एवम् विशुष्क मेरी भार्य्या जो मृत्युशय्या पर पड़ी है, क्या उसे में नीरोग नहीं देखूंगा ? मन में आया नहीं। यह कौमुदी-प्रदीप्त शोभा सन्दर्शन, यह रोदन, यह बिदाई, यह प्रणाम, यह चुम्बन, यह परिरम्भण, हाय ! येही क्या हमलोगों की प्रेम-लीला के शेष अभिनय हैं ?

त्रयोदश कल्पना।

अनुताप।

" Here I and sorrow sit,
Here is my throne, bid kings come bow to it."

Shakespeare.

दो पहर दिन बीत चुका है। किन्तु आकाश के मेघाच्छन्न होने के कारण सूर्य्य भगवान् सदा दिखाई नहीं देते। पवन बड़े वेग से चल रहा है। एक ओर कलकल नाद से श्री सरयू अनन्त उत्ताल तरङ्ग तथा फेन को वक्षस्थल पर धारण किये प्रबल वेग से बह रही हैं। श्रावण मास होने के कारण पानी का रङ्ग गदला हो रहा है। गरगर नाद से अनन्त जल पूर्ण वेग से अग्रसर हो रहा है। अनन्त बालुका राशि पैर के नीचे पड़ी हुई है। इधर करारे के ऊपर कोसों तक हराभरा खेत दिखाई देता है। हरियाली पृथ्वी को ढांक रही है। विटप शाखा तथा पत्तों के बोझ से लदे हुए हैं, जिन में लहलहाती हुई लताएं लिपट कर शोभा

की हृद्धि कर रही हैं। असंख्य बरसाती कीड़े इधर उधर भ्रमण कर रहे हैं। जिन में बीरबधूटी की सुन्दरता अकथनीय है। ऊपर अनन्त आकाश अपना विस्तार दिखा रहा है। कभी दूर से आता हुआ मेघनाद सुनाई देता है। कभी दामिनी दमक पड़ती है। और कभी पपीहा अपना अलौकिक रव सुना देता है। कभी घटा जम जाती है। कभी पवन के वेग से कुछ कुछ छिन्न भिन्न हो जाती है। सूर्य्य कभी बादलों में एकदम छिप जाता है और कभी अपना अनन्त आलोक पृथ्वी पर डालता है। कभी कभी फूही भी पड़ने लगती है।

एक शोक पूर्ण सुनसान स्थान में मैं कई मनुष्यों के संग बैठा हुआ हूं। यह श्मशान भूमि है। सामने चिता धधक रही है। मेरे हृदय में भी प्रबल शोकानल धधक रहा है। यह मेरी सौभाग्यवती गृहिणी की चिता है।

आज प्रभात होते होते उस का देहान्त हो गया। मेरे लिये संसार सूना हो गया। जीते जी मैं ने उस का पूर्ण आदर नहीं किया। किन्तु उसे खो कर मैं आज बहुत दुःखी हूं। जिसे मैं ने प्यार किया वही मुझ से छीन ली गयी।

क्या यह दुःख अकेला मुझी पर बीता है? ऐसी बात नहीं है। दुःख सभी भोगते हैं। किन्तु क्या था और क्या हो गया; इन दोनों की तुलना से हृदय व्याकुल हो जाता है। मैं कदापि नहीं भूल सकता कि मैं क्या था। संसार में मुझे सुख कितना था। इसी से मैं इस समय इतना दुःखी हूं। दूसरे की ही अवस्था देख कर हम-लोगों को धैर्य्य होता है। यदि संसार में एक ही मनुष्य दुःखी होता तो न जाने वह कितना व्याकुल होता। जितने दिनों में मुझे इतना दुःख भोगना पड़ा है, उतने दिनों में कितने पुण्ड-रीकलोचन से अश्रु-पात हुआ होगा। कितने बिम्बाधर सूख गये होंगे। कितने कोमल हृदय शून्य हो गये होंगे। कितने आलोक

बुझ गये होंगे। कितने कुलदीपक निर्वाण हो गये होंगे। कितनी तारिकाएं अन्तर्हित हो गयी होंगी। कितने प्रसून मुरझा गये होंगे। कितनी वाटिकाएं उजड़ गयी होंगी। कितने कोमल कलेजों में असाध्य व्याघात लगा होगा। कितने गृह कुञ्ज की सुखलता, चित्त-तड़ाग की प्रफुल्लित कुमुदिनी मुरझा गयीं होंगी। कितनी आशा लतिका के आश्रय तरु विनाश हो गये होंगे। तो फिर मैं क्यों इतना रो रहा हूं? रोना तो मनुष्य जीवन का उद्देश्य ही है। क्या सभी दुःखी हैं, इस कारण मुझे रोना नहीं चाहिये? नहीं, सभी दुःखी हैं अतएव मुझे अधिक रोना उचित है।

किन्तु मृत्यु होने से मनुष्य क्यों रोता है? मरने में तो बड़ा सुख है। मरने से तो आत्माभिमान जाता है, अहङ्कार जाता है, दारुण दुःख जाता है, शोक रोग शंका सन्ताप सब का नाश हो जाता है। शरीर के साथ ही साथ चिता पर शारीरिक, मानसिक, भौतिक तथा दैविक सब ताप भस्मीभूत हो जाते हैं। तो फिर मरने से मनुष्य क्यों भय पाता है? मृत्यु आशा का, अभिलाषा का, सुख का, सौन्दर्य्य का, माधुर्य का, लावण्यता का भी तो नाश करता है; तो फिर मनुष्य रोवे क्यों नहीं? जो खो जाता है, वह कभी मिलता नहीं; जिसे विधाता तोड़ता है उसे जोड़ नहीं सकता, जिसे बिगाड़ता है उसे बना नहीं सकता, जो जाता है वह फिर कर आ नहीं सकता—इसी से मनुष्य रोता है। मनुष्य मर कर दूसरे का भी सुख, आशा अवलम्ब सब ले कर मरता है। इसी से मृत्यु का इतना भय है। मृत्यु होने पर गुणों तथा अवगुणों का नाश तो अवश्य होता है; किन्तु कीर्त्ति तथा अपकीर्त्ति अक्षय है; सब जाता है किन्तु यश अपयश रह जाता है। मालती गयी, किन्तु वह जो मुझे दारुण क्लेश दे गयी उस का अपयश उस के नाम के साथ रह जायगा। यदि मरने पर मनुष्य मरनेवाले को भूल जाता, तो इतना कष्ट नहीं होता। मैं मालती को अब पाऊंगा नहीं।

किन्तु इस से क्या उसे भूलने भी न पाऊंगा ? यदि भूलने पाता तो इतना कष्ट क्यों होता ? हृदय में नरकानल क्यों जलता ? आज मुझे ज्ञात हुआ कि मनुष्य मृतक के लिये नहीं रोता, वरन् अपने लिये रोता है।

क्या रोने से मैं इतना डर गया हूं कि इन्हें भूलना चाहता हूं ? नहीं ! नहीं ! इन के लिये यदि यंत्रणा भी न सह सका, इन्हें प्यार ही क्या किया था। जिसे मनुष्य प्यार करता है, उस के लिये कितना कष्ट उठाता है, मैं रोने में भी हिचकता हूं। नहीं ! नहीं ! मैं रोऊंगा, आजन्म रोऊंगा, किन्तु इन्हें भूलने की चेष्टा न करूंगा। इन की स्मृति है, इसी से तो मेरा जीवन है। यदि यह भी विलुप्त हो जाय, तो अवश्य मेरी मृत्यु हो जाय। परन्तु देखता हूं कि आंखों से अब आंसू भी नहीं निकलता। हृदय में अग्नि जल रही है, नयनों में भी आग बल रही है, अब आंसू कहां से आवे। इसी से यंत्रणा इतनी बढ़ गयी है। अश्रु-नीर हृदयानल को बुझाता है। अतएव जब आंखों का आंसू सूख जाता है, तब हृदय की यंत्रणा बढ़ जाती है और चिन्ता तथा शोक कलेजे को जला देते हैं।

किन्तु यहां आकर मैं क्यों रो रहा हूं ? यह तो अति पवित्र स्थान है, यहां तो कलिकाल का राज्य नहीं है। यह स्थल तो धर्मभाव तथा सदुपदेशों से भरा हुआ है। किसी राह से कोई क्यों न जाय, किसी मार्ग को कोई क्यों न अवलम्बन करे, सब को यहां तो अवश्य आना पड़ेगा। यहां मत मतान्तर का झगड़ा नहीं, यह विश्वास अविश्वास की बात नहीं, श्रद्धा अथवा अश्रद्धा पर इस स्थान को प्राप्ति निर्भर नहीं है। स्वर्ग नर्क कोई माने चाहे न माने, पुनर्जन्म पर कोई विश्वास करे चाहे न करे, आत्मा को नित्य समझे चाहे न समझे, ईश्वर की स्थिति में शंका भले ही करे; किन्तु.. मृत्यु को तो मानना अवश्य पड़ेगा। मौत के चंगुल से बचने

का उपाय अभी तक किसी ने तो नहीं निकाला। चाहे तुम श्मशान में आवो, चाहे गोरिस्तान में जावो यह दूसरी बात है; किन्तु किसी प्रकार इस शरीर को तुम अमर नहीं बना सकते। सब अभिलाषा सब आकांक्षा, सब साध और परिश्रम का परिणाम यहीं की यात्रा है। यहां आकर मनुष्य को विदित होता है कि यह संसार नितान्त असार है। धन, जन, बन्धु, सम्पत्ति, पौरुष, मर्यादा, विद्या, प्रतिभा, बुद्धि, ख्याति अन्त में सब व्यर्थ हो जाती हैं। कोई काम नहीं आती। किसी मनुष्य को यहां आने से बचा नहीं सकती। यहां मनुष्य का कोई गुण सहायता नहीं करता। यहां धनी दरिद्र, पण्डित मूर्ख, सुन्दर कुरूप, महान् क्षुद्र, ब्राह्मण शूद्र, गोरे श्याम, राजा प्रजा सब की गणना एक ही श्रेणी में होती है। यहां बैठ कर चिन्ता करने से संसार की असारता सहजही हृदयङ्गम हो जाती है। जब अन्त में सब की यही गति है तो मनुष्य इतना हाहाकार क्यों करता है? अपने बन्धु बांधवों से राग, द्वेष, ईर्षा तथा वैर क्यों बढ़ाता है? यहां आने से सब का अहङ्कार चूर्ण होता है। आज हो चाहे कल, चाहे दस दिन के बाद, अंत में जब सब की यही गति है तब इतना रोना क्यों? अपनी मूर्खता के कारण।

इस नदी के जल बुलबुला से अधिक तो मनुष्य का महत्त्व नहीं है। यदि अनन्त जलकण की ओर देखो, यदि अनन्त बालुका राशि की ओर दृष्टिपात करो, यदि अनन्त नक्षत्र की ओर आंख उठावो तो ज्ञात होगा कि मनुष्य विशेष इस अनन्त विश्व में कैसा क्षुद्र है। श्मशान भूमि में बैठने से मनुष्य को यह जीवन उपदेश मिलता है कि सब मनुष्य ईश्वर की आंख में समान हैं; उन के निकट बड़े छोटे का विचार नहीं है। अन्त में जब सब की समान गति है तब इतना अहङ्कार कर मनुष्य केवल अपनी क्षुद्रता का ही परिचय देता है। जो क्षुद्र है वह अपनी क्षुद्रता की चेष्टा कर के भी छिपा नहीं सकता। अतएव क्षुद्र से जो महान् होना

चाहिए उसे उचित है कि अनन्त मनुष्य जाति का अपने को एक अङ्ग बनावे। मनुष्य विशेष क्षुद्र है, किन्तु मनुष्य जाति क्षुद्र नहीं है। परोपकार के बन्धन में जगत् को बांध कर मनुष्य मात्र के साथ अपना सम्बन्ध ठीक करो फिर तुम्हें देवता भी क्षुद्र नहीं कह सकते।

किन्तु यहां आने पर मरने को इच्छा क्यों होती है? अनुभूत होता है कि मरने पर उन से मिलूंगा जिन्हें प्यार करता था। मरने पर चिन्तानल बुझ जायगा। किन्तु चिन्तानल तो धधकेगा, उस में मुझे जलना तो पड़ेगा। तब क्या प्रेम करने से मनुष्य को जलना ही पड़ता है? जीते जी जलना पड़ता है और मरने पर भी जलना ही पड़ता है? तब यही कहना पड़ता है कि कोई किसी का प्यार नहीं करे। प्यार करने से जलना होगा।

"अब सब विष सम लागय मोय ;
हरि! हरि प्रीति करे जनि कोय॥"

किन्तु मेरी बात कौन मानेगा? प्रेम का विषम परिणाम तो सभी जानते हैं। प्रणय में दुःख है यह तो सभी मानते हैं। पर इस से क्या कोई प्रेम करने से हिचकता है?

मरने की तो इच्छा होती है। किन्तु मर नहीं सकता, क्योंकि भय होता है कि मरने पर अपने प्रेमपात्र को भूल जाऊंगा; उस के साथ सम्बन्ध टूट जायगा। आंखों की ओट होने से क्या, अभी तक तो वह मूर्त्ति हृदय में जागरित है। जहां वह मूर्त्ति है, जहां उस का प्रेम है, वह स्थान तो पवित्र है, उसे जान बूझ कर क्यों नष्ट करूं। जब तक उस की चिन्ता है, कोई चिन्ता नहीं। उस के विरह में जो यंत्रणा भोग रहा हूं वह यंत्रणा नहीं, सुख है। यह संसार अब सुख निकेतन नहीं रहा, यंत्रणा का आगार हो गया, किन्तु इस से क्या? यह प्रेम की यंत्रणा है, इसे मैं सानन्द सहूंगा। किन्तु यह कभी आशा नहीं थी कि इस प्रणय

में विछोह होगा। कभी नहीं समझता था, स्वप्न में भी ध्यान में नहीं आता था कि तुम्हें छोड़ कर मैं बच सकूंगा।

किन्तु मन में अब यह धारणा है कि तुम अब सुखी हो, तुम्हें अब चिन्ता नहीं है, इसी से आज भी मैं सुखी हूं। तुम जहां हो वहां कोई कभी दुःख अनुभव नहीं करता। परन्तु यह भी कैसे कहूं, क्योंकि वहां का यात्री कभी फिर कर तो नहीं आता। आज तक ऐसे जीव से भेंट नहीं हुई जो वहां का यथार्थ सम्वाद दे, अपने सिर को बीती बातें कहे। किन्तु मैं तो हिन्दू हूं, मेरा तो अपने शास्त्रों पर विश्वास है, तब क्यों न समझूं कि मेरे प्रणयिनी जहां है, वहां दुःख नहीं है, सन्ताप नहीं है, विरह वियोग नहीं है। केवल प्रेम ही का वहां राज्य है। वहां अपने लिये कोई नहीं रोता, दूसरे का सुख देख कर किसी को डाह नहीं होती। परस्पर एक दूसरे को सुखी करने की सभी चेष्टा करते हैं। अपवित्रता, अप्रेम और स्वार्थ वहां भूल से भी पदार्पण नहीं करते।

मैं ने प्रेम किया। प्रेम का विषम परिणाम मुझे भोगना पड़ा। किन्तु भला इस में मेरा दोष क्या है? मुझ में जो कुछ है सब के कर्त्ता तो जगदीश! तुम्हीं हो। मुझी को क्यों, संसार में जो कुछ है, सब को तो तुम्हों ने बनाया। मेरे हृदय को तुम्हों ने बनाया, मालती को रचना तुम्हीं ने की, मालती को सौन्दर्य्य तुम्हीं ने दिया, मेरे हृदय में प्रेम तुम्हीं ने भरा, मुझे सौन्दर्य्योपासक तुम्हीं ने किया। मेरे मन को चञ्चल तुम्हीं ने बनाया और मालती के संग मेरा प्रेम-सम्बन्ध तुम्हीं ने संस्थापन किया। उसे देखने का अवसर मुझे तुम्हीं ने दिया, मेरे संयोग को भङ्ग तुम्हीं ने किया, तो फिर कहो मेरा अपराध क्या है? मैं इतना दुःख क्यों भोग रहा हूं? तुम में क्या शक्ति नहीं है? आज भी मेरे मन को तुम स्थिर क्यों नहीं करते? मेरी दुर्बलता क्यों नहीं हटाते? हाय! हाय! मैं आज

तक नहीं जानता था कि अनुराग में मनुष्य को इतना दुःख झेलना पड़ता है। इतनी मर्मान्तिक पीड़ा सहनी पड़ती है। यदि मैं ऐसा जानता तो इस के समीप भूल कर भी नहीं जाता। किन्तु विचारने से तो ज्ञात होता है कि मनुष्य का हृदय चिरकाल सौन्दर्य्य का भिखारी है। बाल्यकाल ही से जब कोई सुन्दर पदार्थ देखता हूं तब उस के पाने के लिये छटपटा जाता हूं। जब बुद्धि नहीं थी, जब विचार नहीं था, जब अपने कर्मों का उत्तरदाता नहीं था, तब भी तो, देखता हूं, सौन्दर्य्य को ऐसा ही चाहता था। वासना पूर्ण नहीं होने के कारण तब भी तो अधीर हो कर ऐसा ही रोता था। माता कहती थीं कि आकाश चन्द्र को हस्तगत करने के लिये मैं कितना सिर पीटता था। देखता हूं कि काल तथा अवस्था के भेद से रुचि का भेद हो गया। किन्तु सौन्दर्य्योपासना की बात तो वही रह गयी। उस समय भी कमनीयता, मधुरता, लावण्यता तथा सौन्दर्य्य को देख कर मन चञ्चल हो जाता था, चित्त आकर्षित हो जाता था, हृदय सरोवर में आनन्द की लहरें उठने लगती थीं, आज भी तो वही दशा है। पहले चन्द्र को प्यार करता था, उसे देख कर आनन्द से नाचता था, उसे नहीं पाने पर रोता था, उस के अस्त हो जाने पर व्याकुल हो कर सिर धुनता था; आज चन्द्रमुखी मालती को प्यार किया और उसी के नहीं रहने के कारण बिलख बिलख कर रो रहा हूं। जगदीश! फिर कहो, इस में मेरा क्या दोष है?

किन्तु विस्मृत सुख-स्वप्न की स्मृति आते ही हृदय में नूतन दुःख का क्यों सञ्चार हुआ? प्रेयसी की मृत्यु के पश्चात् चुम्बन की स्मृति सी प्रिय; जो अधर दूसरे के लिये निर्मित हैं, उन पर आशा-रहित चुम्बन के अनुभव सी मधुर; प्रेम सी गम्भीर, प्रथम प्रणय सी गम्भीर, मर्मान्तिक प्रीति-वेदना सी हिंसक; जीवन में मृत्यु सदृश

पिछले दिनों की स्मृति होती है। बालविनोद की याद आते ही मैं अधिक अधीर हो गया।

देखते देखते चिता धधक उठी। मेरे हृदय में शोकानल धधक उठा। हाय! जिस को देख इस चिता पर लहक रही है, जिसे मैं ने आज अग्नि की गोद में सोला दिया है—वह मेरे धर्म का सहाय, संसार का पुण्य, गृह की लक्ष्मी, सुख दुःख की संगिनी तथा मेरे शरीर एवम् आत्मा की पूर्त्ति थी। इस के नहीं रहने से मेरा गृह अब अरण्य हो गया, इस के चले जाने से संसार के संग मेरा अन्तिम बन्धन टूट गया। मेरी आज क्या दशा हो रही है, उसे मेरा मन जानेगा और जो अन्तर्यामी हैं वह जानेंगे। दूसरा क्या जानेगा? मालती के पीछे मुझे यही प्यारी थी। मालती के संग सम्बन्ध तोड़ने पर इसी के साथ प्रगाढ़ प्रेम जोड़ने का मैं यत्न करता था। मन ही मन मैं जानता था कि इस में मेरी कुछ सुफलता भी हो रही है। अपनी प्रीति वल्लरी को मालती का आश्रय छोड़ा कर मैं इसी का आश्रय देना चाहता था। अपने प्रेम प्रवाह को मालती की ओर से मोड़ कर मैं इसी की ओर फेर रहा था। जब तक मालती को प्यार करना मुझे धर्म विरुद्ध ज्ञात नहीं होता था, मैं मालती के स्नेह में मग्न था; पर जब वह पराये की स्त्री हो गयी, तब मैं ने अपने मन को इसी की ओर झुकाया। क्योंकि मैं धर्म के प्रतिकूल कोई कार्य्य करना नहीं चाहता था।

इधर अपनी गृहणी को दुःखी तथा पीड़ित देख कर मेरे अन्तः-करण में करुणा का विकाश हुआ। करुणा सहायता पाने के कारण प्रीति बेली ने अपने वर्त्तमान आश्रय को दृढ़ता के साथ जकड़ना चाहा। किन्तु ईश्वर की ऐसी रुचि नहीं थी। विधाता को यह देखा न गया। अन्त में आज यह भी अभिलाषा पूरी न हुई। जैव मन में जो उच्च अभिलाषा थी, सब मन ही में विलीन हो गयी। यह नहीं है कि मैं आशा नहीं कर सकता, आशा करने

को मुझ में शक्ति नहीं है, किन्तु आशा करने की इच्छा नहीं होती। सुख के लिये मनुष्य आशा करता है, किन्तु अब मैं सुख नहीं चाहता। देख लिया कि इस संसार में सुख नहीं है। मनोरथ बढ़ाना अब अच्छा नहीं लगता। प्रतिपन्न हो कर अब क्या करूंगा?

मेरी पत्नी मर गयी। मालती भी मर गयी। मेरी मृत्यु नहीं हुई। जिस को मरने की इच्छा होती है वह नहीं मरता। जो अच्छा है वही शीघ्र मरता है, जो बुरा है वह बचा रह जाता है। जिस के लिये दस जन रोने वाले हैं वही मरता है, जो सुखी है वही मरता है, जिसे कोई नहीं पूछता उसे मृत्यु भी नहीं पूछती।

"जाको यहां चाहना है, वाको वहां चाहना है।
जाको यहां चाह ना है, वाको वहां चाह ना॥"

यदि आज मैं मर गया होता तो किसी को इतना दुःख नहीं होता, जितना इन दोनों के मरने से मुझि हो रहा है।

जब तक मेरी भार्य्या बची रही मैं ने उस से पूर्ण प्रेम नहीं किया। जैसा मैं आज उस के लिये व्याकुल हूं, उस के अनुसार मैं नेक भी उस के संग स्नेह प्रकट नहीं किया। उस की सुन्दरता अनिर्वचनीय थी, उस में गुण अनेक थे, उस का स्वभाव बहुत सरल था; उन सब बातों को मैं भली भांति जानता था। उस को प्यार भी करता था। किन्तु आज के दिन सा कभी मैं उस के लिये व्याकुल नहीं हुआ। उस के रूप गुण का प्रभाव जैसा आज मुझ पर पड़ा है, वैसा कभी पहले नहीं पड़ा।

आज मुझे स्पष्ट ज्ञात होता है कि मनुष्य जब तक बचा रहता है, उस के मर्म्म को कोई ठीक तरह से नहीं जानता। जीते जी मनुष्य का आदर नहीं होता।

"जीते जी क़द्र बशर की नहीं होती है कभी।
याद आये हैं मुझे तेरे वफ़ा तेरे बाद॥"

आज उसे खो कर मैं ने उस के भेद को पाया। जब तक वह मेरे पास थी तब तक तो यही सोचता था कि यह तो अपनी है। तब जानता था कि यह ऐसी ही रहेगी, इस के लिये चिन्ता क्यों करूं। तब तो स्वप्न में भी ऐसा ध्यान में नहीं आता था कि इस से मेरा वियोग होगा। अब ज्ञात होता है कि मेरी अन्तरात्मा इसे प्यार करती है; और मेरी मर्म्मान्तिक इच्छा थी कि यह सुखी रहे—मैं कभी ऐसा अनुभव नहीं करता था। क्योंकि मन का यह एक सहज स्वभाव है कि जो विश्वास करने की इस की इच्छा होती है, जो विश्वास करना चाहता है, जिसे विश्वास करने में आनन्द पाता है, उसे अवश्य विश्वास करता है, यथार्थ में उस के विपरीत भी क्यों न हो। ऐसा ही विश्वास करने में मुझे लाभ तथा आनन्द था, इसी से ऐसा विश्वास करता था। किन्तु जिस दिन मालती की मृत्यु हुई, जिस दिन यह स्वयम् रुग्न हुई, जिस दिन रोग-शय्या पर इस को पीठ पड़ी, उसी दिन से यह विश्वास छूट गया। उसी दिन से मन में आने लगा कि इसे ले कर भी मैं सुखी नहीं रह सकूंगा। उसी दिन से भय एवम् शंका ने आ घेरा। दृढ़ विश्वास होने लगा कि सुख मेरे बांटे नहीं पड़ा है। अब तो उस के मुख-चन्द्र की मधुर हंसी सर्वदा प्राणों के प्राण में जागती रहती है। उस की मनोहर छवि आंखों में समाई रहती है। आज उस की मोहनी मूर्त्ति भुलाये भी न भूलती।

किन्तु अब तो केवल रोना शेष रह गया। जिस दिन प्रथम वार पार्थिव आलोक को देखा, जिस दिन पहले पहल इस संसार में पदार्पण किया, उसी दिन से तो रो रहा हूं। रोने से कब तक भय करूंगा। यह जीवन यात्रा जिस प्रकार रोकर आरम्भ हुई है, उसी प्रकार तो रोते ही रोते समाप्त करनी पड़ेगी। जब अज्ञान था, जब चेतना-रहित था, तब भी रोता था और आज ज्ञान प्राप्त कर चैतन्य हो कर भी रो रहा हूं। मनुष्य की इस विश्व में आदि भाषा रोदन ही है।

तो फिर रोने से क्यों भागता हूं। रोना तो मानव-जीवन का प्रधान धर्म ही है। जब और कुछ नहीं हो आता, तब इस धर्म को क्यों न पालन करूं। सुना है कि प्रेम-तरु अश्रु-सलिल से सींचा जाता है। इस प्रेम-तरु को मैं हरा भरा रखना चाहता हूं, तो फिर इसे आंसू से क्यों न सींचूं। किन्तु मुझे यह ज्ञात नहीं होता कि इन छोटी सी आंखों में इतना नीर कहां से आता है। क्या विधाता ने इन्हें हृदय सरोवर के स्रोत से मिला दिया है? क्या जब तक हृदय आर्द्र है, तब तक नयन नहीं सूखता? क्या जब तक हृदय में करुणा है तब तक नेत्रों में नीर है? अच्छा, रोऊंगा, सर्वदा रोऊंगा; देखूं कब तक नयनों के जल नहीं सूखते। मुझे दूसरा कोई काम भी तो अब नहीं रह गया। रोने में हानि ही क्या है? रोने से तो मुझे सुख मिलता है, कलेजा कुछ ठंढा होता है, हृदय का कुछ बोझ उतरता है, चित्त की विकलता जाती है, अन्तःकरण शान्त होता है और रुद्धकण्ठ परिष्कार होता है। किन्तु निश्वास त्याग करना तो सहज नहीं है। निश्वास परित्याग करने से हृदय में विरहानल धधक जाता है, अन्तःकरण जलने लगता है, कलेजे का रक्त सूख जाता है। दीर्घ निश्वास मर्म के शोणित को पान करता है। इसी से कहा जाता है कि प्रेम कलेजा निकाल लेता है। किन्तु अब करूं क्या? अब तो रोना एवम् दीर्घ निश्वास त्याग करना, यही तो मेरे जीवन का कर्त्तव्य रह गया।

तो क्या आज से रोने के अतिरिक्त और कोई काम न करूंगा? ऐसा नहीं है। जीवन-धारण करने में तो सब काम करना ही पड़ेगा। किन्तु उन का करना वा न करना दोनों समान ही है, क्योंकि किसी काम में चित्त नहीं लगेगा। कितने भाव इस समय भी मन में उदय हो रहे हैं, किन्तु उन का प्रभाव हृदय पर नहीं पड़ता। मेरे ऐसे मनुष्य को समाज तथा मित्रमण्डली में रहना भी कठिन ही है। क्योंकि मन में यथार्थ भाव को गोपन कर के उन

के संग सहानुभूति प्रकट करनी पड़ती है। उन की ओर देख कर उन की रुचि के अनुसार हृदयानल को छिपा कर प्रसन्न बदन सहास्य मुख रहना पड़ता है। अपरिचित व्यक्ति के सम्मुख अपने मनोवेग को रोक कर कैसा हर्ष पूर्वक वार्त्तालाप करना पड़ता है। मन रोने को कहता है तौभी हंसना पड़ता है। जब अपना ध्यान दारुण दुःख में घोर चिन्ता में निमग्न है तौभी समाज की निरर्थक हंसीखुशी में सम्मिलित होना पड़ता है। किन्तु क्या करूंगा, जो आगे आवेगा उसे तो अङ्गीकार ही करना होगा। जब इतना किया तो वह भी करूंगा।

किन्तु मालती को क्योंकर भूलूंगा? ज्ञात होता है कि उसे तो इस जन्म में न भूल सकूंगा। हा, मालती! अशुभ मुहूर्त्त में मुझे तेरा दर्शन मिला! तुझे देखना मेरे लिये अच्छा नहीं हुआ। अब तो मेरी सुखलता, आशावल्ली, अभिलाषा विटप पर विद्युत्पात हुआ। पतवारहीन नौका जैसा मैं इस संसार सागर में दुर्वात-ताड़ित हो डोला करूंगा। जिस प्रकार हो अब तो इस असार जीवन का भार अपने स्कन्ध पर ढोना ही पड़ेगा। मेरा अब सर्वस्व गया। इस जन्म में अब मुझे सुख नहीं रहा, शान्ति नहीं रही, सन्तोष नहीं रहा, आशा नहीं रही, भरोसा नहीं रहा, केवल यंत्रणा, दुःख, सन्ताप, परिताप, अनुताप यही रह गये। मेरे हृदय-कुण्ड में नरकानल धधक रहा है। यह मुझे अवश्य जलावेगा। किन्तु आज तो नहीं। यदि आज भस्म होता तो सुखी होता। आगे मर ही कर क्या करूंगा? मृत्यु! तू आज मेरी सहायता कर। यदि आज नहीं करेगी तो फिर क्या करेगी?

" का वरषा जब कृषी सुखानी।
समय चूक फिर का पछतानी॥ "

मरने पैर हो सकता है कि उसे एक बार और देख सकूं। बस! एक बार और देखने की मेरी इच्छा होती है। उसे एक बार और देखता

और कहता कि " मालती ! तुझे प्यार करना मेरे लिये अच्छा नहीं हुआ। तुम्हारे संग प्रेम किया उसी का प्रायश्चित् स्वरूप यह दुःख आज भोग रहा हूं। अपने इष्टदेव को प्यार कर के भी तुम्हारी भक्ति की, उसी का अनुताप आज मुझे दारुण दुःख, असह्य वेदना दे रहा है। उस जगदाधार की अपूर्व प्रतिमा के रहते भी तुम्हें ग्रहण किया। इसी से आज मेरे जैसा दुःखी इस संसार में कोई नहीं है। मैं तो आज तक यही जानता था कि प्रेम सब को दमन कर सकता है, किन्तु आज देखता हूं कि प्रेम मेरे अनुताप को दमन नहीं कर सका। सर्वविजयी प्रेम आज मेरे अनुताप के निकट पराजित हुआ।

किन्तु जगदीश ! क्या तुम मेरे अपराधों को क्षमा करोगे ? तुम तो क्षमासागर और दयासिन्धु हो। तुम्हारी मैं ने निन्दा भी बहुत की, तुम पर दोष भी बहुत आरोपन किया—इसी से तुम्हें क्रोध हो आया है क्या ? किन्तु तुम्हें क्रोध क्योंकर होगा, तुम तो निर्विकार हो। यथार्थ में तुम कैसे हो यह तो मैं नहीं जानता, क्योंकि तुम्हें जानना तो सहज नहीं है। सच पूछो तो तुम्हें वही जानता है जो जानता है कि तुम्हें नहीं जानता, और नहीं जान सकता। तुम्हें अज्ञेय समझना ही यथार्थ में तुम्हें जानना है। क्योंकि—

"गो गोचर जहां तक जाता है, वहां तक तो माया ही ठहरी।"

अतएव जहां तुम हो वहां बुद्धि जाही नहीं सकती, तब फिर क्यों कर समझा जाय कि तुम क्या हो ? किन्तु इस समय मैं तुम्हें जानने नहीं बैठा हूं, केवल तुम से दया का प्रार्थी हूं। तुम जो हो, पर तुम में दया बहुत है, करुणा अपार है, क्षमा असीम है, इसी से तुम दयासिन्धु, करुणानिधि और क्षमासागर कहे जाते हो। किन्तु यहां भी तो शंका आ खड़ी हुई, क्योंकि यदि तुम में उपर्युक्त गुण होते तो तुम व्रज-गोपिकाओं को इतना क्यों रुलाते ? तब क्या करूं ? किसे पुकारूं ? तुम्हारे सिवाय कोई अपना देख भी तो

नहीं पड़ता। जैसे हो तुम्ही हो। अब मेरी रक्षा करो, मेरे मन को सुस्थिर करो। इसे अपनी अपनी ओर झुकावो। मेरी प्रेमलतिका को अपना ही अवलम्बन दो, पिछली बातों को भूल जाने की शक्ति दो, मेरे अन्त:करण को इस प्रकार शुद्ध करो कि फिर इस में किसी प्रकार का विकार उत्पन्न न हो। आज मुझे ज्ञात हुआ कि तुम में दृढ़ भक्ति होने का सहज उपाय यही है कि सच्चे प्रेम-पात्र की ओर से पद पद में निराश हो। अब मेरे हृदय-मन्दिर से मोह अन्धकार को दूर करो और उस में अपने युगल स्वरूप को स्थापित करो। मेरे हृदय पट पर अपना मनोहर चित्र अङ्कित करो। मेरी आंखों को सौभाग्य दो कि तुम्हारी मनोहारिणी झांकी का दर्शन पावे। मैं सौन्दर्य्यप्रेमी हूं, सौन्दर्य्योपासक हूं, सौन्दर्य्य ही देखना चाहता हूं, सौन्दर्य्य ही की पूजा करना चाहता हूं। एक बार निज सुन्दर स्वरूप को दिखा कर मुझे बड़ भागी करो और इस विह्वल चित्त को शान्ति दो।

यह कहना था कि मार्तण्ड ने अपने मुख मण्डल को घटा की ओट से निकाला। नदी सैकत पर उन की ज्योति हंस उठी। ज्ञात हुआ कि भास्कर द्वारा भगवान् ने मुझे दर्शन दिया। मैं ने कोटि कोटि प्रणाम किया। सूर्य्य किरण सरयू जल पर पड़ कर उन की शोभा बढ़ाने लगी। चिता भस्म हो बुझ गयी। चिताभस्म को भी सरयू नीर में प्रवाहित कर मैं घर फिर आया। संसार में साथ यहीं तक दिया जाता है। संसार का नाता यहीं टूट जाता है।

चतुर्दश कल्पना।

अद्भुत घटना।

Ber ; Is not this something more than fantosy ?
Hor : Before my God, I might not this believe,
Without the true avouch of mine own eyes.
Shakespeare.

हेमन्त की गम्भीर रजनी राज्य कर रही है। तुषार दल प्राणी मात्र को बेचैन कर रहा है। घर में नख से शीश तक उष्ण वस्त्र से ढांके लोग पड़े हुए हैं। जगह जगह पर अधूम अग्नि अंगीठियों में जल रही है। दांत पर दांत कड़कड़ा रहे हैं। बदन में पवन-स्पर्श से शीत दौड़ने लगती है। रात बड़ी होने के कारण मेरे जैसे अभागों को बहुत दुःख उठाना पड़ता है। बाहर कुहसा छा रहा है। चन्द्र तथा नक्षत्रों की ज्योति मन्द पड़ गयी है। समीर शीतल तथा तीव्र डोल रहा है। जल के स्पर्श मात्र से शरीर गला जाता है। ऐसे समय में सुखी वही है जो अपने प्रेमपात्र के साथ रास रङ्ग में रात बिताते हैं।

आज मैं अपने शयन-मन्दिर में अकेला पड़ा हूं। आज मेरी प्रणयिनियों को संसार छोड़े पांच छः मास बीत गये। संसार के

किसी काम में उलट फेर नहीं हुए। किन्तु किसी काम में मेरा मन नहीं लगता। इस बीच में कितने स्थानों में मैं ने भ्रमण किया, किन्तु कहीं चित्त को विश्राम नहीं मिला। बारम्बार मैं यही सोचता हूं कि—

" घर में लगता है नहीं सहरा में घबड़ाता है दिल।
अब कहां लेजा के बैठें ऐसे दीवाने को हम ॥ "

आज कई दिनों से घर ही पर हूं। हेमन्त-निशा में आज मैं अकेला अपने बिछावन पर पड़ा करवटें बदल रहा हूं। मेरे निकट आज कोई नहीं है। इस अनन्त संसार में अब ऐसा कोई नहीं है जिसे मैं अपना कह सकूं। क्या था ? क्या हो गया ? जाड़ की रात मेरे लिये द्रौपदी की चीर हो रही है। अकेला जान कर हेमन्त भी मुझे बेअन्त सता रहा है। क्योंकि—

" शिशिर के पाला को न व्यापत कसाला तिन्हें जिन के अधीन येते विदित मसाला हैं। तान तुकताला हैं विनोद के रसाला हैं सुबाला हैं दुसाला हैं, विसाला चित्रसाला है ॥ "

किन्तु यहां तो मेरे पास उपर्युक्त पदार्थों में अब कोई नहीं रहे। किसी प्रकार इधर उधर करते दो पहर रात बीत गयी। किन्तु घोर चिन्ता के कारण मेरी आंखों से नींद जाती रही। चारों ओर सन्नाटा राज करने लगा।

मन में आज और दिनों से अधिक बीती बातों का मुझे ध्यान बंध गया था। अपनी अवस्था पर विचार मन ही मन मैं ने कहा कि व्यक्ति विशेष चला जाता है, किन्तु उस के रहने न रहने का प्रभाव और कामों पर नहीं पड़ता। दूसरे के लिये दूसरा अपना काम बन्द नहीं करता। क्या संसार का नियम है! मालती गयी, मेरी भार्य्या गयी, मेरा हौसला गया, किन्तु संसार का सब काम तो उसी भांति चल रहा है।

आज अखिल ब्रह्माण्ड में मैं अकेला हूं। जिन के रहने से यह संसार सुखागार था, वे अब नहीं हैं। मेरे लिये संसार अब दुःखों

का निकेतन हो गया। विनोद-प्रदा धरनी आज मेरे लिये दुखदा हो गयी। गृह मेरे लिये अरण्य हो गया। अन्तःकरण शून्य हो गया। आशा देवी ने आज उसे परित्याग कर दिया। जब आशा ही न रही तो जीवन क्या ? जीवन में सुख ही क्या ? मैं जीवन-मृतक हो रहा हूं। मेरे उच्चाभिलाषा ने अब मुझे परित्याग कर दिया, विफल मनोरथ पृथिवी पर भूत इव अब मैं भटकता फिरता हूँ। अब मेरा सर्वनाश हो गया। मैं निकम्मा हो गया। उफ—

" इश्क ने गालिब निकम्मा कर दिया।
वरन हम भी आदमी थे काम के॥ "

अब तो देखता हूं कि प्रेमप्रदीप भी मेरे हृदय-मन्दिर में निर्वापित हो गया। प्रेम का नाम याद आते ही सब इन्द्रियों के सहित मेरी आत्मा कांप उठती है। हाय ! हाय ! मैं अब तक नहीं समझता था कि प्रेम ऐसी भयङ्कर वस्तु है। क्या प्रेम के पाले पड़ कर सभी ऐसी ही दुःखी होते हैं ? क्या सब प्रेमियों के हृदय में नरकाग्नि इसी प्रकार धधकती है ? क्या सब प्रेम-भिखारियों का ऐसा ही सर्वनाश होता है ? हां ! विचारने से तो ऐसा ही विदित होता है। प्रेम के बांटे आमोद प्रमोद कदापि नहीं पड़ा है। कवि के वाक्य की सत्यता आज मुझे भली भांति ज्ञात हो गयी कि—

"प्रेम पयोनिधि में धसिकै हंसिकै कढ़िबो हंसि खेल नहीं है।"

किन्तु अब क्या करूंगा ? अपने बचे बचाये जीवन का क्योंकर निर्वाह करूंगा ? ये प्रश्न तो मेरे लिये अत्यन्त कठिन हो रहे हैं। अभी तो इन का उत्तर देने में मैं नितान्त असमर्थ हूं। इतना अवश्य कहूंगा कि अभी तक जिस अवस्था में मैं हूं कोई काम मुझ से हो नहीं सकता। क्योंकि चेष्टा करने से भी मालती की स्मृति नहीं हटती।

मालती का ध्यान प्रबल होते ही मुझे ज्ञात हुआ मानों मालती मेरे सामने ग्रीवा झुकाये नम्र तथा सङ्कुचित भाव से पुष्प भार से भरी

सोनी लता सी खड़ी है। रुचिर किनारी टंकी नीले रंग की मल-मली साड़ी बदन से लिपट रही थी। किन्तु जिस प्रकार काले बादलों को भेद कर चन्द्र-बिम्ब सुख देता है, उसी प्रकार आच्छादन को भेद कर तन की आभा मन को बरबस अपनी ओर खींच रही थी। कोमल काले लम्बे बाल पृष्ठ, स्कन्ध तथा भुजा को ढांक कर नितम्ब पर लटक रहे थे। मृणाल-युत जलज ऐसा कोमल कर अलच्चित भाव से दोनों ओर लटक रहे थे। कलाई पर स्वर्ण कड़ा और बायीं अँगुली में हीरक मुन्दरी विचित्र शोभा दे रही थी। ललाट पर दोनों बङ्क भँउओं के बीच सेन्दूर विन्दु उस की सुखमा बढ़ा रही थी। कानों से तरिवर लटक रहे थे। मांग की सुघराई देखते ही बनता था। लाल लाल अधरों पर हंसी नाच रही थी। जान पड़ता था मानो नव विकसित पद्म दल पर बालरवि की किरणें क्रीड़ा कर रही हों। चिकने कपोलों पर लालिमा सजीवता का प्रत्यक्ष परिचय देती थी। बदन को अञ्चल से छिपा कर अचञ्चल दृष्टि से वह पृथिवी की ओर शान्त भाव से देखती हुई मन को चञ्चल कर रही थी। ज्ञात होता था मानो मञ्जुल मूर्त्तिमान् लज्जा तथा सुन्दरता खड़ी हो। मुझे वर्त्तमान् अवस्था की सुधि न रही। अलस लोचन से चकोर सदृश मैं उस के मुख-मयङ्क की ओर बहुत देर तक देखता रह गया। मन में जगा कि—

> "यों चित्त को चकित जो कर डालती है।
> ऐसी मयङ्कबदनी क्या मालती है॥"

बहुत देर तक उसे एक ही अवस्था में खड़ी देख कर मेरा ध्यान भङ्ग हुआ और ज्ञात हुआ कि भ्रमवश मैंने मालती को यहां देखा। यथार्थ घर में कोई नहीं था। एक बार मुझे ज्ञान पड़ा कि मैं स्वप्न देख रहा हूं। किन्तु विचार करने पर यही निश्चय हुआ कि चिन्ता से मेरा मन बिगड़ गया है। क्रमशः एक एक कर पिछली बातें

याद आने लगीं। आह भर कर मैं ने कहा कि हाय! विधाता मुझ से कैसा प्रतिकूल हो रहे हैं। दुःख पर दुःख किस प्रकार मुझ पर तरङ्ग जैसे आ रहे हैं। हेमन्त की दुःखद निशा कटती नहीं, नींद आती नहीं, पूर्व स्मृति चित्त को व्यग्र कर रही है, तिस पर यह अलौकिक दृश्य! देखता हूं कि मेरी बुद्धि अधिक दिनों तक अब ठिकाने नहीं रहेगी। क्या मुझे भ्रान्ति हो रही है? क्यों, मैं स्वप्न भी तो नहीं देखता था। नींद का तो कोई चिन्ह नहीं पाते। तो क्या जागरित-स्वप्न इसी को कहते हैं? सचमुच तो यहां मालती नहीं आयी थी? हाय! क्या मुझे सताने के लिये चिता से उठ कर मुर्दे आने लगे? क्या भस्म पुनः देह धारण कर मुझे सन्ताप देने के लिये यहां आयी? हाय! यह दुःख तो असह्य है। किन्तु ऐसा तो कभी सुना नहीं। हां, लोगों को कहते सुना है कि मरने पर भी इष्ट मित्रों को कभी कभी मृतक-आत्मा अपने पार्थिव स्वरूप में दर्शन दे जाती है। तो क्या यह मालती की आत्मा थी? किन्तु उसे तो साधारण लोग बोल चाल में भूत कहते हैं। मैं तो जीते जी यह भूल कर भी विश्वास नहीं कर सकता कि यह मालती की मूर्त्ति जो मैं ने अभी देखी वह उस की प्रेतात्मा थी। मालती प्रेत-लोक में कभी जा नहीं सकती। मुझे इस का पूर्ण प्रमाण मिला है कि वह दिव्य धाम को जा चुकी है। तो क्या दिव्य लोक के जीव भी हम-लोगों को दर्शन देने आते हैं? महात्मा लोगों से तो सुना है कि कभी कभी आते हैं। तब मालती से कुछ पूछ क्यों नहीं लिया? किन्तु क्या वह बोलती? यह भी बात ठीक नहीं जंचती। हां, यह भी हो सकता है कि मालती के विषय में अधिक चिन्ता करते करते मेरा मन चञ्चल हो गया हो और वह मूर्त्ति जो मेरे मन तथा ध्यान में सदा वास करती है, भीतर से बाहर निकल कर मेरी आंखों के सामने खड़ी हो गयी हो। किन्तु इन सब बातों के विचा-रने से अब क्या लाभ होगा? इस में तो सन्देह नहीं कि अभी इसी

लगभग अपनी इन आंखों से रुधिर, मांस की बनी हुई मालती को मैं ने देखा।

एक बार जब वह यहां आयी थी तब मुझे उसे पूछना उचित था कि वह कहां है? क्या करती है? कैसे रहती है? मेरा प्रेम-विटप उस के हृदयोद्यान में अभी तक लहलहाता है वा नहीं? हाय! हाय! अन्त में मेरा प्रण नहीं रहा—एक दिन मुझे फिर मालती को देखना ही पड़ा। उस दिन मैं ने उस से कहा था कि फिर मैं तुम्हें न देखूंगा। किन्तु आज मुझे उसे देखना ही पड़ा। भला इस में मेरा क्या दोष है? जब भगवान को यही इच्छा थी कि मेरी प्रतिज्ञा भङ्ग हो तब मेरा क्या वश था?

किन्तु ईश्वर की ऐसी इच्छा क्यों हुई? वह मुझे इतना क्यों कुढ़ाते हैं? संयमी का संयम उन्हों ने क्यों तोड़ा? प्रभो! मुझ पर तुम्हारा पूरा अधिकार है; तुम मेरे कर्त्ता हो, इस से क्या तुम मुझे सदा सताया करोगे? मेरे कलेजे के घाव में वार वार नश्तर दिया करोगे? इस दुःखसागर के पार भला मैं क्योंकर जाऊं? लोग कहते हैं कि धैर्य्य की सहायता लो। भला इस दशा में मैं क्योंकर धैर्य्य धरूं? क्या बुलाने से धैर्य्य आता है? धैर्य्य को कौन कहे मेरे ऐसे अभागे को बुलाने से मौत भी नहीं आती।

"मुझ को काटे कहां वह है तलवार।
दाग़ दे मुझ को है कहां वह नार॥
मौत को मौत आहि जायगी।
क़सद मेरा जो कर के आयेगी॥"

किन्तु जब मेरे हाथ में कुछ हई नहीं है तब पछता ही कर क्या करूंगा? मेरे मन से अब तो भय भी हट रहा है। अब मुझे किस बात का डर हो सकता है? इस से बढ़ कर अब मुझ पर दुःख ही क्या पड़ेगा? आवे दुःख, मुझे जितना चाहे सता ले। दुःख से

अब मैं क्या हिचक सकता हूं ? मैं निश्चय जानता हूं कि संसार में अब कोई दुःख ऐसा नहीं है जो इस से अधिक मुझे दुखा सके। आओ, आते जाओ।

"डट कर खड़ा हूं खौफ़ से खाली जहान में।
तसकीन दिल भरी है, मेरे दिल में जान में॥"

किन्तु लोग समझेंगे कि मैं पागलों सा बक रहा हूं। नहीं! नहीं! पागलों की यह बात नहीं है, क्योंकि यह स्वाभाविक बल नहीं है। यह निराशा जनित दुस्साहस है। यह कब तक ठहरेगा? इस के सहारे कब तक मैं अपनी संसारयात्रा निर्वाह करूंगा? अपना जीवन भार वहन कर सकूंगा?

जो हो, मेरी बुद्धि में नहीं आती कि जब मालती मर गयी तब उस की स्मृति क्यों नहीं जाती? जब वह मेरी नहीं हुई तब पराये की बन कर वह मुझे क्यों सता रही है? जब उसे मैं अपनाना चाहा तब तो उसे पा न सका। किन्तु अब मैं उसे भूलना चाहता हूं तब वह क्यों मुझे तरसा रही है? किसे दोष दूं? किस से पूछूं!

सुना है कि सब के कर्त्ता धर्त्ता वही मेरे प्रेम-देव हैं। विपद्-भञ्जन उन्हीं को लोग कहते हैं। जिस को जो इच्छा हो कहे, किन्तु वह तो निर्विकार और निर्लेप ही हैं। तब मेरे दुःख सुख से उन को क्या सम्बन्ध है? दूसरे के दुःख से क्या दूसरा दुखित होता है? चातक के दुःख से क्या स्वाती दुःखी होती है? क्या पतङ्ग के संग दीपक की सहानुभूति होती है? क्या चिड़िये के दुःख को बालक अनुभव करता है? तो फिर मेरे दुःख का प्रभाव उन पर क्यों पड़ेगा? वह न सुनें तो क्या, इस से मैं कहने से भी गया? जो हो आज तो मैं कहूंगा, प्राण खोल कर कहूंगा, हृदय चीर कर उन्हें दिखाऊंगा। देखूं, मेरी बातों में कुछ असर है वा नहीं? देखूं, मेरी आज वह सुनते हैं वा नहीं?

प्राणनाथ! मेरे हृदय-मन्दिर से तुम्हारी प्रतिमा हटा कर जो मालती ने अपना अधिकार जमाना चाहा था और मैं ने जो उसे इस कार्य्य में सहायता दी थी, इसीलिये क्या तुम मुझे इतना दुःख दे रहे हो? अच्छा जो हुआ सो हुआ, इस संसार को अपने योग्य न पा कर स्वर्गीया मालती तो इसे परित्याग कर चली गयी। अब तो वह मेरी होनेवाली नहीं। अब तो मेरे प्रेम का कोई सहारा रहा नहीं, क्योंकि मालती की आशा तो मैं ने छोड़ ही दी। उस से मेरा कोई सम्बन्ध रहा नहीं। किन्तु तुम तो मेरे पुराने सम्बन्धी हो। कई जन्मों से तुम्हारे संग सम्बन्ध दृढ़ करता चला आता हूं। मेरे जीवन-सर्वस्व! क्षमासागर! मेरे अपराधों की ओर न देखो, उन्हें भूल जाओ, क्योंकि करोड़ों अपराध करने पर भी मैं तुम्हारा ही हूं; और तुम भी तो मुझे अपना चुके हो। भूलना, भटकना तो मनुष्य का स्वाभाविक धर्म ठहरा। किन्तु मेरा विश्वास है, अटल धारणा है कि यदि तुम चाहते तो मैं नहीं भूलता। जो हुआ सो हुआ। किन्तु उस से क्या मेरे एवम् तुम्हारे सम्बन्ध में कुछ उलटफेर हुआ? तुम्हारी प्रतिमा पूर्ववत् मेरे हृदय-मन्दिर में जागरित थी। परन्तु जिस प्रकार घोर जलद की ओट में सूर्य्य कुछ देर छिप जाता है, उसी प्रकार मालती की ओट में कुछ दिन तक तुम्हारी मूर्त्ति पड़ गयी थी। बीती हुई बातों की अब क्या चर्चा! भग्न मूर्त्ति को मेरे सामने क्यों खड़ा करते हो? फटो चित्र क्यों दिखाते हो? टूटी प्रतिमा का दर्शन क्यों कराते हो? अब तो मालती की चिन्ता और उस का ध्यान मैं छोड़ना चाहता हूं। अब तो तुम्हीं को देखने की इच्छा होती है। तुम्हीं से मिलने की अभिलाषा होती है। जिस प्रकार मालती इस समय यहां खड़ी थी, वैसे ही तुम एक बार आ कर दर्शन क्यों नहीं दे जाते? तुम्हें देख कर हृदय को ढाढ़स होता, तुम्हारी अलौकिक छवि पर मैं सहस्र मालती को न्योछावर कर सकता हूं। यदि एक बार तुम्हें देख पाऊं तो अनेक दिनों का

अपना उमङ्ग निकालूं। तुम से यह पूछना है कि अन्तर्यामी कहला कर भी क्या तुम मेरी हृदय को यथार्थ अवस्था नहीं जानते? क्यों सर्वत्र विद्यमान रह कर भी मेरी बातें नहीं सुनते, अथवा सुन कर भी अनसुन बन जाते हो? अच्छा प्रेम-भाजन जो करे, किन्तु प्रेमी तो उस से निराश नहीं होता। देखें, कब तक अपने विरह में तुम मुझे तड़पाते हो? जितना तुम्हें रुलाना है रुलाओ, मैं तैयार हूं। जितना सताना है सताओ; देखो दिल का कोई उमङ्ग बच न जाय, कोई अर्मान बाक़ी न रह जाय। दुःख को भी अन्त में दुःख ही रह जायगा, क्योंकि मेरे ऐसा ग्राहक उसे कहीं नहीं मिलेगा, क्योंकि नष्ट जीवों का अवलम्ब सब स्थान में नहीं मिलता। इतना कह रहा हूं किन्तु तुम कुछ ध्यान नहीं देते। जान पड़ता है कि तुम्हारा हृदय पत्थर का है, इसी से लोग पाषाण की प्रतिमा बना कर तुम्हारी पूजा करते हैं। जो हो, किन्तु यह तो कहो कि ऐसा का पलटा ऐसा क्यों मिलता है? भला, जिसे मैं अपना जीवन सर्वस्व मान लूं वह मुझे एक बार दर्शन भी न दे? परन्तु यह कब तक निबहेगा। एक दिन न एक दिन तो अवश्य ही तुम्हें मुझे अपनी अलौकिक छवि दिखलानी होगी।

"थाम्हे हुए कलेजे को आओगे आप से।
मानोगे जज़्ब दिल में भला क्यों असर नहीं॥"

क्या करूं अब तो तुम्हें छोड़ कर मेरी दूसरी गति भी तो नहीं है। किन्तु हाय, आज का दुःख क्योंकर कटे? हाय! हाय! अब तो सहा नहीं जाता।

ऐसा कहते कहते मेरा गला भर आया। प्राण व्याकुल हो गया। बिछावन में मुंह लुका कर मैं फूट फूट कर रोने लगा। मेरी यह अवस्था कितनी देर तक रही, सो इस समय कहना कठिन है। किन्तु इसी अवस्था में मुझे ज्ञात हुआ कि मानों मेरे कानों में

कोई कह रहा है कि "अब अधीर होने से क्या होगा ? बीती बातों के लिये तुम इतना सोच क्यों कर रहे हो ? दुःख अथवा सुख सदा किसी के निकट सम भाव से नहीं रहता। एक दिन ऐसा आ सकता है कि तुम अपने को पुनः सुखी समझने लगो। जो चली गयीं, उन के लिये तुम चिन्ता न करो। उन की आत्मा पहले से अधिक सुखी है। तुम भी अपने कर्त्तव्यों को पालन करने में दत्त चित्त हो कर आनन्द से अपनी जीवन-यात्रा निर्वाह करो। तुम्हारी मनःकामना एक दिन अवश्य सिद्ध होगी। अपने हृदय से स्वार्थ तथा संकीर्णता को हटावो। परहित-व्रत-साधन में अपना मन दो, सब प्रकार तुम्हारा मङ्गल होगा। आज से तुम्हारे हृदय में मानसिक बल का सञ्चार करता हूं, अपने कर्त्तव्य-पालन में मन लगावो। पराये के दुःख से दुःखी होना सीखो, तुम्हारा मानव-जन्म सफल एवम् सार्थक होगा। तुम्हारे हृदय-वाटिका में जो प्रेमवल्लरी लहलहा रही है, उसे यत्न से सींचो, उस के सौरभ से ब्रह्माण्ड परिपूर्ण हो जायगा। मालती का अवलम्ब हटा कर उसे जगदाधार का आधार दो। अभी समय है, चेत जाओ नहीं तो फिर पछताना पड़ेगा।"

जब उपर्युक्त बातें मेरे कानों में पड़ीं तो मैं अर्द्धनिद्रित अवस्था में था। अन्त की बातें सुन कर मेरी आंखें खुल गयीं। आश्चर्य में आ कर मैं चारों ओर देखने लगा। किन्तु कहीं किसी को नहीं देख कर मैं बिछावन से उठ खड़ा हुआ। इतने ही में बाहर से चिड़ियों की आवाज कानों में पड़ी, ज्ञात हुआ कि भोर हो गया है। मन में आया कि दुःखद हेमन्त-निशा का प्रभात तो हुआ ; किन्तु मेरी दुःख-रजनी का प्रभात अभी तक नहीं हुआ, देखें कभी होना है या नहीं। किन्तु इतना अवश्य कहूंगा कि जब से मैं ने रात के सदुपदेशों को सुना है, तब से मेरे दुर्बल हृदय में एक नूतन बल, उत्साह तथा आशा का सञ्चार हुआ है ; प्राणों का शान्ति की ओर कुछ झुकाव हो गया है, अन्तरात्मा की आपदा मेरी समझ में अब

कुछ कुछ आ रही है, क्योंकि मेरा अन्तःकरण शुद्ध हुआ है। मेरे जीवन का यह अभ्युदय हुआ। सोचता हूं कि अपना मन बहलाने के लिये कुछ दिन कहीं दूर देश में जा बसूं।

बैठा हुआ कुछ ऐसी ही बातें सोच रहा था कि मेरे मित्र मेरे पास आ पहुंचे। मुझे बहुत मलीन देख उन्होंने महात्मा से फिर मिलने की राय दी। उन की सम्मति मुझे पसन्द आयी और हम लोग महात्मा की खोज में उन की कुटी की ओर चले।
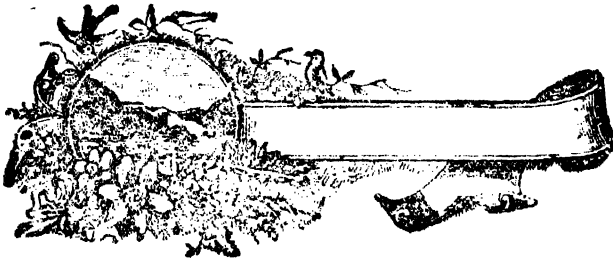
उपसंहार।

(ग्रन्थकार की दो दो बातें।)

" When at the first I took my pen in hand,
Thus far to write, I did not understand,
That I at all shall make a little book,
In such a mode.............................."

J. Bunyan.

अब अपने नायक का अधिक प्रलाप सुना कर आप लोगों का समय नष्ट करना मैं व्यर्थ ही समझता हूं। जो कुछ कहना था सब कहा जा चुका—क्योंकि अब मेरे नायक की जीवनी में कोई ऐसी बात न रही जिसे सुन कर आप लोग कुछ लाभ उठावें।

आप लोगों को उपदेश देने के अभिप्राय से मैं ने यह प्रबन्ध नहीं लिखा है। मन के भाव तथा दुःख को दूसरे पर प्रकटित करने से मन का बोझ कुछ हलका होता है और हृदय में शान्ति आती है। अतएव स्वार्थ का वशीभूत हो कर मैं ने अपने नायक को सम्मति दी कि वह अपनी कहानी कहे।

अपने प्रेम का विषम परिणाम मेरे नायक ने आप लोगों को सुना दिया। इस के जीवन की दुखद कहानी पढ़ कर यदि आप लोगों को कुछ कष्ट हुआ हो और आप लोगों के नर्म कलेजे में चोट लगी हो, तो मुझे क्षमा करेंगे। इस जीवनी से यदि आप लोगों को कुछ लाभ पहुंचे तो मैं अपने लिखने के परिश्रम को सुफल समझूंगा। संयम को प्रतिपालन नहीं करने से जो मेरे नायक को दुःख एवम् सन्ताप हुए हैं, उन्हें तो आप लोग सुन ही चुके। मेरे नायक के उदाहरण से शिक्षा ले कर मैं आशा तथा अनुरोध करता हूं कि आप लोग संयमी होने का यत्न करेंगे। संयम को काम में लाने से मनुष्य को बड़ा लाभ होता है।

इस प्रबन्ध में मैं ने कोई नई बात नहीं लिखी। जिस प्रकार माली बड़े लोगों के मनोहर पुष्पोद्यान से विविध सुमनों को तोड़ कर और अपनी रुचि के अनुसार एक सुन्दर विचित्र माला गूंथ कर अपना कहता हुआ मालिकों को समर्पण करता है और जिसे वे लोग अपने कण्ठ का हार बना कर उस का आदर करते हैं और उस का उत्साह बढ़ाते हैं, उसी प्रकार मैं ने अपने अग्रज साहित्य-सेवियों के मनोहर साहित्योद्यानों से भाव रूपी सुन्दर, रुचिर तथा मनोहर पुष्पों को तोड़ कर एक क्षुद्र माला गूंथी है। आशा है कि रसिक गुणग्राही साहित्य-प्रेमी इसे सादर अङ्गीकार कर मेरा उत्साह बढ़ावेंगे। यदि भूल भ्रम तथा असावधानता-वश कहीं कोई दोष, अशुद्धि एवम् कटु उक्ति रूपी कण्टक या पांखुरी इस साहित्य-हार में रह गयी हो और आप लोगों के कोमल हृदय में उन से कुछ व्याघात पहुंचे, तो आप लोग क्षमा करेंगे: क्योंकि श्रेष्ठ लोगों का प्रधान गुण क्षमा ही है।

जब यह प्रबन्ध मैं लिखने बैठा तब मेरी ऐसी पुस्तक लिखने की इच्छा नहीं थी। एक साधारण उपन्यास लिखने का मेरा

उद्देश्य था। किन्तु न जाने किस दैविक बल से, यह निबन्ध तैयार हो गया और मुझे यह भी ज्ञात नहीं हुआ कि मैं क्या लिख रहा हूं। बस अब क्या हो? जैसा है आप लोगों के सम्मुख उपस्थित करता हूं।

एक बात मुझे यह कहनी है कि मैं इस विषय मे अभिज्ञ नहीं हूं कि इस प्रबन्ध में स्थान स्थान पर जो धर्म तथा पुण्य कर्मों की आलोचना की गयी है आज कल के बहुतेरे रसिक पाठकों को मनोरञ्जक नहीं होगी। क्योंकि प्राय: रसिक चित्त-विनोदार्थ ही उपन्यासों को पढ़ा करते हैं और जो कहीं उन्हें इन पुस्तकों में गूढ़ विषयों पर सरल एवम् अनिर्दिष्ट उपदेश-जनक विचार मिला तो इन से उन को अरुचि हो जाती है। उपन्यास-प्रेमी प्राय: कथा भाग ही की लालच से उपन्यासों के निकट आते हैं और उन की यही इच्छा रहती है कि जहां तक कथा उत्तम एवम् मनोहर हो वही अच्छा। ऐसे पाठक कथा में ऐसे फंस जाते हैं कि वर्णना एवम् गूढ़ विचारों को देखना और उन विचारों के संग अपनी बुद्धि का संयोग करना उन के लिये दु:साध्य हो जाता है। और ऐसा न करने से लेखक के भाव को वे समझ ही नहीं सकते; बस, अन्त में इस का परिणाम यह होता है कि उच्च भाव भूल कर उपन्यासों की ओर ये लोग दृष्टिपात तक नहीं करते। किन्तु सब की रुचि एक सी नहीं होती। कितने विज्ञ पाठक ऐसे हैं, जिन्हें गूढ़ तथा गम्भीर विषय ही प्रिय होता है। ऐसे लोगों को मेरी आलोचना अवश्य रुचिकर होगी।

यह कोई निर्दिष्ट उद्देश्य-मूलक प्रबन्ध नहीं है। विविध प्रकार की बाहरी घटनाओं के साथ अपने नायक के मानसिक भावों का सम्बन्ध मैं ने इस में दिखलाया है। इस में प्रधान विषय मन के भाव एवम् ज्ञान हैं, घटनाएं इस की आनुषङ्गिक व्यापार हैं। घटना की सृष्टि केवल मन के भाव को दिखलाने के लिये की गयी है।

उपाख्यान इस का चित्रपट और मनोभाव आलेख्य है। किन्तु अपने उद्देश्य को पालन करने में मैं कहां तक कृत-कार्य्य हुआ हूं सो नहीं कह सकता।

इतना कहने पर भी यदि किसी को इस पुस्तक से घृणा वा अरुचि हो तो मैं क्या कर सकता हूं? मेरा कुछ वश नहीं। क्योंकि जब मैं अपने नायक की कहानी आप लोगों को सुनाने बैठा हूं तो जो जो भाव उस के मन में जब जैसे आते गये थे, उन का उल्लेख क्योंकर न करूं? अब इस के अतिरिक्त और मैं क्या कह सकता हूं कि "जैसा है इसे अङ्गीकार कीजिये; क्योंकि अब यह बदल नहीं सकता। अब तो जो कुछ है यही है। हां, मेरी इच्छा अवश्य होती है कि यह इस से अच्छा तथा उच्च कोटि का होता।"

अन्त में मेरी यही प्रार्थना है कि भ्रमवश आप लोग मेरे किसी पात्रका पता लगाने की चेष्टा न कीजियेगा, क्योंकि यथार्थ में ये कोई व्यक्ति विशेष नहीं हैं। अतएव आप लोगों का परिश्रम व्यर्थ जायगा। इन लोगों के समान अनेक इस संसार में पाये जाते हैं। अतएव यदि मेरी कोई उक्ति, वर्णना अथवा आलोचना किसी पर प्रत्यक्ष पड़े तो वह कृपया समझलेगा कि संयोग है, दैवात् ऐसी संघटना हुई है। सच पूछिये तो इन की सृष्टि काल्पनिक है। कवि-रुचि एवम् कल्पना देवी के सहवास से इन की उत्पत्ति हुई है। बस "अब जय, जगदीश हरे!" कह कर मैं आप लोगों से कुछ देर के लिये विदा होता हूं।

॥ सम्पूर्ण ॥

शुद्धाशुद्ध पत्र।

To err is human.—Prob.

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
समर्पण		+	+
१	५	धम	धर्म
२	१५	का	को
५	६	महत	महत्
,,	,,	जगत	जगत्
६	२	सम्मुख	सम्मुख
,,	२१	वातसल्य	वात्सल्य
पुस्तक			
४	१	कुलाया	बुलाया
७	६	विकाशित	विकसित
,,	११	लावण्यता	लवणता *
,,	१२	जसी	जैसी
,,	२५	वे	थे
८	१४	दोष	के दोष
१३	११	कब और	और कब
१४	२१	को	के
१५	१	ह	है
,,	८	बठी	बैठी
,,	१३	नदी	रूप नदी
१८	१	समझा	समझाया
,,	१६	था	थी

* ऐसेही और स्थानों में भी।

२१	१	मुम्फ	मुझे
,,	१३	मार दो	मारा
२२	२७	हं	हूं
२४	२३	शरदेन्दु	शरदिन्दु
२५	२०	विकश	विकाश
३२	१	पर	पेर
३७	१५	मनुष्य भक्ति	मनुष्य भक्त
४०	३	भगवत्	भगवान्
४१	२१	भगवद्	भगवान्
४२	१७	सवं	सब
,,	१८	उसे	उसी
,,	१९	भरा	भरी
४४	२३	ह	है
४५	९	पलटा	पलटे
,,	९	प्रगट	प्रकट
,,	१९	तुम	तुहिं
४६	१७	जन्म भर	जन्म
,,	२५	इन्दो	इन्दों
४७	९	कैसा	कैसो
,,	११	विषय	विषय में
४९	१	पूण	पूर्ण
,,	९	मद	मद्य
५१	१४	कमो	कर्मो
,,	१६	सो	में
५३	२	जम	जैसे
५४	३	बिठा	बिटा
		——	प्राप्त को

५६	१७	उमन्न	उत्पन्न
,,	२३	पत्नि	पत्नी
५७	१२	सेबात	बाप से
५८	१०	सब ओर	ओर सब
,,	११	सब	सो
६०	१८	प्रम	प्रेम
६२	१५	ह	०
६५	५	निर्वाह	के निर्वाह
६६	१८	पाये हो	तुम ने पाया है
,,	१८	किये हो	किया है
६७	४	सतेज	मसृण
,,	१४	प्रम	प्रेम
७००	१४	रोने को	रोते
७२	२०	उसे	मनुष्य उसे
७३	१४	आते	आये
७५	५	e'er	o'er
,,	८	तट	के तट
७६	१	सकत	सैकत
७६	२	सुगन्धि	सुगन्ध
७८	८	साची	माचिता
,,	१८	पड़ा	पड़ी
८२	५	मैं	ने
,,	६	के मुस्कुराहट	की मुस्कुराहट
८५	१६	भरी	भरा
८३	१४	कियारियाँ	क्यारियाँ
८६	१४	दधि होती था	दधि होता था
१०१	१०	जो	जैसा
१०४	३	निन्दनीय	ऐसी क्षति निन्दनीय

१०८	१	कुलकानि	कुलीनता
,,	१४	और	और प्रेम
१०६	८	अपने मर्य्याद मान	अपनी मान मर्य्यादा
११०	२१	चतुरी	चतुरा
१११	१६	प्रणय	प्रणय घटा
११५	८	मन्दानिल…सुगन्धि	मन्दानिल च्युतमुकुल की सुगन्ध
,,	१०	मेर	सो मेरो
,,	१६	मलीन	मलिन
११८	२	शरद	शरत्
१२०	७	मृत्य	मृत्यु
१२१	१२	कादर	कातर
१२३	४	एक	एक लिफाफा
१२६	१८	सञ्चित्	सञ्चित
१२८	२	त	व्रत
,,	७	हो	हो
१३१	८	वही	यही
,,	१३	सकते थे	सकता था
१३३	२१	बिरले…करते हैं	बिरला…करता है
१३४	१४	मालती ने	मैं ने मालती
१३५	११	किया	को
,,	२०	सुगन्ध कुसुम	कुसुम सुगन्ध
१३६	६	के पर्वाह	की पर्वाह
१४०	३	मेरे	मुझ
१४१	५	लक्ष पर चोट पहुंचाया	लक्ष्य पर चोट पहुंचायी
१४२	६	नभ	नभो
१४३	१८	इधर	

१४३	१८	कग्ना	कग्णा
,,	२२	मोच	शोच
१४५	६	लगा	लगी
१४६	२,५	मान्	मान
,,	२१	खंखि	खंखि
,,	२४	नारि	नारी
१४७	३	को शिशिर	का शिशिर
१४८	८	प्रारब्ध	प्रारब्धि
,,	२०	इङ्गित	इङ्गित कर
,,	२१	विशेश	विशेष
१४९	१	का सामर्थ्य	को सामर्थ्य
१५४	६	मति	मती
१५५	८	हृदय	हृदय
,,	२५	ईर्षा	ईर्ष्या
१५६	२४	निष्ठुरता	की निष्ठुरता
१५७	१	कर्णाना	वर्णना
१५८	१६	निराश्यता	नीरागता
१६२	१०	मिर्जन	मर्जन
१६४	१३	कदन	गोन
१६६	२२	दिया	दी
१६७	२२	मलीन	मलिन
१६८	२३	को प्रार्थी	का प्रार्थी
१७०	११	मेर	मेरी
,,	१८	मान्	मान
१७१	२	नभ	नभो
१७५	१७	करना	करती
१७६	३	मनुष्य	मनुष्य
	२४	नर्क	नरक

१७७	२२	जीवन	जीवन्त
१७८	८	किन्तु चिन्तानल	किन्तु चितानल
१७६	६	मेरे	मेरी
१८१	५	सोला	सुला
"	१५	मैं	मैं ने
"	१५	आश्रम	आश्रय
"	२२	सहायता	की सहायता
१८३	१३	करुन	करुणा
१८६	१	आर	आर
"	२	प्रायश्चित्	प्रायश्चित्त
"	१३	आरोपन	आरोपण
१८७	२	अपनी अपनी	अपनी
१८८	३	fantosy	fantasy
"	११	लगतीं	लगता
१८६	११	की चोर	का चोर
"	१६	राज	राज्य
"	२१	बंध	बँध
"	"	विचार	विचार करते
१६१	६	भंउ	भौं
"	१७	मान्	मान
"	२५	मं	०
१६२	११	आयी	आया
१६४	१३	मैं	मैं ने
"	२६	देखूं	देखूं
१६५	२०	फटो	फटा
१६६	१४	प्रेमा	प्रेम
२०१	१४	वही	उतना ही
	१८, १८	भुल कर	भुलक्क